जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

(भाग-5)

लेखन एवं सङ्कलन :
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षुमण्डल, देहरादून
एवं
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन परिवार, अलीगढ़

ॐ

॥ परमात्मने नमः ॥

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, पुष्प-5

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

(भाग-5)

परमागम श्रीसमयसार एवं प्रवचनसार की
विशिष्ट विषयवस्तु पर प्रश्नोत्तरात्मक संग्रह

लेखन एवं सङ्कलन :
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन
'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर-जैन मुमुक्षुमण्डल, देहरादून
एवं
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन परिवार, अलीगढ़

पाँचवाँ संस्करण : 1100 प्रतियाँ (सम्पादित)
(दशलक्षण महापर्व के पावन अवसर पर प्रकाशित, मंगलवार, 03 सितम्बर 2019)

मूल्य –

— मुमुक्षुता की प्रगटता अथवा भावना/संकल्प ही
इस पुस्तक का उचित मूल्य है।

Available At -

— **TEERTHDHAM MANGALAYATAN**
Aligarh-Agra Road, Sasni-204216, Hathras (U.P.)
www.mangalayatan.com; info@mangalayatan.com

— **TEERTHDHAM CHIDAYATAN**
Dusari Nasiyan se Aage, Hastinapur, Distt. Meerut-250404 (U.P.)
Shri Mukeshchand Jain, Mob, 9837079003

— **SHRI KUNDKUND KAHAN DIG. JAIN SWADHYAY MANDIR**
29, Gandhi Road, Dehradun-248001 (Uttarakhand)
Ph. : 0135 - 2654661 / 2623131

— **AZAD TRADING COMPANY**
Jain Mandir ke Neeche, Lal Kauyan, Bulandshahar-203001 (U.P.)
Ph. : 9897069781

— **SHREE KUNDKUND-KAHAN PARMARTHIK TRUST**
302, Krishna-Kunj, Plot No. 30,
Navyug CHS Ltd., V.L. Mehta Marg,
Vile Parle (W), Mumbai - 400056
e-mail : vitragva@vsnl.com / shethhiten@rediffmail.com

टाइप सेटिंग :
मङ्गलायतन ग्राफिक्स, अलीगढ़

मुद्रक :
देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर

AZAD TRADING COMPANY
Jain Mandir ke Neeche,
Lal Kauyan,
Bulandshahar-203001 (U.P.)
Ph. : 9897069781

प्रकाशकीय

जगत के सब जीव सुख चाहते हैं और दुःख से भयभीत हैं। सुख पाने के लिए यह जीव, सर्व पदार्थों को अपने भावों के अनुसार पलटना चाहता है, परन्तु अन्य पदार्थों को बदलने का भाव मिथ्या है, क्योंकि पदार्थ तो स्वयमेव पलटते हैं और इस जीव का कार्य, मात्र ज्ञाता-दृष्टा है।

सुखी होने के लिए जिनवचनों को समझना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान में जिनधर्म के रहस्य को बतलानेवाले अध्यात्मपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी हैं। ऐसे सतपुरुष के चरणों की शरण में रहकर हमने जो कुछ सीखा, पढ़ा है, उसके अनुसार पण्डित कैलाशचन्द्रजी जैन (बुलन्दशहर) द्वारा गुंथित जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सातों भाग, जिनधर्म के रहस्य को अत्यन्त स्पष्ट करनेवाले होने से चौथी बार प्रकाशित हो रहे हैं।

इस प्रकाशन कार्य में हम लोग अपने मण्डल के विवेकी और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को पहचाननेवाले स्वर्गीय श्री रूपचन्दजी, माजरावालों को स्मरण करते हैं, जिनकी शुभप्रेरणा से इन ग्रन्थों का प्रकाशनकार्य प्रारम्भ हुआ था।

हम बड़े भक्तिभाव से और विनयपूर्वक ऐसी भावना करते हैं कि सच्चे सुख के अर्थी जीव, जिनवचनों को समझकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करें। ऐसी भावना से इन पुस्तकों का चौथा प्रकाशन आपके हाथ में है।

इस पाँचवें भाग में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित श्रीसमयसार, श्रीप्रवचनसार, श्रीनियमसार आदि परमागमों का रहस्य, प्रश्नोत्तरात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही अन्य उपयोगी विषय - जैसे

मुनिराज का स्वरूप, ज्ञान–ज्ञेय की भिन्नता आदि विषयों का समावेश किया गया है। इसके अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को 'वीतराग विज्ञानता के प्रश्नोत्तर' नाम से संकलन किया गया है। इस पुस्तक में समागत प्रश्नोत्तरों का भलीभाँति अभ्यास करने से जिनवाणी का मर्म एवं गहराई समझ में आती है।

हमारे उपकारी आदरणीय पण्डित कैलाशचन्द्रजी के जन्म–शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में, तीर्थधाम मङ्गलायतन में आयोजित **मङ्गल समर्पण समारोह** के अवसर पर यह सम्पादित संस्करण प्रकाशित किया गया था, जिसका मुमुक्षु समाज में अत्यन्त समादर हुआ और शीघ्र ही इसकी सभी प्रतियाँ समाप्त हो गयीं, फलस्वरूप सम्पादित संस्करण का यह दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है, इसका हमें हर्ष है। प्रस्तुत ग्रन्थ को सुव्यवस्थित सम्पादितरूप में उपलब्ध कराने का श्रेय पण्डितजी के सुपुत्र श्री पवन जैन, अलीगढ़ एवं पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां को है। तदर्थ मण्डल की ओर से आभार व्यक्त करते हैं।

सभी जीव इस भाग में समाहित विषयवस्तु का सम्यक् अनुशीलन करके स्वरूपानुभूति प्राप्त करें – यही भावना है।

03 सितम्बर 2019
दशलक्षण महापर्व के
पावन अवर पर प्रकाशित

निवेदक
दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल
देहरादून

भूमिका

वीतरागी जिनेन्द्र परमात्मा की दिव्यध्वनि में प्रवाहित आत्महितकारी दिव्यदेशना का पावन प्रवाह, वीतरागी सन्तों के माध्यम से हमें प्राप्त है। वर्तमान समय में आचार्य कुन्दकुन्द का स्थान दिगम्बर जैन परम्परा में सर्वोच्च है, जिन्हें भगवानमहावीर श्री गौतमगणधर के तत्काल बाद मङ्गलाचरण में स्मरण किया जाता है। पूज्य आचार्यश्री ने सदेह, विदेहक्षेत्र जाकर वहाँ विद्यमान भगवानसीमन्धरपरमात्मा की दिव्यध्वनि का रसपान किया और वहाँ से आकर समयसारादि पञ्च परमागमों की रचना कर, भरतक्षेत्र में अध्यात्मयुग का सृजन किया।

परमपूज्य कुन्दकुन्दाचार्यदेव इत्यादि वीतरागी सन्तों की पावन परम्परा से प्रवाहित अध्यात्म के सूक्ष्म रहस्यों का, अपनी सातिशय वाणी द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने व्यापक प्रचार-प्रसार किया है। पूज्य गुरुदेवश्री के पुनीत प्रभावनायोग में समयसार आदि परमागम जन-जन की वस्तु बन गये हैं। गुरुदेवश्री ने अपनी स्वानुभवयुक्त वाणी द्वारा इन परमागमों में उद्घाटित रहस्यों का सरलतम भाषा में स्पष्टीकरण किया है। पूज्य गुरुदेवश्री के मङ्गल सानिध्य एवं श्री रामजीभाई दोशी, और श्री खेमचन्दभाई सेठ द्वारा सञ्चालित कक्षाओं से प्राप्त इस तत्त्वबोध को मैं सदैव प्रश्नोत्तरों के रूप में लिपिबद्ध करता रहा हूँ, जिसका संकलन जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के नाम से सात भागों में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, देहरादून द्वारा प्रकाशित हुआ है।

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के इस पाँचवें भाग में श्रीसमयसार, श्रीप्रवचनसार, एवं श्रीनियमसार के महत्त्वपूर्ण विषयों का प्रश्नोत्तरात्मक

संकलन है। साथ ही अन्य उपयोगी विषय भी आत्मार्थी बन्धुओं के लिये लाभदायक हैं। इन प्रश्नोत्तरों का गहराई से अध्ययन करके श्रीसमयसारादि परमागमों का एवं पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का रहस्य सरलता से समझा जा सकता है, तदर्थ यह प्रकाशन किया जा रहा है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के अवसर पर श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव सहित समस्त वीतरागी सन्तों को भावपूर्ण वन्दन समर्पित करता हूँ। मेरे जीवनशिल्पी पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति हार्दिक विनयांजलि समर्पित करता हूँ।

हे जीवों! यदि आत्महित करना चाहते हो तो समस्त प्रकार से परिपूर्ण निज आत्मस्वभाव की रुचि और विश्वास करो। देहादि से सर्वथा भिन्न ज्ञानस्वरूप निज आत्मा का निर्णय करना ही सम्पूर्ण जिनशासन का सार है क्योंकि जो जीव, देहादि से भिन्न ज्ञान-दर्शनस्वभावी आत्मा का आश्रय लेते हैं, वे मोक्षमार्ग प्राप्त कर मोक्ष को चले जाते हैं और जो देहादि में ही अपनेपने का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करते हैं, वे चारों गतियों में घूमकर निगोद में चले जाते हैं।

सभी जीव इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किये गये प्रश्नोत्तरों का बारम्बार अभ्यास करके आत्महित के मार्ग में प्रवर्तमान हों - इसी भावना के साथ -

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन
अलीगढ़

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारत की वसुन्धरा, अनादि से ही तीर्थङ्कर भगवन्तों, वीतरागी सन्तों, ज्ञानी-धर्मात्माओं एवं दार्शनिक / आध्यात्मिक चिन्तकों जन्मदात्री रही है। इसी देश में वर्तमान काल में भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं। वर्तमान में भगवान महावीर के शासनकाल में धरसेन आदि महान दिगम्बर सन्त, श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य आदि महान आध्यात्मिक सन्त, इस पवित्र जिनशासन की पताका को दिग्दिगन्त में फहराते रहे हैं।

वर्तमान शताब्दी में जिनेन्द्रभगवन्तों, वीतरागी सन्तों एवं ज्ञानी धर्मात्माओं द्वारा उद्घाटित इस शाश्वत् सत्य को, जिन्होंने अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से स्वयं आत्मसात करते हुए पैंतालीस वर्षों तक अविरल प्रवाहित अपनी दिव्यवाणी से, इस विश्व में आध्यात्मिक क्रान्ति का शंखनाद किया - ऐसे परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी से आज कौन अपरिचित है! पूज्य गुरुदेवश्री ने क्रियाकाण्ड की काली कारा में कैद, इस विशुद्ध जिनशासन को अपने आध्यात्मिक आभामण्डल के द्वारा न मुक्त ही किया, अपितु उसका ऐसा प्रचार-प्रसार जिसने मानों इस विषम पञ्चम काल में तीर्थङ्करों का विरह भुलाकर, भरतक्षेत्र को विदेहक्षेत्र और पञ्चम काल को चौथा काल ही बना दिया।

भारतदेश के गुजरात राज्य में भावनगर जनपद के 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल, सन् 1890 ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

सात वर्ष की वय में लौकिक शिक्षा लेना प्रारम्भ किया। प्रत्येक वस्तु के हृदय तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धिप्रतिभा, मधुरभाषीपना, शान्तस्वभाव, सौम्य व गम्भीर मुखमुद्रा, तथा निस्पृह स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में प्रिय हो गये। विद्यालय और

जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में माता के अवसान से, पिताजी के साथ पालेज जाना हुआ। चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर रात्रि के समय रामलीला या नाटक देखने जाते, तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन के काव्य की रचना करते हैं — **शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।**

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करते हैं, और गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करते हैं, फिर 24 वर्ष की उम्र में (विक्रम संवत् 1970) में जन्मनगरी उमराला में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार करते हैं। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाती है, तीक्ष्ण बुद्धि के धारक कानजी को शङ्का होती है कि कुछ गलत हो रहा है।

विक्रम संवत् 1978 में महावीरप्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसङ्ग बनता है :

विधि के किसी धन्य क्षण में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, गुरुदेवश्री के हस्तकमल में आता है और इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकलते है — '**यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।**' समयसार का अध्ययन और चिन्तन करते हुए अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रस्फुटित होता है एवं अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन होता है। भूली पड़ी परिणति निज घर देखती है। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़,

मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो जाता है कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण अन्तरंग श्रद्धा कुछ और तथा बाहर में वेष कुछ और — यह स्थिति आपको असह्य लगने लगती है। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय करते हैं।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थल की शोध करते हुए सोनगढ़ आकर 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर जन्मकल्याणक के दिवस, (चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991) दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न, मुँहपट्टी का त्याग करते हैं और स्वयं घोषित करते हैं कि '**अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।**' सिंहवृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

'स्टार ऑफ इण्डिया' में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा। अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय-मन्दिर**' का निर्माण किया। गुरुदेवश्री ने ज्येष्ठ कृष्णा 8, संवत् 1994 के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह 'स्वाध्यायमन्दिर' जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

यहाँ दिगम्बरधर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया। उनमें से 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर तो 19 बार अध्यात्म वर्षा की। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक

अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1961 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण किया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, इस हेतु से विक्रम संवत् 2000 के मार्गशीष माह से (दिसम्बर 1943 से) **'आत्मधर्म'** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पञ्च कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा अफ्रीका के नैरोबी में कुल 66 पञ्च कल्याणक तथा वेदी प्रतिष्ठा इन वीतरागमार्ग प्रवर्तक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ।

दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार (मार्गशीष कृष्णा 7, संवत् 2037) के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष देहादि का लक्ष्य छोड़कर, अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके यहाँ से अध्यात्म युग सृजन कर गये।

अनुक्रमणिका

1.	समयसार के प्रथम कलश का रहस्य	5
2.	'जैसी मति, वैसी गति; जैसी गति, वैसी मति'	19
3.	प्रतिक्रमण, आलोचना और प्रत्याख्यान का स्वरूप	36
4.	भगवान आत्मा की छह बोलो से सिद्धि	48
5.	शुद्धनय का स्वरूप	73
6.	ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता	91
7.	तीर्थङ्करदेव की निश्चयस्तुति	104
8.	मुनिराज का स्वरूप	115
9.	धर्म प्राप्ति के लिये....	132
10.	दिव्यध्वनि का सार	137
11.	सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का उपाय	151
12.	धर्म प्राप्ति के लिए जीव की पात्रता	158
13.	वीतरागता-विज्ञानता के विविध प्रश्नोत्तर	171

परमागम के सारभूत सिद्धान्त

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपनाहै।
10. ध्रुव का अवलम्बन है, वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

ॐ

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

भाग - 5

आत्मस्तवन : 47 शक्तियोंरूप मङ्गलाचरण

जीव है अनन्ती शक्ति सम्पन्न, राग से वह भिन्न है;
उस जीव को लक्षित कराने, 'ज्ञानमात्र' कहा उसे ॥1॥

एक ज्ञानमात्र ही भाव में, शक्ति अनन्ती उल्लसे;
यह कथन है उन शक्ति का, भवि जीव जानों प्रेम से ॥2॥

'जीवत्व'[1] से जीवे सदा, जीव चेतता 'चिति'[2] शक्ति से;
'दृशि'[3] शक्ति से देखे सभी, अरु जानता वह 'ज्ञान'[4] से ॥3॥

आकुल नहिं 'सुख'[5] शक्ति से, निज को रचे निज 'वीर्य'[6] से;
'प्रभुत्व'[7] से वह शोभता, व्यापक वही 'विभु'[8] शक्ति से ॥4॥

सामान्य देखे विश्व को, यह 'सर्वदर्शि'[9] शक्ति है;
जाने विशेषे विश्व को, 'सर्वज्ञता'[10] की शक्ति है ॥5॥

जहँ दीसता है विश्व सारा, शक्ति यह 'स्वच्छत्व'[11] की;
है स्पष्ट स्वानुभावमयी, यह शक्ति जान 'प्रकाश'[12] की ॥6॥

विकास में संकोच नहीं',[13] यह शक्ति तेरहवीं जानना;
नहिं कार्य-कारण'[14] है किसी का, भाव ऐसा आत्म का ॥7॥

जो ज्ञेय का ज्ञाता बने, अरु ज्ञेय होता ज्ञान में;
उस शक्ति को 'परिणम्य-परिणामक'[15] कहा है शास्त्र में ॥8 ॥

'नहीं त्याग-नहीं ग्रहण'[16] बस! निजस्वरूप में स्थित है;
स्वरूपे प्रतिष्ठित जीव की, शक्ति 'अगुरुलघुत्व'[17] है ॥9 ॥

'उत्पाद-व्यय-ध्रुव'[18] शक्ति से, जीव क्रम-अक्रम वृत्ति धरे;
है सत्पना 'परिणामशक्ति',[19] तीन काल में नहीं फिरे ॥10 ॥

नहीं स्पर्श जाणो जीव में, आत्म प्रदेश 'अमूर्त'[20] हैं;
कर्ता नहीं परभाव का, ऐसी 'अकर्तृत्व'[21] शक्ति है ॥11 ॥

भोक्ता नहीं परभाव का, ऐसी 'अभोक्तृत्व'[22] शक्ति है;
'निष्क्रियता'[23] रूपशक्ति से, आत्म प्रदेश निस्पंद हैं ॥12 ॥

असंख्य निज अवयव घेरें, 'नियत प्रदेशी'[24] आत्म है;
जीव, देह में नहीं व्यापता, 'स्वधर्म-व्यापक'[25] शक्ति है ॥13 ॥

'स्व-पर में जो सम अरु, विषय तथा जो मिश्र है'[26];
ऐसे त्रयविध धर्म को, निज शक्ति से आत्मा धरें ॥14 ॥

जीव अनन्त भावों धारता, 'अनन्त धर्म की'[27] शक्ति से;
तत्-अतत् दोनों भाव वरते, 'विरुद्धधर्म'[28] की शक्ति से ॥15 ॥

जो ज्ञान का तद्रूप-भवन सो, 'तत्त्व'[29] नामक शक्ति है;
जीव में अतद्रूप परिणमन, जानों 'अतत्त्व'[30] की शक्ति से ॥16 ॥

बहु पर्ययों में व्यापता, एक द्रव्यता को नहिं तजे;
निज स्वरूप की 'एकत्व'[31] शक्ति, जान जीव शान्ति लहे ॥17 ॥

जीव, द्रव्य से है एक फिर भी, 'अनेक'[32] पर्ययरूप बने;
स्व पर्ययों में व्याप कर, जीव, सुखी ज्ञानी सिद्ध बनें ॥18 ॥

है 'भावशक्ति'[33] जीव की, सत्रूप अवस्था वर्तती;
फिर असत्रूप है पर्ययों, 'अभावशक्ति'[34] जीव की ॥19 ॥

'भाव का होता अभाव'[35] 'अभाव का फिर भाव'[36] है;
ये शक्ति दोनों साथ रहती, ज्ञान में तु जान ले ॥20॥

जो 'भाव रहता भाव'[37] ही, 'अभाव नित्य अभाव'[38] है;
स्वभाव ऐसा जीव का, निजगुण से भरपूर है ॥21॥

नहीं कारकों को अनुसरे, ऐसा ही 'भवता भाव'[39] है;
जो कारकों को अनुसरे, सो 'क्रिया'[40] नामक शक्ति है ॥22॥

है 'कर्मशक्ति'[41] आत्मा में, वह धारता सिद्धभाव को;
फिर 'कर्तृत्वशक्ति'[42] से स्वयं, बन जाते भावकरूप जो ॥23॥

है ज्ञानरूप जो शुद्धभावों, उनका जो भवन है;
आत्मा स्वयं उन भावों का, उत्कृष्ट साधन होत है ॥24॥

निज 'करणशक्ति'[43] जानरे तू बाह्य साधन शोध ना;
आत्मा ही तेरा करण है, फिर बात दूसरी पूछ ना ॥25॥

निज आत्मा निज आत्म को ही, ज्ञान भाव जो देत है;
उसका ग्रहण है आत्म को, यह 'सम्प्रदान'[44] स्वभाव है ॥26॥

उत्पाद-व्यय से क्षणिक है, पर ध्रुव की हानि नहीं;
सेवो सदा सामर्थ्य ऐसे, 'अपादान'[1] का आत्म में ॥27॥

भाव्यरूप जो ज्ञानभावों परिणमे है आत्म में;
'अधिकरण'[1] उनका आत्मा है, सुनलो अहो जिनवचन में ॥28॥

है 'स्व अरु स्वामित्व'[1] मेरा, मात्र निज स्वभाव में;
नहीं स्वत्व मेरा है कभी, निज भाव से को अन्य में ॥29॥

अनेकान्त है जयवन्त अहो! निज शक्ति को प्रकाशता;
शक्ति अनन्ती मेरी वह, मुझ ज्ञान में ही दिखावता ॥30॥

यह ज्ञान लक्षण भाव, सह भावों अनन्ते उल्लसे;
अनुभव करूँ उनका अहो! विभाव कोई नहीं दिखे ॥31॥

जिनमार्ग पाया मैं अहो!, श्री गुरु वचन प्रसाद से;
देखा अहा निजरूप चेतन, पार जो परभाव से॥32॥
निज विभव को देखा अहो!, श्रीसमयसार प्रसाद से;
निज शक्ति का वैभव अहो!, यह पार है परभाव से॥33॥
ज्ञानमात्र ही एक ज्ञायक, पिण्ड हूँ मैं आतमा;
अनन्त गम्भीरता भरी मुझ, आत्म ही परमात्मा॥34॥
आश्चर्य अद्भूत होत है, निज विभव की पहचान से;
आनन्दमय आह्लाद ऊछले, मुहूर-मुहूर ध्यान से॥35॥
अद्भूत अहो अद्भूत अहो! है विजयवन्त स्वभाव यह;
जयवन्त है गुरुदेव ने, मुझ निज निधान बता दिया॥36॥

1

समयसार के प्रथम कलश का रहस्य

प्रश्न 1– श्रीसमयसार का पहला कलश क्या है ?

उत्तर – नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे ॥1 ॥

प्रश्न 2– 'नमः समयसाराय' का क्या भावार्थ है ?

उत्तर – 'समय', अर्थात् मेरी आत्मा–जो द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से रहित है। उस (आत्मा) की ओर दृष्टि होना, यह 'नमः समयसाराय' का भावार्थ है।

प्रश्न 3– 'समय' शब्द के कितने अर्थ हैं ?

उत्तर – 'समय' शब्द के अनेक अर्थ है; (1) आत्मा का नाम, समय है, (2) सर्व पदार्थ का नाम, समय है, (3) काल का नाम, समय है, (4) शास्त्र का नाम, समय है, (5) समयमात्र काल का नाम, समय है, (6) मत का नाम, समय है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 297]

प्रश्न 4– 'समय' शब्द का अर्थ आपने आत्मा कैसे कर दिया है ?

उत्तर – 'सम' उपसर्ग है। 'सम' का अर्थ एक साथ है। अय् गतौ धातु है। 'अय्' का अर्थ गमन और ज्ञान भी है; इसलिए एक ही साथ जानना और परिणमन करना, यह दोनों क्रियाएँ जिसमें हो, वह समय है, इस अपेक्षा भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने समय शब्द का अर्थ, आत्मा किया है।

प्रश्न 5- 'नमः समयसाराय' में अपनी आत्मा को ही क्यों नमस्कार किया है; अन्य को क्यों नहीं ?

उत्तर - समयसार, अर्थात् शुद्धजीव ही परमार्थ से नमस्कार करने योग्य है; दूसरा नहीं है।

प्रश्न 6- किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया ?

उत्तर - परमार्थतः इष्टदेव का सामान्यस्वरूप सर्व कर्मरहित, सर्वज्ञ, वीतराग, शुद्ध आत्मा ही है; इसलिए आत्मा को ही सारपना घटित होता है।

प्रश्न 7- शुद्धजीव के ही सारपना घटित है, यह कहाँ लिखा है ?

उत्तर - सार, अर्थात् हितकारी; असार, अर्थात् अहितकारी। सो हितकारी सुख जानना, अहितकारी दुःख जानना। क्योंकि अजीव पदार्थ - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल के और संसारी जीव के सुख नहीं, ज्ञान नहीं और उनका स्वरूप जानने पर जाननहारे जीव को भी सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं। शुद्धजीव के सुख है, ज्ञान भी है। उनको जानने पर—अनुभव करने पर, जाननेवाले को सुख है, ज्ञान भी है; इसलिए शुद्धजीव को ही सारपना घटता है। (अर्थात्, ज्ञानियों को ही सारपना घटित होता है।) *[पण्डित राजमलजी कृत टीका]*

प्रश्न 8- ज्ञानियों को ही सारपना घटता है - ऐसा कहीं छहढाला में कहा है ?

उत्तर - तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहूँ त्रियोग सम्हारिकै ॥3॥
(पहली ढाल)

आतम को हित है सुख, सों सुख आकुलता बिन कहिए।
आकुलता शिव मॉहि न तातै, शिवमग लाग्यो चहिए॥1॥

(तीसरी ढाल)

प्रश्न 9- 'नमः' शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर - नमना, झुकना, अर्थात् अपनी ओर लीन होना, यह 'नमः' का अर्थ है।

प्रश्न 10- नमस्कार कितने हैं और कौन-कौन से ?

उत्तर - पाँच है - (1) शक्तिरूप नमस्कार। (2) एकदेशभाव नमस्कार। (3) द्रव्यनमस्कार। (4) जड़नमस्कार। (5) पूर्णभाव नमस्कार।

प्रश्न 11- इन पाँच नमस्कारों को समझाइये ?

उत्तर - अनन्त गुणों का अभेद पिण्डरूप ज्ञायकभाव, वह **शक्तिरूप नमस्कार** है। शक्तिरूप नमस्कार का आश्रय लेने से, प्रथम **एकदेश भावनमस्कार** की प्राप्ति होती है और अपने शक्तिरूप नमस्कार का पूर्ण आश्रय लेने से पर्याय में **पूर्ण भावनमस्कार** की प्राप्ति होती है। यह ज्ञानियों को ही होता है। ज्ञानियों को अपनी -अपनी भूमिका अनुसार जो वीतराग-सर्वज्ञ आदि के प्रति बहुमान का राग आता है, वह **द्रव्यनमस्कार** है। शरीर की क्रिया द्वारा जो नमस्कार होता है, वह **जड़नमस्कार** है। द्रव्यनमस्कार और जड़नमस्कार का निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है।

प्रश्न 12- इन पाँच नमस्कारों में हेय-ज्ञेय-उपादेय कौन -कौन हैं ?

उत्तर - (1) 'शक्तिरूप नमस्कार' — आश्रय करने योग्य उपादेय। (2) एकदेश भावनमस्कार — प्रकट करने योग्य एकदेश

उपादेय। (3) द्रव्यनमस्कार — हेय। (4) जड़नमस्कार — ज्ञेय। (5) पूर्ण भावनमस्कार — पूर्ण प्रकट करने योग्य उपादेय।

प्रश्न 13- इन पाँच नमस्कारों से क्या सिद्ध हुआ ?

उत्तर - (1) शक्तिरूप नमस्कार का आश्रय लेने से एकदेश भावनमस्कार की प्राप्ति होती है।

(2) एकदेश भावनमस्कार की प्राप्ति होने पर, द्रव्यनमस्कार पर उपचार / आरोप आता है। तभी निमित्त को जड़नमस्कार कहा जाता है।

(3) परिपूर्ण शक्तिरूप नमस्कार का परिपूर्ण आश्रय लेने पर ही पूर्ण भावनमस्कार प्राप्त होता है। पर या विकारभावों के आश्रय से मात्र संसार परिभ्रमण ही रहता है।

प्रश्न 14- 'सार' शब्द का अस्ति और नास्ति से अर्थ करके 'सार' पर नौ पदार्थ लगाओ ?

उत्तर - 'सार' शब्द का नास्ति से अर्थ, द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से रहित है। द्रव्यकर्म और नोकर्म में अजीवतत्त्व आ गया। और भावकर्म में आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप आ गये। 'सार' का अर्थ अस्ति से परमसार जीव है, एकदेश सार संवर-निर्जरा हैं। पूर्णसार मोक्ष है। इस प्रकार नौ पदार्थ आ गये।

प्रश्न 15- अपनी आत्मा को सार करने से क्या प्राप्त होता है ?

उत्तर - वीतराग-विज्ञानता, अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 16- अजीव को सार करने से क्या होता है ?

उत्तर - चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद में चला जाता है।

प्रश्न 17- असार क्या है और सार क्या है ?

उत्तर - नौ प्रकार का पक्ष असार है; एकमात्र अपनी आत्मा ही सार है। उसको सार करने से धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्रश्न 18- पाँच प्रकार के नमस्कारों पर नौ तत्त्व / पदार्थ लगाकर बताओ और साथ ही क्या लाभ-नुकसान रहा, यह भी बताओ ?

उत्तर - शक्तिरूप नमस्कार में जीवतत्त्व आया। एकदेश भावनमस्कार में संवर-निर्जरातत्त्व आये। द्रव्यनमस्कार में आस्रव -बन्ध, पुण्य-पाप तत्त्व आये। जड़नमस्कार में अजीवतत्त्व आया। पूर्ण भावनमस्कार में मोक्षतत्त्व आया। अपने जीवतत्त्व का आश्रय ले, तो संवर-निर्जरा की प्राप्ति होकर, क्रम से मोक्ष की प्राप्ति होती है; अजीव और आस्रव-बन्ध से भला-बुरा माने, तो चारों गतियों में घूमते हुए निगोद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 19- पाँच प्रकार के नमस्कारों पर (1) चार काल, (2) औपशमिक आदि पाँच भाव, (3) संयोग आदि तीन बोल, (4) देव-गुरु-धर्म, (5) सुखदायक-दुःखदायक घटित करके बताओ, साथ ही इसे जानने से क्या लाभ-नुकसान रहा यह भी बताओ।

उत्तर - (1) चार काल - अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त, सादी-सान्त, सादि-अनन्त।

शक्तिरूप नमस्कार - (1) अनादि-अनन्त; **एकदेश भावनमस्कार** — सादि-सान्त; **द्रव्यनमस्कार** — अनादि-सान्त; **जड़नमस्कार** — अनादि-अनन्त; **पूर्ण भावनमस्कार** — सादि -अनन्त है।

इनमें से अनादि-अनन्त शक्तिरूप नमस्कार का आश्रय ले तो सादि-सान्त एकदेश भावनमस्कार की प्राप्ति होती है। अभी पूर्ण भावनमस्कार के अभाव में, अनादि-सान्त द्रव्यनमस्कार और निमित्तरूप जड़नमस्कार पाया जाता है। फिर जैसे ही अनादि-अनन्त शक्तिरूप नमस्कार का पूर्ण आश्रय लेता है तो सादि-अनन्त पूर्ण भावनमस्कार की प्राप्ति होती है। यदि अनादि-सान्त द्रव्यनमस्कार और निमित्तरूप जड़नमस्कार से अपना भला-बुरा माने तो चारों गतियों में घूमकर, निगोद की प्राप्ति होती है।

(2) औपशमिक आदि पाँच भाव - (1) औपशमिक, (2) क्षायिक, (3) क्षायोपशमिक, (4) औदयिक, (5) पारिणामिक।

शक्तिरूप नमस्कार - पारिणामिकभाव; एकदेश भावनमस्कार - औपशमिकभाव, धर्म का क्षयोपशमभाव, सम्यग्दर्शन की अपेक्षा क्षायिकभाव।

द्रव्यनमस्कार - औदयिकभाव।

जड़नमस्कार - इन पाँच में से कोई भाव नहीं (अजीवतत्त्व)

पूर्ण भावनमस्कार - क्षायिकभाव।

पारिणामिकभावरूप शक्तिरूप नमस्कार का आश्रय ले तो एकदेश भावनमस्कार की प्राप्ति होकर; पूर्ण आश्रय लेने पर पूर्ण भावनमस्कार की प्राप्ति होती है। यदि जड़नमस्कार और द्रव्यनमस्कार से हित होना माने तो चारों गति में घूमता हुआ, निगोद चला जाता है।

(3) संयोगादि पाँच बोल - (1) संयोग, (2) संयोगीभाव, (3) स्वभाव त्रिकाली, (4) स्वभाव के साधन, (5) सिद्धत्व।

शक्तिरूप नमस्कार - स्वभाव त्रिकाली।

एकदेश भावनमस्कार - स्वभाव के साधन।

द्रव्यनमस्कार – संयोगीभाव।

जड़नमस्कार – संयोग।

पूर्ण भावनमस्कार – सिद्धत्व।

शक्तिरूप नमस्कारस्वरूप स्वभाव त्रिकाली का आश्रय ले तो एकदेश भावनमस्काररूप स्वभाव के साधन की प्राप्ति होकर; स्वभाव त्रिकाली का पूर्ण आश्रय होने पर सिद्धत्व की प्राप्ति होती है। यदि संयोगरूप जड़नमस्कार और संयोगीभावरूप द्रव्यनमस्कार से अपना भला होना माने तो चारों गतियों में घूमकर, निगोद की प्राप्ति होती है।

देव-गुरु-धर्म –

शक्तिरूप नमस्कार – धर्म (धर्मस्वरूप आत्मा)

एकदेश भावनमस्कार – गुरु (आचार्य, उपाध्याय, साधु)

पूर्ण भावनमस्कार – देव (अरहन्त, सिद्ध)

जड़नमस्कार और द्रव्यनमस्कार – इनमें से कोई नहीं

शक्तिरूप नमस्कारस्वरूप धर्म, अर्थात् त्रिकाली स्वभाव का आश्रय ले तो एकदेश भावनमस्काररूप गुरुपने की प्राप्ति होकर; धर्मस्वरूप स्वभाव का पूर्ण आश्रय होने पर पूर्ण भावनमस्कारस्वरूप देवपने की प्राप्ति होती है। यदि जड़नमस्कार और द्रव्यनमस्कार से अपना हित होना माने तो देव-गुरु-धर्म की विराधना होने से चारों गतियों में परिभ्रमण करते हुए, निगोद की प्राप्ति होती है।

सुखदायक : दुःखदायक –

शक्तिरूप नमस्कार – परम सुखदायक।

एकदेश भावनमस्कार – एकदेश सुखदायक।

पूर्ण भावनमस्कार – पूर्ण सुखदायक।

द्रव्यनमस्कार – दुःखदायक

जड़नमस्कार – न सुखदायक, न दुःखदायक।

परम सुखदायक शक्तिरूप नमस्कार का आश्रय ले तो एकदेश सुखदायक, एकदेश भावनमस्कार की प्राप्ति होती है और शक्तिरूप नमस्कारस्वरूप परम सुखदायक का पूर्ण आश्रय होने पर, पूर्ण सुखदायक पूर्ण भावनमस्कार की प्राप्ति होती है। यदि दुःखदायक द्रव्यनमस्कार और संयोगरूप जड़नमस्कार से अपना हित होना माने तो चारों गतियों में घूमकर महा दुःखदायक निगोददशा की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 20– 'भावाय-चित्स्वभावाय' का क्या भावार्थ है ?

उत्तर – (1) **'भावाय,'** अर्थात् त्रिकाली द्रव्य, यह मेरी सत्ता है। परद्रव्यों की सत्ता से मेरा किसी भी प्रकार का कर्ता–कर्म, भोक्ता–भोग्यसम्बन्ध नहीं है – ऐसा अनुभव–ज्ञान होते ही धर्मदशा प्रगट होना, यह भावाय को जानने का लाभ है।

(2) **'चित्स्वभावाय',** अर्थात् मुझ आत्मा का सम्बन्ध ज्ञान –दर्शनादि अनन्त गुणों से है। नौ प्रकार के पक्षों से मेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है; इसलिए ज्ञान–दर्शन से आत्मा की पहिचान करायी है।

प्रश्न 21– 'चित्स्वभावाय-भावाय' में द्रव्य-गुण क्या -क्या है ?

उत्तर – 'चित्स्वभावाय', गुण को बताता है और 'भावाय, द्रव्य' को बताता है।

प्रश्न 22– जैसे—प्रथम कलश में ज्ञान-दर्शन से जीव की पहिचान करायी है, ऐसी पहिचान और कहीं भी शास्त्र में करायी है ?

उत्तर - (1) समयसार, गाथा 24 में 'सर्वज्ञ ज्ञान विषै सदा, उपयोग लक्षण जीव है।

(2) मोक्षशास्त्र में 'उपयोगों लक्षणम्' कहा है।

(3) छहढाला में 'चेतन को है उपयोगरूप' - ऐसा कहा है।

(4) द्रव्यसंग्रह में 'सुद्धणया सुद्धपुण दंसणं णाणं' कहा है।

(5) समयसार, गाथा 38 में 'मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञान-दृग हूँ यथार्थ से' - बताया है।

प्रश्न 23- सब अनुयोगों में जीव का लक्षण ज्ञान-दर्शन क्यों बताया है?

उत्तर - मैं, परद्रव्यों को, शरीरादि को हिला-डुला सकता हूँ - ऐसी मिथ्या मान्यता का अभाव करने के लिए ज्ञान-दर्शन, जीव का लक्षण बताया है क्योंकि नित्य उपयोग लक्षणवाला जीवद्रव्य, कभी परद्रव्योंरूप तथा शरीरादिरूप होता हुआ देखने में नहीं आता है।

प्रश्न 24- 'स्वानुभूत्या चकासते' का क्या भावार्थ है?

उत्तर - आत्मा अपनी ही अनुभवनरूप क्रिया से प्रकाशित है, अर्थात् अपने से ही जानता है, प्रगट करता है। एकमात्र अपने चित्स्वभावाय पर दृष्टि करते ही शान्ति की प्राप्ति होती है - यह तात्पर्य है।

प्रश्न 25- 'स्वानुभूत्या चकासते' के पर्यायवाची शब्द क्या-क्या हैं?

उत्तर - निराकुलता; शुद्धात्मपरिणमन; अतीन्द्रियसुख; संवर-निर्जरा; स्वभाव के साधन आदि कहो या स्वानुभूति कहो - एक ही बात है।

प्रश्न 26- 'सर्व भावान्तरच्छिदे' का भावार्थ क्या है?

उत्तर - भगवान आत्मा, सर्व जीव और अजीवों को भूत-भविष्य-वर्तमान पर्यायसहित एक समय में, एक साथ जानता है। उनका करनेवाला, भोगनेवाला नहीं है - ऐसा जाने-माने तो अनन्त संसार का अभाव हो जाता है।

प्रश्न 27- 'सर्व भावान्तरच्छिदे' से क्या सिद्ध हुआ है?

उत्तर - हे आत्मा! तू एक समय में लोकालोक को जानने-देखने के स्वभाववाला है - ऐसी तेरी अपूर्व महिमा है। इससे क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि होती है। क्रमबद्धपर्याय को मानते ही जीव, चारों गतियों का अभावरूप पञ्चम गति का पात्र बन जाता है।

प्रश्न 28- आत्मा का अनुभव होते ही क्या होता है?

उत्तर - जैसे—एक रत्ती सोने की पहिचान होते ही, विश्व के सम्पूर्ण सोने की पहिचान हो जाती है; उसी प्रकार अपने आत्मा का अनुभव होते ही, सिद्ध क्या करते हैं, सिद्धदशा क्या है; अरहन्त क्या करते हैं, अरहन्तदशा क्या है; मुनिराज क्या करते, मुनिदशा क्या है; श्रावक क्या करते हैं, श्रावकदशा क्या है; और अनादि से निगोद से लगाकर द्रव्यलिङ्गी मिथ्यादृष्टि क्या करते हैं, मिथ्यादृष्टिपना क्या है - आदि सब बातों का एक समय में ही ज्ञान हो जाता है। केवली के ज्ञान में और उस साधक के ज्ञान में जानने में अन्तर नहीं है; मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का ही भेद है; इसलिए हे भव्य! तू एक बार अपनी ओर दृष्टि करके देख, फिर क्या होता है! यह किसी से पूछना नहीं पड़ेगा, क्योंकि आत्मानुभव का ऐसा ही अलौकिक चमत्कार है।

प्रश्न 29- स्वानुभूत्या चकासते, चित्स्वभावाय-भावाय और सर्व भावान्तरच्छिदे पर, नौ पदार्थ लगाकर बताओ और लाभ-हानि भी बताओ?

उत्तर - (1) **स्वानुभूत्या चकासते**—संवर-निर्जरा।

(2) **स्वानुभूत्या चकासते से विरुद्ध**—आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप।

(3) **चित्स्वभावाय-भावाय**—जीव।

(4) **चित्स्वभावाय-भावाय से विरुद्ध**—अजीव।

(5) **सर्वभावान्तरच्छिदे**—मोक्ष।

चित्स्वभावाय-भावाय का आश्रय लेवे तो स्वानुभूत्या चकासते की प्राप्ति होकर, सर्व भावान्तरच्छिेदरूप बन जावे। चित्स्वभावाय-भावाय से विरुद्ध अजीव का आधार माने, तो स्वानुभूत्या चकासते के विरुद्ध आस्रव-बन्ध की प्राप्ति होकर, चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद की प्राप्ति करे।

प्रश्न 30- स्वानुभूत्या चकासते; चित्स्वभावाय-भावाय और सर्वभावान्तरच्छिदे पर (1) पाँच नमस्कार, (2) चार काल, (3) औपशमिक आदि पाँच भाव, (4) संयोगादि पाँच बोल, (5) देव-गुरु-धर्म, (6) सुखदायक-दुःखदायक, (7) हेय-उपादेय-ज्ञेय, (8) संयोग की पृथक्ता आदि तीन बोल घटित करते हुए, इससे होनेवाले लाभ-नुकसान को समझाइये।

उत्तर - (1) स्वानुभूत्या चकासते - (1) एकदेश भावनमस्कार, (2) सादि-सान्तकाल, (3) औपशमिक, धर्म का क्षयोपशमिक, और सम्यग्दर्शन की अपेक्षा क्षायिकभाव; (4) स्वभाव के साधन, (5) गुरु, (6) एकदेश सुखदायक (7) एकदेश उपादेय, एवं (8) स्वभाव सामर्थ्य का फल है।

(2) स्वानुभूत्या चकासते से विरुद्ध - (1) द्रव्यनमस्कार, (2) अनादि-सान्त, (3) औदयिकभाव, (4) संयोगीभाव,

(5) अधर्म, (6) दुःखदायक (7) हेय, और (8) विपरीतरूप विभाव है।

(3) चित्स्वभावाय-भावाय - (1) शक्तिरूप नमस्कार (2) अनादि-अनन्त, (3) पारिणामिकभाव, (4) स्वभावत्रिकाली, (5) धर्मस्वरूप, (6) परम सुखदायक, (7) परम उपादेय, सामर्थ्यरूप स्वभाव है।

(4) चित्स्वभावाय-भावाय से विरुद्ध (अजीव) - (1) जड़नमस्कार, (2) अनादि-अनन्त, (3) पाँच में से कोई भाव नहीं, (4) संयोग, (5) देव-गुरु-धर्म में से कोई नहीं, (6) न सुखदायक, न दुःखदायक, (7) ज्ञेय, (8) पृथक्‌रूप संयोग है।

(5) सर्वभावान्तरच्छिदे - (1) पूर्ण भावनमस्कार, (2) सादि -अनन्त, (3) क्षायिकभाव, (4) सिद्धत्व, (5) देव, (6) पूर्ण सुखदायक, (7) पूर्ण उपादेय, और (8) स्वभाव की सामर्थ्य का पूर्ण फल है।

यदि चित्स्वभावायरूप निज जीवस्वभाव का आश्रय ले तो स्वानुभूत्याचकासते की प्राप्ति होकर, क्रमशः सर्वभावान्तरच्छिेद की प्राप्ति होती है और यदि चित्स्वभावाय से विरुद्ध, अजीव का आश्रय ले तो स्वानुभूत्याचकासते से विरुद्ध आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप, तथा मिथ्यात्व के कारण, चार गतियों में घूमता हुआ निगोद चला जाता है।

प्रश्न 31- भगवान ने अनेक बोलों से भगवान आत्मा की महिमा बतायी है, फिर भी हमें अपनी महिमा क्यों नहीं आती ?

उत्तर - चारों गतियों में घूमकर निगोद जाना अच्छा लगता है; इसलिए अपने भगवान आत्मा की महिमा नहीं आती है।

प्रश्न 32- निज भगवान आत्मा की महिमा कैसे आवे ?

उत्तर - (1) जीव, अनन्त हैं;

(2) जीव से अनन्त गुणा, पुद्‍गलद्रव्य हैं;

(3) पुद्‍गलद्रव्य से अनन्त गुणा, तीन काल के समय हैं;

(4) तीन काल के समयों से अनन्त गुणा, आकाशद्रव्य के प्रदेश हैं;

(5) आकाश में प्रदेशों से अनन्त गुणा, एक द्रव्य में गुण हैं;

(6) एक द्रव्य के गुणों से अनन्त गुणा, सब द्रव्यों में गुण हैं।

(7) सब द्रव्यों के गुणों से अनन्त गुणा, सब द्रव्यों की पर्यायें हैं।

(8) सब द्रव्यों की पर्यायों से अनन्त गुणा, अविभाग प्रतिच्छेद हैं।

विश्व में उक्त (आठ नम्बर तक) ही ज्ञेय है।

(9) विचारो! अपने आत्मा में आकाश के प्रदेशों से अनन्त गुणा अधिक, गुण हैं; उनमें से आत्मा में ज्ञान नाम का एक गुण है। उसकी केवलज्ञानरूप एक पर्याय है। उसमें आठ नम्बर तक जो ज्ञेय हैं, वह एक समय में ज्ञेयरूप से जाना जाता है - ऐसी ताकत केवलज्ञान की एक पर्याय में है। यदि ऐसे-ऐसे अनन्त विश्व हो, तो भी वे मेरे केवलज्ञान की पर्याय में ज्ञेय हो सकते हैं। एक समय की पर्याय की कितनी ताकत हैं! और केवलज्ञान... केवलज्ञान ऐसी अनन्त पर्यायें हैं।

(10) जब केवलज्ञान की इतनी ताकत है तो जिसमें से केवलज्ञान आता है, उस ज्ञानगुण की ताकत अमर्यादित है।

(11) ज्ञानगुण जैसे अनन्त गुण, मेरे में हैं। मैं, उन अनन्त गुणों का स्वामी हूँ - ऐसी अपनी महिमा समझ में आ जावे, तो जो अनादि से नौ प्रकार के पक्षों की महिमा है, उसका अभाव होकर, धर्म की शुरुआत, वृद्धि होकर, निर्वाण का पथिक बने।

प्रश्न 33- नौ प्रकार के पक्ष कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - (1) अत्यन्त भिन्न परपदार्थों का पक्ष।

(2) आँख-नाक-कान आदि औदारिकशरीर का पक्ष।

(3) तैजस-कार्माणशरीर का पक्ष।

(4) भाषा और मन का पक्ष।

(5) शुभाशुभ विकारीभावों का पक्ष।

(6) अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय का पक्ष।

(7) भेदनय का पक्ष।

(8) अभेदनय का पक्ष।

(9) भेदाभेदनय का पक्ष।

2

गोम्मटसार जीवकाण्ड : कर्मकाण्ड का रहस्य

'जैसी मति, वैसी गति; जैसी गति, वैसी मति'

प्रश्न 1- भविष्य की आयुबन्ध का चित्रामण किसके हाथ में है?

उत्तर - अरे भाई! तेरे हाथ में है। यदि बन्धसमय जीव चेते और उदयसमय उस पर दृष्टि न दे, तो कल्याण हो जावे।

प्रश्न 2- पर्याय में कोई निगोदिया है; कोई साँप है; कोई गधा है; कोई कुत्ता है; कोई मेंढक है; कोई बकरा है - ऐसी विविधता क्यों है?

उत्तर— जैसा-जैसा कार्य होता है, उसका वैसा का वैसा निमित्तकारण भी होता है। जैसे—किसी जीव ने पहिले भव में फुं-फाँ का भाव किया, तो वर्तमान में साँप का निमित्तकारण मिला; उसी प्रकार सब जानना।

प्रश्न 3- इस विषय में समयसार, कलश में 168 में श्री-राजमलजी ने क्या बताया है?

उत्तर - जिस जीव ने अपने विशुद्ध अथवा संक्लेशरूप परिणाम के द्वारा पहले ही बाँधा है जो आयुकर्म अथवा साताकर्म अथवा असाताकर्म, उस कर्म के उदय से उस जीव को मरण अथवा जीवन; दु:ख अथवा सुख होता है - ऐसा निश्चय है। इस बात में धोखा कुछ नहीं।

प्रश्न 4- भविष्य की आयुबन्ध कब और कैसे होता है ?

उत्तर - मनुष्यों के लिए यह नियम है कि जितनी भोगनेवाली आयु की स्थिति होगी, उसके दो तिहाई बीत जाने पर, पहली बार अन्तर्मुहूर्त के लिए आगामी भव का आयुबन्ध हो सकता है। फिर दो तिहाई बीतने पर दूसरी बार; फिर दो तिहाई बीतने पर तीसरी बार; इस तरह दो तिहाई समय के बाद, आठ बार ऐसा अवसर आता है। यदि इनमें भी आयु नहीं बँधे, तो मरने के अन्तर्मुहूर्त पहले तो आयु बँधती ही है। यदि अपने परिणाम में कुछ सुधार-बिगाड़ हो जावे तो पहली बँधी हुई आयु की स्थिति कम या अधिक हो सकती है। मानो कि जैसे — किसी की आयु 81 वर्ष की है तो :—

(1) 54 वर्ष बीतने पर = 27 वर्ष शेष रहने पर; या

(2) 72 वर्ष बीतने पर = 9 वर्ष शेष रहने पर; या

(3) 78 वर्ष बीतने पर = 3 वर्ष शेष रहने पर; या

(4) 80 वर्ष बीतने पर = 1 वर्ष शेष रहने पर; या

(5) 80 वर्ष 8 मास बीतने पर = 4 मास शेष रहने पर; या

(6) 80 वर्ष 10 मास, 20 दिन बीतने पर = 40 दिन शेष रहने पर; या

(7) 80 वर्ष 11 मास, 16 दिन, 16 घण्टे बीतने पर = 13 दिन 8 घण्टे शेष रहने पर; या

(8) 80 वर्ष 11 मास 25 दिन, 13 घण्टे, 20 मिनट बीतने पर = 4 दिन, 10 घण्टे, 40 मिनट शेष रहने पर आगामी आयु का बन्ध होता है।

प्रश्न 5- आठ त्रिभागों में से एक त्रिभाग में ही बन्ध क्यों होता है, बाकी विभागों में आयु का बन्ध क्यों नहीं होता है ?

उत्तर – गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा 518 में लिखा है कि आयु का बन्ध, मध्यमपरिणामों से होता है; उत्कृष्ट व जघन्यपरिणामों से आयु का बन्ध नहीं होता है; अतः आयुबन्ध के त्रिभागों के समय में उत्कृष्ट या जघन्यपणिाम होने से, आयु का बन्ध नहीं होता है – ऐसा जानना।

प्रश्न 6– एक भव कितने समय का है?

उत्तर – अरे भाई! वास्तव में एक समय का, एक भव है।

प्रश्न 7– एक समय का एक भव है – यह कहाँ लिखा है और एक समय का भव किस प्रकार है?

उत्तर – भगवान कुन्दकुन्दस्वामी ने भावपाहुड़, गाथा 32 की टीका में अवीचिकामरण के लिए लिखा है कि 'आयुकर्म का उदय समय–समय में घटता है, वह समय–समय में मरण है, यह आवीचिका मरण है।' देखो! इसमें बताया है, समय–समय का मरण होता है क्योंकि पर्याय की स्थिति एक समय ही होती है। सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा एक–एक समय का एक–एक भव है। जिस समय जो जीव, जो भाव करता है, उस समय वह वही है; इसलिए कहा है 'जैसी मति, वैसी गति' और आयुपूर्ण होने के समय 'जैसी गति, वैसी मति' हो जाती है।

प्रश्न 8– 'जैसी मति, वैसी गति' और 'जैसी गति, वैसी मति' के पीछे का क्या रहस्य है?

उत्तर – यदि कोई गति धारण नहीं करनी हो तो अनादि–अनन्त ज्ञायकस्वभावी तेरी आत्मा है, उसका आश्रय लेकर, गति का अभाव करना ही प्रत्येक पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न 9– क्या मनुष्य होने पर 'साँप' कहला सकता है?

उत्तर – हाँ; कहला सकता है। जैसे, हमारे घर में बहुत से

आदमी हैं, यदि हम फूँ-फाँ न करें तो वे सब बिगड़ जाएँगे - ऐसा मानकर जो फूँ-फाँ करता है, वह उस समय मनुष्यभव होने पर भी, साँप ही है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। फूँ-फाँ करते समय यदि आयु का बन्ध हो गया तो साँप की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर फूँ-फाँ में ही जीवन व्यतीत होगा।

प्रश्न 10- कोई कहे अरे भाई! हमें साँप नहीं बनना है, क्योंकि साँप की योनि बहुत बुरी है - तो वह क्या करें ?

उत्तर - फूँ फाँ रहित आत्मा का स्वभाव है, उसका आश्रय ले तो भगवान के समान ज्ञाता-ज्ञेयपना प्रगट हो जाएगा और संसार के सम्पूर्ण दु:ख का अभाव हो जाएगा।

प्रश्न 11- स्वभाव का आश्रय लेना किस प्रकार बने ?

उत्तर - 'अनादि निधन वस्तुएँ, भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादासहित परिणमित होती हैं; कोई किसी के आधीन नहीं है; कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती है।' ऐसा जाने-श्रद्धान करे तो तुरन्त दृष्टि अपने ज्ञायकस्वभाव पर आ जाती है, लानी पड़ती नहीं है क्योंकि यह कार्य सहजरूप है।

प्रश्न 12- क्या मनुष्य होने पर 'गधा' कहला सकता है ?

उत्तर - हाँ; कहला सकता है। जैसे, हमारे घर में बहुत आदमी हैं, वे फूँ-फाँ से तो मानते नहीं हैं, उसके बदले उन्हें पैरों से मारें, चिल्लायें, तो वह उस समय मनुष्य होने पर भी 'गधा' ही है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। उन पर पैर चलाने के भाव के समय यदि आयुबन्ध हो गया तो गधे की योनि में जाना पड़ेगा। जहाँ निरन्तर पैर चलाने और चिल्लाने में ही जीवन बीतेगा।

प्रश्न 13- कोई कहे, अरे भाई! हमें गधा नहीं बनना है क्योंकि गधे की योनि बहुत बुरी है, तो वह क्या करे ?

उत्तर – पैर चलाने और चिल्लाने के भावरहित निज आत्मा का स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो गधा नहीं बनना पड़ेगा, बल्कि मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाएगा और मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय व योग, संसार के इन कारणों का अभाव हो जावेगा; इसलिए हे भव्य! तू अपने ज्ञायक भगवान का आश्रय ले, तो भगवान के समान ज्ञाता-दृष्टापना प्रगट हो जाएगा और संसार के सम्पूर्ण दुःख का अभाव हो जाएगा।

प्रश्न 14– क्या मनुष्य होने पर 'कुत्ता' कहला सकता है?

उत्तर – हाँ, कहला सकता है। (अ) जैसे कुत्ता, हड्डी में से खून निकलता है – ऐसा मानकर, उसी में आसक्त रहता है; उसी प्रकार जो जीव, मनुष्यभव पाने पर भी, पाँच इन्द्रियों के विषय में सुख है – ऐसा मानकर उन्हीं में आसक्त रहता है, वह उस समय कुत्ता ही है क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। पाँच इन्द्रियों की आसक्ति के समय यदि आयुबन्ध हो गया तो 'कुत्ता' की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर विषयों की आसक्ति में ही पागल बना रहेगा।

(आ) जैसे, कुत्ता बिना बात के भौंकता ही रहता है; उसी प्रकार मनुष्यभव प्राप्त होने पर भी जो जीव, भौंकता ही रहता है, वह उस समय कुत्ता ही है क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। भौंकने के भाव के समय यदि आयुबन्ध हो गया तो 'कुत्ता' की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर चौबीस घण्टे भौं-भौं में ही जीवन बीतेगा।

प्रश्न 15– कोई कहे, अरे भाई! कुत्ता की योनि तो बहुत खराब है, हमको कुत्ता न बनना पड़े – उसका क्या उपाय है?

उत्तर – विषयों की आसक्ति के भाव से रहित और भौं-भौं के भावों से रहित, अपना त्रिकाली स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो कुत्ता नहीं बनना पड़ेगा, बल्कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव

– ऐसे पञ्च परावर्तनरूप संसार का अभाव होकर, क्रम से सिद्धत्व की प्राप्ति होगी।

प्रश्न 16- क्या मनुष्यभव होने पर 'मेढ़क' कहला सकता है?

उत्तर – हाँ, कहला सकता है। जैसे–मेढ़क 'टर्र–टर्र' करता रहता है; उसी प्रकार जो मनुष्यभव पाने पर भी सब कार्यों से 'टर्र-टर्र' करता है, वह उस समय 'मेढ़क' ही हैं क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है।'टर्र–टर्र' के भाव करने के समय यदि आयुबन्ध हो गया तो 'मेढ़क' की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर चौबीसों घण्टे 'टर्र–टर्र' में ही जीवन बीतेगा।

प्रश्न 17- कोई कहे कि, अरे भाई! हमें मेढ़क नहीं बनना है तो क्या करें?

उत्तर – अरे भाई! 'टर्र–टर्र' रहित अपने त्रिकाली भगवान का स्वभाव है, उसका आश्रय ले, तो मेढ़क नहीं बनना पड़ेगा, बल्कि चारों गतियों का अभाव होकर पञ्चम गति का मालिक बन जावेगा। इसलिए हे भव्य! तू एक बार अपने स्वभाव की दृष्टि कर, फिर देख क्या होता है! किसी से पूछना नहीं पड़ेगा।

प्रश्न 18- क्या मनुष्य होने पर 'बकरा' कहला सकता है?

उत्तर – हाँ, कहला सकता है। जैसे, बकरा चौबीस घण्टे 'मैं-मैं' करता है; उसी प्रकार जो जीव, मनुष्यभव पाने पर भी 'मैं–मैं' (अर्थात्, पर का कर्तत्वरूप अभिमान) करता रहता है, वह उस समय बकरा ही है क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है।'मैं–मैं' के भाव के समय यदि आयुबन्ध हो गया तो बकरे की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर 'मैं–मैं' में ही जीवन बीतेगा।

प्रश्न 19– कोई कहे, 'बकरे' की योनि तो खराब है; अतः बकरा न बने, उसका कोई उपाय है?

उत्तर – 'मैं-मैं' के भावरहित अपना पारिणामिकभाव है। उसका आश्रय ले, तो बकरा नहीं बनना पड़ेगा, बल्कि औदयिकभावों का अभाव होकर, औपशमिक, धर्म का क्षायोपशमिक और क्षायिकदशा की प्राप्ति हो जावेगी।

प्रश्न 20– क्या मनुष्य होने पर 'बिल्ली' कहला सकता है?

उत्तर – हाँ, कहला सकता है। जैसे, बिल्ली को चौबीसों घण्टे चूहों को मारकर खाने का भाव रहता है; उसी प्रकार जो जीव, मनुष्यभव होने पर भी, दूसरों को मारकर खाने का भाव रखता है, वह उस समय 'बिल्ली' ही है क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। दूसरों को मारकर खाने के भाव के समय यदि आयु का बन्ध हो गया, तो भाई! बिल्ली की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर चूहों को मारकर खाने के ही भावों में पागल बना रहेगा।

प्रश्न 21– कोई कहे हमें 'बिल्ली' नहीं बनना है, क्योंकि बिल्ली का भव बहुत बुरा है तो क्या करें?

उत्तर – दूसरों को मारकर खाने के भावरहित अपना ज्ञायकस्वभाव है। उसका आश्रय ले तो बिल्ली नहीं बनना पड़ेगा, बल्कि तेरी गिनती पञ्च परमेष्ठियों में होने लगेगी।

प्रश्न 22– क्या मनुष्य होने पर 'निगोदिया' कहला सकता है?

उत्तर – हाँ, कहला सकता है। देखो! निगोद के कारण अनेक हैं परन्तु उन सबको तीन में समावेश करते हैं —

(1) अज्ञान-मोह अन्धकार, (2) देव-गुरु-शास्त्र की विराधना, और (3) नये-नये वेषों में अपनेपने की मान्यता।

प्रश्न 23- 'अज्ञान-मोह अन्धकार' क्या है, जिसका फल निगोद है ?

उत्तर - आत्मा की क्रिया, ज्ञाता-दृष्टा है। इसके बदले में मैं, पर जीवों को मारता हूँ, जिलाता हूँ; मैं झूठ बोलता हूँ, मैं सत्य बोलता हूँ; मैं चोरी करता हूँ, मैं चोरी नहीं करता हूँ; मैं कुशील सेवन करता हूँ, मैं ब्रह्मचर्य से रहता हूँ; मैं परिग्रह रखता हूँ, मैं परिग्रह का त्याग करता हूँ - ऐसी करोतिक्रिया और विकारीक्रिया को अपना मानना यह अज्ञान-मोह अन्धकार है।

(2) मैं ज्ञायक भगवान हूँ, इसके बदले में अपने को मनुष्य, देव, तिर्यञ्च, नारकी आदिरूप मानना, यह अज्ञान-मोह अन्धकार है।

(3) आत्मा, ज्ञानस्वरूप है, इसके बदले में परपदार्थों से, ज्ञेय से अपना ज्ञान मानना, यह अज्ञान-मोह अन्धकार है।

प्रश्न 24- यह तीनों प्रकार का अभिप्राय, अज्ञान मोह अन्धकार है - ऐसा कहीं शास्त्रों में कहा है ?

उत्तर - चारों अनुयोगों में कहा है परन्तु समयसार के बन्ध अधिकार, गाथा 268 से 273 इसकी साक्षी है तथा 169वें कलश में लिखा है कि 'मैं देव, मैं मनुष्य, मैं तिर्यञ्च, मैं नारकी, मैं दुःखी, मैं सुखी - ऐसी कर्मजनित पर्यायों में है आत्मबुद्धिरूप जो मग्नपना, उसके द्वारा कर्म के उदय से जितनी क्रिया होती है, उसे मैं करता हूँ, मैंने किया है, ऐसा करूँगा, ऐसे-ऐसे अज्ञान को लिये मानते हैं। वे जीव कैसे हैं ?' '**आत्महनः**' अपने को घातनशील है। जो जीव, मनुष्यभव होने पर भी ऐसे-ऐसे भाव करता है, वह उस समय तो निगोदिया है ही, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है और यदि ऐसे भावों के समय आयुबन्ध हो गया है तो निगोद में जाना पड़ेगा।

प्रश्न 25– देव–गुरु–शास्त्र की विराधना क्या है, जिसका फल निगोद है ?

उत्तर – एकमात्र अपने त्रिकाली भगवान आत्मा के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन, श्रावक, मुनि, श्रेणी, अरहन्त और सिद्धदशा की प्राप्ति होती है; किसी पर के या विकारीभावों के आश्रय से नहीं होती है। इसके बदले परपदार्थों के आश्रय से, दया, दान, पूजा, अणुव्रत, महाव्रतादि के आश्रय से धर्म की प्राप्ति होती है – ऐसी मान्यता ही देव–गुरु–शास्त्र की विराधना है, जिसका फल परम्परा निगोद है।

प्रश्न 26– नये–नये वेषों में अपने–अपने की मान्यता क्या है, जिसका फल निगोद है ?

उत्तर – श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार, श्लोक 41 के अर्थ में पण्डित सदासुखदासजी ने लिखा है कि 'मिथ्यादृष्टि, परकृत पर्याय में अपनापन माने है। मिथ्यादृष्टि का आपा जाति में, कुल देह में, धन में, राज्य में ऐश्वर्य में, महल–मकान–नगर कुटम्बनि में है। याकीलार हमारी घटी, हमारी बढ़ी, हमारा सर्वस्व पूरा हुआ। मैं नीचा हुआ, मैं ऊँचा हुआ, मै मरा, मैं जिया, हमारा तिरस्कार हुआ, हमारा सर्वस्व गया – इत्यादि परवस्तु में अपना संकल्प करि महा आर्तध्यान–रौद्रध्यान करि दुर्गति को पाय संसार परिभ्रमण करै है।' – यह मान्यता नये–नये वेषों में अपनेपने की मान्यता होने से निगोद का कारण है। दिगम्बरधर्म धारण करने पर भी ऐसी मान्यता के समय वह जीव, निगोदिया ही है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। नये–नये वेषों की मान्यता के समय यदि आयुबन्ध हो गया तो भाई! निगोद में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर उसमें पागल बना रहेगा।

प्रश्न 27– कोई कहे कि भाई! निगोद की पर्याय तो बहुत बुरी है। उसकी प्राप्ति हमें ना हो, उसके लिए हम क्या करें ?

उत्तर - (1) अज्ञान-मोह अन्धकाररहित;

(2) देव-गुरु-शास्त्र की विराधनारहित;

(3) नये-नये वेषों में अपनेपने की मान्यतारहित, अनादि-अनन्त तेरा स्वभाव है, उसका आश्रय ले तो निगोद में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि सादि-सान्त जो साधकदशा है, उसकी प्राप्ति होकर सादि-अनन्त जो साध्यदशा है, उसकी प्राप्ति हो जावेगी।

प्रश्न 28- क्या मनुष्य होने पर 'पृथ्वीकाय' कहला सकता है?

उत्तर - हाँ, कहला सकता है। जैसे—हम, पृथ्वी पर चलते हैं, दबने से वह दुःख का अनुभव करती है, लेकिन कुछ नहीं कह सकती है; उसी प्रकार मनुष्यभव होने पर, मैं सबको दबाऊँ और कोई मेरे सामने एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सके, ऐसा भाव करता है, वह उस समय पृथ्वीकाय ही है क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। ऐसे भाव के समय आदि आयुबन्ध हो गया तो 'पृथ्वीकाय' की योनि में जाना पड़ेगा। जहाँ निरन्तर तुझे सब दबायेंगे, और तू एक शब्द भी उच्चारण न कर सकेगा।

प्रश्न 29- कोई कहे, हमें 'पृथ्वीकाय' न बनना पड़े, उसका क्या उपाय है?

उत्तर - मैं सबको दबाऊँ और कोई मेरे सामने एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सके, ऐसे भाव से रहित, अस्पर्शस्वभावी भगवान आत्मा है, उसका आश्रय ले, तो भव का अभाव होकर, भगवानपना पर्याय में प्रकट हो जावेगा।

प्रश्न 30- क्या मनुष्य होने पर 'जलकाय' कहला सकता है?

उत्तर – हाँ, कहला सकता है। जैसे, तालाब का पानी ऊपर से देखने पर एक जैसा लगता है लेकिन कहीं दो गज का खड्डा है, कहीं तीन गज का खड्डा है; कहीं ऊँचा है, कहीं नीचा है; उसी प्रकार मनुष्यभव होने पर, ऊपर से चिकनी-चुपड़ी बातें करता है, अन्दर कपट रखता है, वह जीव उस समय जलकाय ही है क्योंकि 'जैसी गति, वैसी मति' होती है। ऐसे भाव के समय यदि आयुबन्ध हो गया तो 'जलकाय' की योनि में जाना पड़ेगा।

प्रश्न 31– कोई कहे, हमें 'जलकाय' न बनना पड़े, उसका कोई उपाय है?

उत्तर – छल-कपटरहित तेरी आत्मा का स्वभाव है, उसका आश्रय ले, तो जलकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि मुक्तिरूपी सुन्दरी का नाथ बन जावेगा।

प्रश्न 32– क्या मनुष्य होने पर 'अग्निकाय' कहला सकता है?

उत्तर – हाँ, कहला सकता है। जैसे, रोटी बनाने के बाद तवे को उतारते हैं तो तवे में टिम-टिम की चिंगारियाँ दिखती हैं। लोग कहते हैं कि तवा हँसता है परन्तु वह वास्तव में वे अग्निकाय के जीव हैं; उसी प्रकार जो मनुष्यभव पाने पर दूसरों को बढ़ता हुआ देखकर, ईर्ष्या करता है, उस समय वह जीव 'अग्निकाय' ही है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। यदि उस समय आयुबन्ध हो गया तो 'अग्निकाय' की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर जलने में ही जीवन बीतेगा।

प्रश्न 33– क्या मनुष्य होने पर 'वायुकाय' कहला सकता है?

उत्तर – हाँ, कहला सकता है। जैसे, हवा के झोंके कभी तेज,

कभी मन्द चलते रहते हैं; स्थिर नहीं रहते हैं; उसी प्रकार जो मनुष्यभव पाने पर भी, जहाँ पर जन्म-मरण के अभाव की बात चलती है, उसके बदले अन्य बात का विचार करता है, ऊँघता है या अन्य अस्थिरता करता है, वह जीव उस समय वायुकाय ही है क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। यदि अस्थिरता के भावों के समय आयुबन्ध हो गया तो 'वायुकाय' की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर अस्थिरता ही बनी रहेगी।

प्रश्न 34- कोई कहे, हमें वायुकाय नहीं बनना है तो हम क्या करें?

उत्तर - अस्थिरता के भावों से रहित, परमपारिणामिकभाव है, उसकी ओर दृष्टि करे तो वायुकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि क्रम से क्षायिकपना प्रगट करके, पूर्ण सुखी हो जावेगा।

प्रश्न 35- क्या मनुष्य होने पर 'वनस्पतिकाय' कहला सकता है?

उत्तर - हाँ, कहला सकता है। जैसे, बाजार से सब्जी लाते हैं, आप उसे चाकू से काटते है, वह आपसे कुछ नहीं कहती है; उसी प्रकार मनुष्यभव पाने पर, मैं दूसरों को ऐसा मारूँ, वह एक पग भी नहीं चल सकें - ऐसा भाव करता है, वह उस समय वनस्पतिकाय ही है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। यदि ऐसे भावों के समय आयु का बन्ध हो गया तो वनस्पतिकाय की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ एक-एक समय करके निरन्तर दुःख उठाने पड़ेंगे।

प्रश्न 36- कोई कहे, हमें 'वनस्पतिकाय' में न जाना पड़े, - इसका कोई उपाय है?

उत्तर - मैं सबको मारूँ और वह एक कदम भी आगे न बढ़ सके - ऐसे भाव से रहित, तेरा आत्मा का स्वभाव है, उसका आश्रय

ले तो वनस्पतिकाय की योनि में नही जाना पड़ेगा, बल्कि गुणस्थान –मार्गणा से रहित परमपद को प्राप्त करेगा।

प्रश्न 37– क्या मनुष्य होने पर 'दो इन्द्रियवाला जीव' कहला सकता है ?

उत्तर – हाँ, कहला सकता है। जैसे, सीप, शंख, कौड़ी, केंचुआ, लट आदि रसनाइन्द्रिय में मग्न हैं; उसी प्रकार जो जीव, मनुष्यभव पाने पर रसना के स्वाद में पागल हो रहा है, वह उस समय दो इन्द्रिय जीव ही है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। रसना के स्वाद में पागलपन के समय यदि आयुबन्ध हो गया तो दो इन्द्रिय में उत्पन्न होना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर रस के स्वाद में ही पागल बना रहेगा।

प्रश्न 38– कोई कहे, हमें दो इन्द्रिय की योनि में नहीं जाना पड़ें, इसका कोई उपाय हैं ?

उत्तर – रसनाइन्द्रिय के स्वाद से रहित, अरसस्वभावी भगवान आत्मा है। उसका आश्रय ले तो दो इन्द्रिय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि अरसस्वभाव, पर्याय में प्रगट हो जावेगा।

प्रश्न 39– क्या मनुष्य होने पर 'तीन इन्द्रिय' कहला सकता है ?

उत्तर – हाँ, कहला सकता है। जैसे, चींटी, बिच्छू, घुन, खटमल, जूँ आदि घ्राणेन्द्रिय में पागल हैं; उसी प्रकार मनुष्यभव पाने पर भी, जो जीव, सुगन्ध का सम्बन्ध मिलाने और दुर्गन्ध को हटाने में पागल बना रहता है, वह उस समय तीन इन्द्रिय जीव ही है क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। यदि उस समय आयुबन्ध हो गया तो तीन इन्द्रिय की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर घ्राणइन्द्रिय के विषय में ही पागल बना रहेगा।

प्रश्न 40- कोई कहे, हमें तीन इन्द्रिय की योनि में न जाना पड़े, ऐसा उपाय बताओ ?

उत्तर - सुगन्ध-दुर्गन्ध की इच्छारहित, अगन्धस्वभावी भगवान आत्मा है, उसका आश्रय ले तो तीन इन्द्रिय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि अगन्धस्वभाव, पर्याय में प्रगट हो जावेगा।

प्रश्न 41- क्या मनुष्य होने पर 'चार इन्द्रिय' कहला सकता है ?

उत्तर - हाँ, कहला सकता है। जैसे, मक्खी, डाँस, मच्छर, भिरड़, भ्रमर, पतङ्गा आदि रूप के विषय में पागल हैं; उसी प्रकार मनुष्यभव होने पर भी जो जीव, रूप बनाने में, सिनेमा आदि देखने में पागल है, वह उस समय चार इन्द्रिय का ही जीव है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। यदि उस समय आयुबन्ध हो गया तो चार इन्द्रिय की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर रूप में पागल रहेगा।

प्रश्न 42- कोई कहे, हमें चार इन्द्रिय नहीं बनना पड़े, इसका क्या उपाय है ?

उत्तर - रूप के देखने में पागलपन से रहित, अवर्णस्वभावी भगवान आत्मा स्वयं है, उसका आश्रय ले तो चार इन्द्रिय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि अवर्णस्वभाव, पर्याय में प्रगट हो जावेगा।

प्रश्न 43- क्या मनुष्य होने पर 'नारकी' कहला सकता है ?

उत्तर - हाँ, कहला सकता है। जो जीव, मनुष्यभाव होने पर भी, सात व्यसनों के, पाँच पापोंरूप तीव्र अशुभभावों के सेवन में मग्न है, वह उस समय नारकी ही है क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। यदि तीव्र अशुभभावों के समय आयुबन्ध हो गया तो

नारकी की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ एक-एक समय करके निरन्तर परस्पर एक-दूसरे से क्रोध करते हुए वचनप्रहार, शस्त्रप्रहार, कायप्रहार आदि से कष्ट देते व सहते रहते हैं। वहाँ कुछ खाने को मिलता नहीं, पीने को पानी मिलता नहीं, क्षुधा-तृषा से निरन्तर व्याकुल रहते हैं।

प्रश्न 44- कोई कहे, हमें नारकी न बनना पड़े, इसका क्या उपाय है?

उत्तर - शुभाशुभभावरहित आत्मा का त्रिकाली स्वभाव है, उसका आश्रय ले तो नारकी की योनि में नहीं जाना पड़ेगा; बल्कि सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर मोक्ष का पथिक बन जावेगा।

प्रश्न 45- क्या मनुष्य होने पर 'तिर्यञ्च' कहला सकता है?

उत्तर - हाँ, कहला सकता है। मनुष्यभव होने पर भी, जो जीव माया, अर्थात् छल-कपट करता है, वह जीव उस समय तिर्यञ्च ही है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। माया — छल-कपट के समय यदि आयुबन्ध हो गया तो तिर्यञ्च की योनि में जाना पड़ेगा। जहाँ पर निरन्तर छल-कपट के भावों में ही पागल बना रहेगा।

प्रश्न 46- कोई कहे, हमें तिर्यञ्च योनि में न जाना पड़े, इसके लिए क्या करें?

उत्तर - छल-कपटरहित तेरा स्वभाव है, उसका आश्रय ले, तो तिर्यञ्च योनि में नही जाना पड़ेगा, बल्कि सम्यक्त्वादि की प्राप्ति करके, क्रम से मुक्तिरूपी सुन्दरी का नाथ बन जावेगा।

प्रश्न 47- क्या मनुष्य होने पर 'देव' कहला सकता है?

उत्तर - हाँ, कहला सकता है। जो जीव, मनुष्यभव होने पर, अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना, शुक्ललेश्या आदि शुभभाव करता है, वह उस समय देव ही है क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति'

होती है और ऐसे शुभभाव के समय आयुबन्ध हो गया तो सम्यक्त्वरहित देव की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर आकुलता का सेवन करता हुआ, दु:खी होता रहेगा।

प्रश्न 48– कोई कहे, भाई! सम्यक्त्वरहित देव की पर्याय हमको न मिले, इसका क्या उपाय है ?

उत्तर – शुभभावरहित आत्मा का स्वभाव है, उसका आश्रय ले तो धर्म की प्राप्ति होकर, क्रम से वृद्धि करके, पूर्ण परमात्मदशा की प्राप्ति हो जावेगी।

प्रश्न 49– मनुष्य होने पर 'मनुष्यभव' का भाव क्या है ?

उत्तर – जो जीव, मनुष्यभव होने पर मन्दकषायरूप कभी शुभभाव, कभी अशुभभाव करता है, वह उस उसम मनुष्य ही है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। यदि ऐसे भाव के समय आयुबन्ध हो गया तो फिर मनुष्य योनि में जाना पड़ेगा। 'जहाँ बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुणसमय तारणी रत रह्यो; अर्धमृतकसम बूढ़ापनों, कैसे रूप लखै आपनो'? – ऐसी दशा में ही जीवन पूरा हो जावेगा।

प्रश्न 50– कोई कहे, अब हम क्या करे जिससे मनुष्यगति का अभाव होकर, मोक्ष की प्राप्ति हो ?

उत्तर – एकमात्र अपने त्रिकाली भगवान आत्मा का आश्रय ले तो प्रथम औपशमिकसम्यक्त्व की प्राप्ति होकर, फिर क्षयोपशम / क्षायिकसम्यक्त्वपूर्वक श्रावकदशा, मुनिदशा, श्रेणीदशा, अरहन्त और सिद्धदशा की प्राप्ति हो, तो फिर मनुष्य योनि का सम्बन्ध नहीं रहेगा, बल्कि अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदिरूप शुद्धदशा की प्राप्ति हो जावेगी। पर्याय में सादि-अनन्त सुखदशा बनी रहेगी, तब मनुष्यगति में जन्म हुआ सार्थक कहलायेगा।

प्रश्न 51- साँप आदि पर्यायों के आधार से चार बातें कौन-कौन सी निकालनी चाहिए ?

उत्तर - (1) क्या मनुष्यभव होने पर साँप कहला सकता है ?

(2) यह जीव मनुष्य से साँप क्यों बनता है ?

(3) साँप न बनना पड़े, इसका क्या उपाय है ?

(4) स्वभाव का आश्रय कैसे ले ?

प्रश्न 52- धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता के विषय में जिन-जिनवर और जिनवरवृषभों का क्या आदेश है ?

उत्तर - हे भव्य ! एकमात्र निज परमपारिणामिकभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन, श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणीपना, अरहन्तपना और सिद्धपने की प्राप्ति होती है। किसी परपदार्थ के आश्रय से या विकारीभावों के आश्रय से धर्म की प्राप्ति आदि कभी नहीं होती है। यह जिन-जिनवर और जिनवरवृषभों का आदेश जिनवाणी में आया है।

3

प्रतिक्रमण, आलोचना और प्रत्याख्यान का स्वरूप

प्रश्न 1- कुन्दकुन्दभगवान ने प्रतिक्रमण का स्वरूप नियमसार में क्या बताया है ?

उत्तर -

नारक नहीं, तिर्यंच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं॥77॥

मैं मार्गणा के स्थान नहीं, गुणस्थान-जीवस्थान नहीं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं॥78॥

बालक नहीं मैं, वृद्ध नहिं, नहिं युवक तिन कारण नहीं।
कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं॥79॥

मैं राग नहिं, मैं द्वेष नहिं, नहिं मोह तिन कारण नहीं।
कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं॥80॥

मैं क्रोध नहिं, मैं मान नहिं, माया नहिं, मैं लोभ नहिं।
कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमोदक मैं नहीं॥81॥

मिथ्यात्व आदिक भावकी, की जीव ने चिर भावना।
सम्यक्त्व आदिक भावकी, पर की कभी न प्रभावना॥90॥

है जीव उत्तम अर्थ, मुनि तत्रस्थ हन्ता कर्म का।
अतएव है बस ध्यान ही, प्रतिक्रमण उत्तम अर्थ का॥92॥

प्रश्न 2- प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर - स्वास्थानात् यत्परस्थानं, प्रमादस्य वशाद्गतः।
भयोऽप्यागमनं तत्र प्रतिक्रमणमुच्यते॥

अर्थात्, प्रमाद के वश होकर स्वस्थान (अपना त्रिकाली-स्वभाव) को छोड़कर, परस्थान में (मोह-राग-द्वेषभावों में) गया हो, वहाँ से अपने स्थान में वापस आ जाना, उसे प्रतिक्रमण कहते हैं।

प्रश्न 3- भगवानकुन्दकुन्द ने समयसार में प्रतिक्रमण किसे कहा है ?

उत्तर -

शुभ और अशुभ अनेक विध, के कर्म पूरव जो किए।
उनको निवर्ते आत्म को, वो आत्मा प्रतिक्रमण है ॥383॥

अर्थात्, पहले लगे हुए दोषों से आत्मा को निवृत्त करना, सो प्रतिक्रमण है; इसलिए निश्चय से विचार करने पर, जो आत्मा भूतकाल के कर्मों से अपने को भिन्न जानता, श्रद्धा करता और अनुभव करता है, वह आत्मा स्वयं ही प्रतिक्रमण है।

प्रश्न 4- प्रतिक्रमण के कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो भेद हैं—द्रव्यप्रतिक्रमण, और भावप्रतिक्रमण।

प्रश्न 5- द्रव्यप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर - वर्तमान में भूतकाल के संयोगों को ज्ञेयरूप जानना, द्रव्यप्रतिक्रमण है। जैसे—दिल्ली में बैठे हुए ज्ञानी को सम्मेदशिखर, गिरनार, ज्ञानी-ध्यानियों का विचार आने पर, संयोगों को ज्ञेयरूप जानना, वह द्रव्यप्रतिक्रमण है।

प्रश्न 6- भावप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर - वर्तमान में भूतकाल के शुभाशुभभावों को ज्ञेयरूप ज्ञान

मे लेना, भावप्रतिक्रमण है। जैसे—दिल्ली में बैठै हुए ज्ञानी को सम्मेदशिखर और गिरनार में किये गये शुभाशुभभावों का ध्यान आने पर, शुभाशुभभावों को ज्ञेयरूप जानना, यह भावप्रतिक्रमण है।

प्रश्न 7– अप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर – प्रमाद के वश होकर, स्वस्थान को छोड़कर, परस्थान में गया हो, फिर वहाँ से अपने स्थान में वापस नहीं आना, उसे अप्रतिक्रमण कहते हैं।

प्रश्न 8– श्री कुन्दकुन्दभगवान ने समयसार, गाथा 283 से 285 तक में अप्रतिक्रमण किसे कहा है ?

उत्तर – अतीत काल में जिन द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म को ग्रहण किया था, उन्हें वर्तमान में अच्छा समझना, उनके संस्कार रहना, उनके प्रति ममत्व रहना, अप्रतिक्रमण है।

प्रश्न 9– अप्रतिक्रमण के कितने भेद हैं ?

उत्तर – दो भेद हैं—द्रव्यअप्रतिक्रमण और भावअप्रतिक्रमण।

प्रश्न 10– द्रव्यअप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर – वर्तमान समय में भूत काल के संयोगों को इष्ट-अनिष्ट मानना, द्रव्यअप्रतिक्रमण है। जैसे—दिल्ली में बैठै हुए कोई जीव विचार कर रहा है कि सम्मेदशिखर, गिरनार, ज्ञानी-ध्यानियों का संयोग मुझे सदैव बना रहे और अनिष्ट संयोग कभी न रहे, यह द्रव्यअप्रतिक्रमण है।

प्रश्न 11– भावअप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर – वर्तमान में भूत काल के शुभाशुभभावों के इष्ट-अनिष्ट मानना, भावअप्रतिक्रमण है। जैसे—दिल्ली में बैठे हुए कोई जीव सम्मेदशिखर और गिरनार में किये हुए शुभाशुभभावों में, अशुभभाव

जरा भी न होवे और शुभभावों को बनाये रखने का भाव, यह भावअप्रतिक्रमण है। *[श्रीसमयसार, कलश 226, देखें]*

प्रश्न 12– प्रतिक्रमण से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – अनादि काल से अज्ञानी, भूत काल की परवस्तुओं को और शुभाशुभभावों को स्मरण करके, उन्हें इष्ट-अनिष्ट मानकर मिथ्यात्व की पुष्टि कर रहा था, तो सतगुरु कहते है कि हे जीव! भूत काल सम्बन्धी द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म से दृष्टि उठाकर, एकमात्र अपने भूतार्थस्वभाव पर दृष्टि दे, तो ज्ञेय-ज्ञायकपना प्रकट हो और शान्ति की प्राप्ति हो।

प्रश्न 13– कुन्दकुन्दभगवान ने आलोचना का स्वरूप नियमसार में क्या बताया है ?

उत्तर –

नोकर्म, कर्म, विभाव, गुण पर्याय विरहित आतमा।
ध्याता उसे, उस श्रमण को होती परम-आलोचना॥107॥

समभाव में परिणाम स्थापे और देखे आतमा।
जिनवरवृषभ उपदेश में वह जीव है आलोचना॥109॥

जड़कर्म-तरु-जड़नाश के सामर्थ्यरूप स्वभाव है।
स्वाधीन निज समभाव, आलुंछन वही परिणाम है॥110॥

प्रश्न 14– आलोचना किसे कहते हैं ?

उत्तर – अपने स्वरूप की (परमपारिणामिकभाव की) मर्यादा में रहकर ज्ञान करना, आलोचना है।

प्रश्न 15– भगवानकुन्दकुन्द ने समयसार में आलोचना किसे कहा है ?

उत्तर –

शुभ और अशुभ अनेक विध, है उदित जो इस काल में।
उन दोष को जो चेतता, आलोचना वह जीव है॥385॥

अर्थात्, वर्तमान दोष से आत्मा को पृथक् करना, वह आलोचना है; इसलिए निश्चय से विचार करने पर जो आत्मा, वर्तमान काल के द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मों से अपने को भिन्न जानता है, श्रद्धा करता है और अनुभव करता है, वह आत्मा स्वयं ही आलोचना है।

प्रश्न 16- आलोचना के कितने भेद हैं?

उत्तर - दो भेद हैं—द्रव्यआलोचना, और भावआलोचना।

प्रश्न 17- द्रव्यआलोचना किसे कहते हैं?

उत्तर - वर्तमान में वर्तमान के संयोगसम्बन्ध ज्ञेयरूप ज्ञान में आना, द्रव्यआलोचना है। जैसे—सम्मेदशिखर में बैठे हुए वर्तमान के संयोगसम्बन्ध को (नन्दीश्वरदीप की रचना, 24 टोकों, ज्ञानी -ध्यानियों को) ज्ञेयरूप ज्ञान में लेना, यह द्रव्यआलोचना है।

प्रश्न 18- भावआलोचना किसे कहते हैं?

उत्तर - वर्तमान में हुए शुभाशुभभावों को ज्ञेयरूप ज्ञान में लेना, भावआलोचना है। जैसे—सम्मेदशिखर में बैठे हुए वर्तमान में होनेवाले शुभ-अशुभभावों को ज्ञेयरूप ज्ञान में लेना, यह भाव-आलोचना है।

प्रश्न 19- अनालोचना किसे कहते हैं?

उत्तर - अपने स्वरूप की मर्यादा में रहकर नहीं जानना, वह अनालोचना है।

प्रश्न 20- भगवानकुन्दकुन्द ने समयसार में अनालोचना किसे कहा है?

उत्तर - वर्तमान काल में जिन द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म को ग्रहण किया है, उन्हें वर्तमान में अच्छा समझना, उनके संस्कार रहना, उनके प्रति ममत्व रखना, अनालोचना है।

प्रश्न 21– अनालोचना के कितने भेद हैं?

उत्तर – दो भेद—द्रव्यअनालोचना, और भावअनालोचना।

प्रश्न 22– द्रव्यअनालोचना किसे कहते हैं?

उत्तर – वर्तमान में वर्तमान के संयोग सम्बन्धों को इष्ट–अनिष्ट मानना, द्रव्यअनालोचना है। जैसे—गिरनार पर बैठे हुए वहाँ के संयोग सम्बन्धों की (पाँचवी टोंक–चौथी टोंक की) चाहना करना और बुरे संयोग सम्बन्धों की चाहना न करना, यह द्रव्य–अनालोचना है।

प्रश्न 23– भावअनालोचना किसे कहते हैं?

उत्तर – वर्तमान में वर्तमान के शुभाशुभभावों को इष्ट–अनिष्ट मानना, भावअनालोचना है। जैसे—गिरनारपर्वत पर बैठे हुए वर्तमान के दया–दान–पूजा–अणुव्रत–महाव्रतादि भावों को इष्ट मानना और अनिष्टभाव तनिक भी न आवे, यह भावअनालोचना है।

[श्रीसमयसार, कलश 227 देखें]

प्रश्न 24– वर्तमान में हमको सच्चेदव–गुरु–शास्त्र का संयोग मिला, शुभभाव का अवसर मिला – क्या इसे भी हम अच्छा न माने?

उत्तर – वास्तव में एकमात्र अपना भूतार्थ आत्मा ही आश्रय करने योग्य हैं। स्वभाव के आश्रय से शुद्ध वीतरागदशा प्रकट करने योग्य उपादेय है। ज्ञानियों को भूमिकानुसार जो राग होता है, उसे ज्ञानी, हेय–ज्ञेय जानते हैं परन्तु अज्ञानी, अनादि से एक–एक समय करके वर्तमान में देव–गुरु–शास्त्र के संयोगों को, वर्तमान के शुभभावों को अच्छा मानकर पागल बना रहता है और इन्हें मोक्षमार्ग मानता है। आचार्य भगवान कहते हैं कि अपनी आत्मा का अनुभव नहीं होने से शुभ, अच्छा; अशुभ, बुरा – यह मान्यता अनन्त संसार का कारण है और महान पाप है।

प्रश्न 25- कुन्दकुन्दभगवान ने प्रत्याख्यान का स्वरूप नियमसार में क्या बताया है ?

उत्तर -

भावी शुभाशुभ छोड़कर, तजकर वचन विस्तार रे।
जो जीव ध्याता आतमा, प्रत्याख्यान होता है उसे ॥95॥
कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्ति स्वभाव जो।
मैं हूँ वहीं, यह चिन्तवन होता निरन्तर ज्ञानि को ॥96॥
निज भाव को छोड़े नहीं, किंचित् ग्रहे परभाव नहिं।
देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिन्तन यही ॥97॥
जो प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेशबन्ध बिन आत्मा।
मैं हूँ वही, यों भावता ज्ञानी करे स्थिरता वहाँ ॥98॥
मम ज्ञान में है आतमा, दर्शन-चरित्र में आतमा।
हैं और प्रत्याख्यान संवर, योग में भी आतमा ॥100॥
दृगज्ञान-लक्षित और शाश्वत् मात्र आत्मा मम अरे।
अरु शेष सब संयोग लक्षित भाव मुझसे हैं परे ॥102॥

प्रश्न 26- प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्मा की जैसी प्रसिद्धि है, वैसी ही उसकी मर्यादा में (स्वभावसन्मुख) रहना, उसे प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्रश्न 27- भगवानकुन्दकुन्द ने समयसार में प्रत्याख्यान किसे कहा है ?

उत्तर -

शुभ अरु अशुभ भावी करम का बन्ध हो जिनभाव में।
उनसे निर्वतन जो करे, वो आतमा पचखाण है ॥ ३८४ ॥

अर्थात्, भविष्य में दोष लगने का त्याग करना, वह प्रत्याख्यान

है; इसलिए, निश्चय से विचार करने पर जो आत्मा, भविष्यत् काल के द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मों से अपने को भिन्न जानता है, श्रद्धा करता है, और अनुभव करता है, वह आत्मा स्वयं ही प्रत्याख्यान है।

प्रश्न 28- श्रीसमयसार, गाथा 34-35 में 'ज्ञान ही प्रत्याख्यान है' - ऐसा क्यों कहा है?

उत्तर -

सब भाव पर ही जान, प्रत्याख्यान भावों का करे।
इससे नियम से जानना कि, ज्ञान प्रत्याख्यान है॥३४॥
ये और का है जानकर, परद्रव्य को जो नर तजे।
त्यो और के हैं जानकर, परभाव ज्ञानी परित्यजे॥३५॥

अर्थात्, जिससे 'अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थों को पर हैं' ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है—त्याग करता है, उससे प्रत्याख्यान, ज्ञान ही है - ऐसा नियम से जानना। अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है; दूसरा कुछ नहीं॥34॥ जैसे—लोक में कोई पुरुष परवस्तु को 'यह परवस्तु है' — ऐसा जाने तो परवस्तु का त्याग करता है; उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष, समस्त परद्रव्यों के भावों को 'ये परभाव हैं' — ऐसा जानकर, उनको छोड़ देता है।

प्रश्न 29- समयसार, कलश टीका, कलश 29 में पण्डित राजमलजी ने प्रत्याख्यान किसे बताया है?

उत्तर - जैसे—किसी पुरुष ने धोबी के घर से अपने वस्त्र के धोखे में, दूसरे का वस्त्र आने पर, बिना पहिचान के उसे पहन कर अपना जाना; बाद में उस वस्त्र का धनी जो कोई था, उसने अञ्चल पकड़कर कहा कि 'यह वस्त्र तो मेरा है, पुनः कहा कि मेरा ही है' — ऐसा सुनने पर उस पुरुष ने चिह्न देखा, जाना कि मेरा चिह्न तो मिलता नहीं, इससे निश्चय से यह वस्त्र मेरा नहीं है; दूसरों का

है। उसके ऐसी प्रतीति होने पर, त्याग हुआ घटित होता है। देखो! वस्त्र पहने ही है तो भी त्याग घटित होता है, क्योंकि स्वामित्वपना छूट गया है। उसी प्रकार अनादि काल से जीव, मिथ्यादृष्टि है; इसलिए कर्मजनित जो शरीर, दु:ख-सुख, राग-द्वेष आदि विभावपर्यायें, उन्हें अपना ही जानता है और उन्हीं रूप प्रवर्तता है; हेय-उपादेय-ज्ञेय को नहीं जानता है। सतगुरु का उपदेश सुना, हे भव्य! जितने हैं जो शरीर, सुख-दु:ख, राग-द्वेष-मोह, जिनको तू अपना जानता है और इनमें रत हुआ है, वे तो सब ही तेरे नहीं हैं। तू तो ज्ञान-दर्शन का धारी शुद्धचिद्रूप है। ऐसा निश्चय जिस काल हुआ, उसी समय सकल द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म का त्याग है। याद रहे-शरीर, सुख-दु:ख, जैसे थे, वैसे ही हैं, परिणामों से त्याग है, क्योंकि स्वामित्वपना छूट गया है - इसका नाम 'ज्ञान ही प्रत्याख्यान है'। देखो! ज्ञान हो गया कि वे मेरा नहीं, पीछे क्या उनको छोड़ना पड़ता है? अरे भाई! नहीं, परन्तु छूट ही जाता है; इसलिए ज्ञान ही प्रत्याख्यान है।

प्रश्न 30- प्रत्याख्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर - दो भेद हैं—द्रव्यप्रत्याख्यान, और भावप्रत्याख्यान।

प्रश्न 31- द्रव्यप्रत्याख्यान किसे कहते हैं?

उत्तर - वर्तमान में जैसा संयोगसम्बन्ध है, भविष्य के लिए भी ऐसा ही संयोगसम्बन्ध बना रहे - ऐसे भाव का नहीं आना; यदि ऐसे संयोग आये तो ज्ञेयरूप से आये, यह द्रव्यप्रत्याख्यान है। जैसे - वर्तमान में सच्चे देव-गुरु-धर्म का संयोगसम्बन्ध है, आगामी काल में ऐसा ही बना रहे - ऐसा भाव का नहीं आना, परन्तु ज्ञेयरूप से ज्ञान में आवे, यह द्रव्यप्रत्याख्यान है।

प्रश्न 32- भावप्रत्याख्यान किसे कहते हैं?

उत्तर – वर्तमान के शुभभावों को आगामी काल में बनाये रखने का भाव और अशुभभाव न आये, ऐसा भाव, भविष्यत् के लिए नहीं आना अथवा आने पर उन्हें ज्ञेयरूप ज्ञान में लेना, भावप्रत्याख्यान है। जैसे—वर्तमान सम्मेदशिखर में बैठे हुए शुभभाव तो आते हैं, अशुभभाव नहीं आते हैं; भविष्य के लिए शुभाशुभभावों का ज्ञेयरूप ज्ञान में आना, यह भावप्रत्याख्यान है।

प्रश्न 33– अप्रत्याख्यान किसे कहते हैं?

उत्तर – आत्मा की जैसी प्रसिद्धि है, उसके सन्मुख न रहकर, उसकी मर्यादा का उल्लंघन करना, अप्रत्याख्यान है।

प्रश्न 34– भगवानकुन्दकुन्द ने समयसार, गाथा 283 से 285 तक में अप्रत्याख्यान किसे कहा है?

उत्तर – आगामी काल सम्बन्धी द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मों की इच्छा रखना, ममत्व रखना, अप्रत्याख्यान है – ऐसा कहा है।

प्रश्न 35– अप्रत्याख्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर – दो भेद हैं—द्रव्यअप्रत्याख्यान, और भावअप्रत्याख्यान।

प्रश्न 36– द्रव्यअप्रत्याख्यान किसे कहते हैं?

उत्तर – वर्तमान में द्रव्यकर्म-नोकर्म का जैसा सम्बन्ध है, वैसा ही सम्बन्ध भविष्य में भी बनाए रखने का भाव, द्रव्यअप्रत्याख्यान है। जैसे—वर्तमान में सच्चे देव-गुरु-धर्म का संयोगसम्बन्ध है, आगामी काल में भी ऐसा ही बना रहे – ऐसा भाव, द्रव्यअप्रत्याख्यान है।

प्रश्न 37– भावअप्रत्याख्यान किसे कहते हैं?

उत्तर – वर्तमान में जैसे शुभभाव हैं, अशुभभाव नहीं हैं, आगामी काल में ऐसे ही शुभभाव बने रहें तो अच्छा हो, वह भावअप्रत्याख्यान है। जैसे—वर्तमान सम्मेदशिखर में बैठे हुए शुभभाव तो आते हैं और

अशुभभाव जरा भी नहीं आते; भविष्य में भी ऐसे शुभभावों को बनाए रखने का भाव, यह भावअप्रत्याख्यान है।

[श्रीसमयसार, कलश 288 देखें]

प्रश्न 38 - आपने, वर्तमान में जो अच्छा संयोगसम्बन्ध है और शुभभाव हैं, उन्हें आगामी काल में बनाए रखने के भाव का निषेध क्यों किया है ?

उत्तर - वर्तमान में जैसा अच्छा संयोगसम्बन्ध है, शुभभाव हैं; वैसे ही आगामी काल में बने रहने का तात्पर्य यह हुआ कि तू संसार में ही घूमता रहे और निर्वाण की प्राप्ति न हो। अरे भाई! ऐसे भाव, अनन्त संसार का कारण हैं; इसलिए एकमात्र परमपारिणामिक-भावरूप अपने आत्मा का आश्रय लेकर, धर्म की प्राप्ति ही सुख पाने का उपाय है।

प्रश्न 39- भगवानकुन्दकुन्द और अमृतचन्द्राचार्य ने प्रतिक्रमण-अप्रतिक्रमण; आलोचना-अनालोचना; और प्रत्याख्यान-अप्रत्याख्यान का स्वरूप किन-किन गाथाओं और टीका में बताया है ?

उत्तर - (1) समयसार, गाथा 283 से 285 तक अप्रतिक्रमणादि का स्वरूप समझाया है।

(2) समयसार, गाथा 306 तथा 307 में प्रतिक्रमण; गाथा 383 से 389 तक प्रतिक्रमण-आलोचना आदि का स्वरूप स्पष्ट किया है।

(3) समयसार, गाथा 215 में 'ज्ञानी के त्रिकाल सम्बन्धी परिग्रह नहीं है' - ऐसा बताया है। *

---

* पात्र जीवों से उक्त गाथाओं एवं टीका का सूक्ष्मता से अध्ययन करने का अनुरोध है।

प्रश्न 40– क्या नियमसार में प्रतिक्रमणादि का स्वरूप बताया है ?

उत्तर – (1) नियमसार, गाथा 38 से 50 तक किसके आश्रय से प्रतिक्रमणादि उत्पन्न होते हैं, यह बताया है।

(2) गाथा 77 से 158 तक की गाथाओं में प्रतिक्रमण आदि निश्चयचारित्र का वर्णन किया है।

(3) नियमसार, गाथा 119 की टीका तथा फुटनोट में बताया है कि 'मात्र परमपारिणामिकभाव का—शुद्धात्म द्रव्यसामान्य का' — आलम्बन लेना चाहिए। उसका आलम्बन लेनेवाला भाव ही (वीतरागभाव ही) महाव्रत, समिति, गुप्ति, प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित आदि सब कुछ है। (आत्मस्वरूप का आलम्बन, आत्मस्वरूप का आश्रय, आत्मस्वरूप के प्रति सन्मुखता, आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव, आत्मस्वरूप का ध्यान, परम पारिणामिकभाव की भावना, मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्यसामान्य हूँ – ऐसी परिणति—इन सबका एक ही अर्थ है।)

प्रश्न 41– समयसार में विषकुम्भ किसे कहा है ?

उत्तर –

प्रतिक्रमण अरु प्रतिसरण, त्यों परिहरण, निवृत्ति धारणा।
अरु शुद्धि, निन्दा, गर्हणा, ये अष्ट विध विषकुम्भ हैं ॥306॥

प्रश्न 42– समयसार में अमृतकुम्भ किसे कहा है ?

उत्तर –

अनप्रतिक्रमण अनप्रतिसरण, अनपरिहरण अनधारणा।
अनिवृत्ति, अनगर्हा, अनिन्द, अशुद्धि–अमृतकुम्भ हैं ॥307॥

4

श्रीसमयसार, गाथा 390 से 404 तक का रहस्य

भगवान आत्मा की छह बोलो से सिद्धि

प्रश्न 1- भगवान आत्मा, परद्रव्यों से भिन्न है - इसकी सिद्धि के लिए भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने श्रीसमयसार, गाथा 390 से 404 तक में क्या बताया है ?

उत्तर -

रे! शास्त्र है नहि ज्ञान, क्योंकि शास्त्र कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, शास्त्र अन्य प्रभु कहे ॥390॥
रे! शब्द है नहिं ज्ञान, क्योंकि शब्द कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, शास्त्र अन्य प्रभु कहे ॥391॥
रे! रूप है नहिं ज्ञान, क्योंकि रूप कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, रूप अन्य प्रभु कहे ॥392॥
रे! वर्ण है नहिं ज्ञान, क्योंकि वर्ण कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, वर्ण अन्य प्रभु कहे ॥393॥
रे! गन्ध है नहिं ज्ञान, क्योंकि गन्ध कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, गन्ध अन्य प्रभु कहे ॥394॥
रे! रस है नहिं ज्ञान, क्योंकि रस जु कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, अन्य रस जिनवर कहे ॥395॥
रे! स्पर्श है नहिं ज्ञान, क्योंकि स्पर्श कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, स्पर्श अन्य प्रभु कहे ॥396॥

रे! कर्म है नहिं ज्ञान, क्योंकि कर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, कर्म अन्य जिनवर कहे ॥397॥
रे! धर्म नहिं है ज्ञान, क्योंकि धर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, धर्म अन्य जिनवर कहे ॥398॥
नहिं है अधर्म जु ज्ञान, क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, अधर्म अन्य प्रभु कहे ॥399॥
रे! काल है नहिं ज्ञान, क्योंकि काल कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, काल अन्य प्रभु कहे ॥400॥
आकाश है नहिं ज्ञान, क्योंकि आकाश कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से आकाश अन्य रु, ज्ञान अन्य प्रभु कहे ॥401॥
रे! ज्ञान, अध्यवसान नहिं क्योंकि अचेतन रूप है।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, अन्य अध्यवसान है ॥402॥
रे! सर्वदा जाने हि इससे, जीव ज्ञायक ज्ञानि है।
अरु ज्ञान है ज्ञायक से, अव्यतिरिक्त यों ज्ञातव्य है ॥403॥
सम्यक्त्व अरु संयम तथा पूर्वाङ्गगत सब सूत्र जो।
धर्माधरम दीक्षा सबहि, बुध पुरुष माने ज्ञान को ॥404॥*

प्रश्न 2- कुन्दकुन्द आचार्य ने इन पन्द्रह गाथाओं में क्या बताया है?

उत्तर - भगवान आत्मा का शास्त्र, शब्द, गुरु का वचन, दिव्यध्वनि के साथ; किसी प्रकार के आकार के साथ; काला-पीला, नीला, लाल, सफेद रूप के साथ; सुगन्ध-दुर्गन्धरूप गन्ध के साथ; खट्टा-मीठा-कड़ुआ, चर्परा-कषायलारूप रस के साथ; हल्का -भारी, ठण्डा-गरम, रूखा-चिकना, कड़ा-नरमरूप स्पर्श के साथ;

* इन गाथाओं पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन भेदविज्ञानसार नाम से प्रकाशित हैं, जिनका अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है।

आठ कर्मों के साथ, धर्म-अधर्म-आकाश-काल के साथ; कर्म के उदयरूप अध्यवसान के साथ सम्बन्ध नहीं है - ऐसा अनादि से जिनदेव कहते हैं क्योंकि आत्मा निरन्तर जानता है; इसलिए ज्ञायक - ऐसा जीव, ज्ञानवाला है और ज्ञान, ज्ञायक से अभिन्न है - ऐसा जानना चाहिए। यहाँ ज्ञान कहने से आत्मा ही समझना चाहिए। ज्ञानी, ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टि, संयम, अङ्ग-पूर्वगत सूत्र, पुण्य -पाप, दीक्षा मानते हैं।

तात्पर्य यह है कि अनादि अज्ञान से होनेवाली शुभाशुभ उपयोगरूप परसमय की प्रवृत्ति को दूर करके, सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्र में प्रवृत्तिरूप स्वसमय को प्राप्त करके, उस स्वसमय परिणमनस्वरूप मोक्षमार्ग में अपने को परिणमित करके, जो सम्पूर्ण विज्ञानघनस्वभाव को प्राप्त हुआ है और जिसमें कोई त्याग-ग्रहण नहीं है - ऐसे साक्षात् समयसारस्वरूप परमार्थभूत, निश्चल रहा हुआ, शुद्ध पूर्ण आत्मद्रव्य को देखना चाहिए।

प्रश्न 3- आत्मा क्या करता है?

उत्तर - आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा, मोहोऽयं व्यवहारिणाम॥

अर्थात्, चेतना आत्मा, चेतनमात्र परिणाम को करता है; अतः आत्मा स्वयं चेतना परिणाममात्रस्वरूप है। आत्मा परभाव का कर्ता है - ऐसा मानना, सो व्यवहारी जीव का मोह (अज्ञान) है।

(श्रीसमयसार, कलश 62)

प्रश्न 4- क्या चेतनपरिणाम से भिन्न, अचेतन-पुद्गल-परिणामरूप कर्म को जीव करता है?

उत्तर - सर्वथा नहीं करता है। चेतनद्रव्य, ज्ञानावरणादि कर्म को करता है - ऐसा जानना, ऐसा मानना मिथ्यादृष्टि जीवों का

अज्ञान है। ज्ञानावरणीयकर्म का कर्ता, जीव है, सो कहना उपचार है।

[श्रीसमयसार, कलश 210 तथा 214]

प्रश्न 5– आत्मा का कार्य, ज्ञान है; उस ज्ञान का पर से सम्बन्ध नहीं है, इसमें से कितने बोल निकल सकते हैं ?

उत्तर – हजारों बोल निकल सकते हैं परन्तु उन सबका छह बोलों में समावेश करते हैं —

(1) ज्ञान, अरूपी है।

(2) ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र, विघ्न नहीं कर सकता।

(3) ज्ञान, अविकारी है।

(4) ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है।

(5) ज्ञान, पर का कुछ भी नहीं कर सकता है।

(6) ज्ञान, सर्व समाधानकारक है।

प्रश्न 6– ज्ञान, अरूपी है – यह किस प्रकार है ?

उत्तर – भगवान आत्मा, अरूपी है; उसके गुण, अरूपी हैं और उसकी पर्याय भी अरूपी हैं; इसलिए आत्मा का रूपीपदार्थों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न 7– क्या शास्त्रों से, भगवान की दिव्यध्वनि से, गुरु के वचनों से ज्ञान होता है ?

उत्तर – (1) बिल्कुल नहीं, क्योंकि शास्त्र, दिव्यध्वनि, गुरु का शब्द, पुद्‌गल की स्कन्धरूप पर्याय हैं, इनमें ज्ञानपना नहीं है; इसलिए जो रूपी हैं और जिनमें ज्ञान नहीं है – ऐसा जो शास्त्र, दिव्यध्वनि, शब्द आदि, अरूपी ज्ञानघन आत्मा को, ज्ञान का कारण बने – ऐसा नहीं हो सकता है; अतः ज्ञान, अरूपी है – ऐसा सिद्ध होता है।

(2) ये शास्त्र हैं, ये स्थूल-स्थूल स्कन्ध हैं। इनमें वजन है।

देखो, हजारों पुस्तकों का वजन उठाया नहीं जा सकता किन्तु हजारों पुस्तकों का ज्ञान होने में जरा भी वजन नहीं लगता। इससे सिद्ध होता कि 'ज्ञान, अरूपी है।'

प्रश्न 8- शास्त्रों से, दिव्यध्वनि से, गुरु के वचनों से, द्रव्यकर्म के क्षयोपशमादि से, और ज्ञेयों से ज्ञान होता है - ऐसा शास्त्रों में क्यों कहा है ?

उत्तर - कहने को तो है, वस्तुस्वरूप विचारने पर उसमें कर्ता -कर्मसम्बन्ध नहीं है; व्यवहारदृष्टि से ही जीव इनका कर्ता है। यह कहने के लिए सत्य है, क्योंकि व्याप्य-व्यापकपना एक ही द्रव्य में होता है; दो द्रव्य में कभी भी नहीं होता है। *[कलश 214 से]*

प्रश्न 9- जहाँ दो द्रव्यों का कर्ता-कर्म लिखा हो, वहाँ क्या अर्थ जानना चाहिए ?

उत्तर - जहाँ पर दो द्रव्यों का कर्ता-कर्म लिखा हो, वहाँ पर 'व्यवहारनय की मुख्यतासहित व्याख्यान है, उसे ऐसा है नहीं, किन्तु निमित्तादि की अपेक्षा से यह उपचार किया है' - ऐसा जानना चाहिए।

प्रश्न 10- यदि कोई कहे कि हम तो शास्त्रों से, दिव्यध्वनि से, गुरु के वचनों से, कर्म के क्षयादि से और ज्ञेयों से ही ज्ञान मानेंगे, तो उसके लिये जिनवाणी में उसे किस-किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर - (1) 'तस्य देशना नास्ति' - वह जिनवाणी सुनने के अयोग्य है। *(पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, गाथा 6)*

(2) वह पद-पद पर धोखा खाता है; *(श्री प्रवचनसार, गाथा 56)*

(3) ज्ञेयों से ज्ञान होता है - ऐसी श्रद्धा को मिथ्यादर्शन, ऐसे ज्ञान को मिथ्याज्ञान और ऐसे आचरण को मिथ्याचारित्र कहा है; *(श्री समयसार, गाथा 270)*

(4) परद्रव्य के कर्तत्व का महा अहंकाररूप अज्ञान अन्धकार है, जिसका सुलटना अत्यन्त दुर्निवार है। *(श्री समयसार, कलश 55)*

प्रश्न 11– 'ज्ञान, अरूपी है' इससे क्या तात्पर्य रहा ?

उत्तर – अरे भाई! जैसे ज्ञान से पर का सम्बन्ध नहीं है; उसी प्रकार सुख के लिए पाँचों इन्द्रियों के विषयों का, सम्यग्दर्शन के लिए दर्शनमोहनीय के उपशमादिक का और चारित्र के लिए बाहरी क्रिया तथा शुभभावों की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न 12– 'ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र, विघ्न नहीं कर सकता है' – यह किस प्रकार है ?

उत्तर – (अ) ज्ञान को कोई काल, विघ्न नहीं कर सकता है। विचारो – पाँच मिनट पहले के समय का ज्ञान करने में पाँच मिनट लगें और पाँच वर्ष पहले के समय का ज्ञान करने में पाँच वर्ष लगें – क्या ऐसा होता है ? नहीं, क्योंकि पाँच मिनट पहले और पाँच वर्ष पहले के समय का ज्ञान करने में समान ही समय लगता है। इससे निर्णय हुआ – 'ज्ञान को कोई काल विघ्न नहीं कर सकता है।'

(आ) ज्ञान को कोई क्षेत्र भी विघ्न नहीं कर सकता है। विचारो – जैसे – हम दिल्ली में बैठे हैं तो दिल्ली का ज्ञान करने में थोड़ा समय लगे और दूर क्षेत्र मुम्बई का ज्ञान करने में ज्यादा समय लगे –क्या ऐसा होता है ? नहीं, क्योंकि क्षेत्र नजदीक हो या दूर हो, दोनों के ज्ञान करने में बराबर ही समय लगता है। इससे यह निर्णय हुआ – 'ज्ञान को कोई क्षेत्र भी विघ्न नहीं कर सकता है।' इसलिए ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र विघ्न नहीं कर सकता है – ऐसा पात्र जीव जानते हैं।

प्रश्न 13– कोई ऐसा कहता है कि जहाँ सीमन्धरभगवान हैं, वहाँ पर चौथा काल और विदेहक्षेत्र है, वहाँ से मोक्ष होता है

और जहाँ पर हम रहते हैं, यहाँ पर पञ्चम काल है, भरतक्षेत्र है, यहाँ से मोक्ष नहीं होता। देखो, मोक्षप्राप्ति के लिए काल और क्षेत्र ने विघ्न डाला; इसलिए आपकी बात झूठी साबित होती है?

उत्तर - (1) हे भाई! तुम कभी चौथे काल और विदेहक्षेत्र में थे या नहीं? यदि थे तो हम पूछते है, तुम्हें मोक्ष क्यों नहीं हुआ?

(2) जम्बूस्वामी आदि पञ्चम काल में ही मोक्ष गये हैं।

(3) पूर्व भव का कोई बैरी देव, विदेहक्षेत्र के भावलिङ्गी मुनि को यहाँ पटक जावे तो वे मुनि उग्र पुरुषार्थ करके यहीं से मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। यदि काल और क्षेत्र विघ्न करता हो तो उनका मोक्ष नहीं होना चाहिए था। इसलिए याद रक्खो - काल अच्छा हो या खराब हो; क्षेत्र अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, किसी जीव को किसी भी समय क्षेत्र या काल, विघ्न नहीं कर सकता है।

प्रश्न 14- फिर शास्त्रों में क्यों लिखा है कि पञ्चम काल में मोक्ष नहीं होता?

उत्तर - जो जीव, पञ्चम काल में उत्पन्न होगा, वह जीव इतना तीव्र पुरुषार्थ नहीं कर सकेगा कि वह दृष्टिमोक्ष को छोड़कर, मोहमुक्तमोक्ष, जीवनमुक्तमोक्ष और विदेहमोक्ष को प्राप्त कर सके - ऐसा केवलज्ञानी के ज्ञान में आया है, इस अपेक्षा, अर्थात् तीव्र पुरुषार्थ न कर सकने की अपेक्षा, पञ्चम काल में मोक्ष नहीं होता है, ऐसा शास्त्रों में लिखा है।

प्रश्न 15- क्या मोक्ष भी कई प्रकार के होते हैं?

उत्तर - हाँ! मोक्ष, पाँच प्रकार के हैं, (1) शक्तिरूप मोक्ष, (2) दृष्टिमोक्ष, (3) मोहमुक्तमोक्ष, (4) जीवनमुक्तमोक्ष, (5) विदेहमोक्ष।

प्रश्न 16- इन पाँच मोक्ष को गुणस्थान की अपेक्षा समझाओ?

उत्तर - (1) शक्तिरूप मोक्ष तो निगोद से लेकर, सिद्धदशा तक प्रत्येक जीव के पास अनादि अनन्त है।

(2) दृष्टिमोक्ष, शक्तिरूप मोक्ष का आश्रय लेने से, चौथे गुणस्थान में प्रकट होता है।

(3) शक्तिरूप मोक्ष में विशेष एकाग्रता करने से, दृष्टिमोक्ष के पश्चात् बारहवें गुणस्थान में मोहमुक्तमोक्ष प्रकट होता है।

(4) जीवनमुक्तमोक्ष, 13, 14 वें गुणस्थान में प्रकट होता है।

(5) विदेहमोक्ष, 14 वें गुणस्थान से पार सिद्धदशा में प्रकट होता है।

प्रश्न 17- सभी मोक्ष किसके आश्रय से प्रगट होते हैं?

उत्तर - (1) एकमात्र शक्तिरूप मोक्ष के आश्रय से ही चारों प्रकार के मोक्ष, पर्याय में प्रगट होते हैं; इसलिए शक्तिरूप मोक्ष का आश्रय लिए बिना, दृष्टिमोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

(2) दृष्टिमोक्ष प्राप्त किये बिना, मोहमुक्तमोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

(3) मोहमुक्तमोक्ष प्राप्त किये बिना, जीवनमुक्तमोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

(4) जीवनमुक्तमोक्ष प्राप्त किये बिना, विदेहमोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। यह जिन, जिनवर और जिनवरवृषभों से कथित अनादि-अनन्त नियम है।

प्रश्न 18 - पञ्चम काल में इन पाँच मोक्षों में से कौन -कौन से मोक्ष प्राप्त हो सकते हैं? ऐसे जीवों के नाम बताओं, जिनको इनकी प्राप्ति हुई हो?

उत्तर – पञ्चम काल में दृष्टिमोक्ष ही पर्याय में प्रगट हो सकता है – क्योंकि (1) शक्तिरूप मोक्ष तो प्राणीमात्र के पास है। (2) दृष्टिमोक्ष प्राप्त पञ्चम काल में कुन्दकुन्द भगवान, अमृताचन्द्र-आचार्य, समन्तभद्राचार्य, धरसेनचार्य, रविषेणाचार्य, पण्डित टोडरमलजी, राजमलजी, दीपचन्दजी, दौलतरामजी, कानजीस्वामी आदि हो चुके हैं और जीव भी दृष्टिमोक्ष प्राप्त विचरते हैं – ऐसा पात्र भव्य जीव जानते हैं।

प्रश्न 19– पञ्चम काल में दृष्टिमोक्ष की प्राप्ति हो सकती है – ऐसा कहीं शास्त्रों में उल्लेख है ?

उत्तर – (1) भगवान कुन्दकुन्द ने मोक्षपाहुड़, गाथा 77 में कहा है कि 'अभी इस पञ्चम काल में भी जो मुनि, सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्र की शुद्धतायुक्त होते हैं, वे आत्मा का ध्यान कर, इन्द्रपद अथवा लौकान्तिकदेवपद को प्राप्त करते हैं और वहाँ से चय कर निर्वाण को प्राप्त होते हैं।'

(2) आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने आठवें अधिकार में लिखा है कि 'यह काल, साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिक द्वारा सम्यक्त्वादिक होना इस काल में मना नहीं है; इसलिए आत्मानुभनादिक के अर्थ द्रव्यानुयोग का अवश्य अभ्यास करना।'

(3) कार्तिकेयानुप्रेक्षा के धर्मानुपेक्षाभावना में गाथा, 487 की टीका में बताया है कि 'इस काल में शुक्लध्यान तो नहीं हो, किन्तु धर्मध्यान होता है' तथा मोक्षप्राभृत का हवाला दिया है। धर्मध्यान, शुद्धभाव है। यह चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक होता है।

प्रश्न 20– कोई कहे, हमको तो दृष्टिमोक्षवाले जीव भी कहीं दिखायी नहीं देते हैं ?

उत्तर – जैसे—सूर्य का प्रकाश होने पर उल्लू को दिखायी नहीं देता; उसी प्रकार अज्ञानी मूढ़ों को दृष्टिमोक्षवाले जीव नहीं दिखते है, उसमें हम क्या करें ?

प्रश्न 21– बहुत से कहते हैं कि पञ्चम काल में निश्चय –सम्यक्त्व होता ही नहीं – क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर – बिल्कुल गलत है, क्योंकि ज्ञानार्णव में लिखा है कि 'इस काल में दो–तीन सत्यपुरुष हैं, अर्थात् थोड़े हैं।' अत: सिद्ध हुआ कि पञ्चम काल में मोक्ष है। इसलिए पात्र–जीवों को जानना चाहिए कि जिनमत में जो मोक्ष का उपाय कहा है, उससे मोक्ष होता ही होता है। इसलिए 'ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र, विघ्न नहीं कर सकता।' – यह सिद्ध हो गया।

प्रश्न 22– 'ज्ञान, अविकारी है' – यह किस प्रकार है ?

उत्तर – ज्ञान, अविकारी है, अर्थात् ज्ञान में विकार नहीं है। जैसे, दस दिन पहले हमारी किसी के साथ लड़ाई हो गयी। लड़ाई के समय हम खूब लाल–पीले हुए। विचारो — वर्तमान समय में लड़ाई का ज्ञान तो कर सकते हैं लेकिन लड़ाई के समय जैसे लाल –पीले हो रहे थे, वैसे अब नहीं हो सकते और ज्ञान करते समय क्रोधादि भी मालूम नहीं पड़ते हैं; इसलिए यदि ज्ञान में विकार हो तो ज्ञान के समय क्रोधादि भी होना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता। इससे सिद्ध होता है, ज्ञान में विकार नहीं है।

प्रश्न 23– 'ज्ञान, अविकारी है' इसका कोई दूसरा दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर – आज से पाँच वर्ष पहले हमने किसी को कटुवचन कह दिया हो तो क्या आज ज्ञान करते समय ज्ञान में कटुता आवेगी ? कभी नहीं। इसलिए यह सिद्ध हुआ ज्ञान, अविकारी है।

प्रश्न 24- क्या शुभाशुभ विकारीभाव भी आत्मा से पृथक हैं ?

उत्तर - हाँ पृथक् हैं। उपयोग, उपयोग में है, क्रोधादि में उपयोग नहीं है; क्रोध, क्रोध में ही है; उपयोग में निश्चय से क्रोध नहीं है। *(श्रीसमयसार, गाथा 181)*

प्रश्न 25 - शुभाशुभभाव, आत्मा में नहीं हैं - ऐसा कहीं शास्त्रों में आया है ?

उत्तर - (1) श्री समयसार, गाथा 71 की टीका में 'क्रोधादि के और आत्मा के निश्चय से एक वस्तुत्व नहीं।' तथा ऐसा भी लिखा है कि 'ज्ञान होते समय जैसे ज्ञान होता हुआ मालूम पड़ता है; उसी प्रकार क्रोधादि भी होते हुए मालूम नहीं पड़ते हैं।'

(2) श्री समयसार, गाथा 181 से 183 तक में - जैसे, द्रव्यकर्म-नोकर्म, आत्मा से भिन्न हैं; उसी प्रकार भावकर्म भी आत्मा से भिन्न है। क्रोधादि में और ज्ञान में प्रदेशभेद होने से अत्यन्त भेद है - ऐसा कहा है।

(3) श्री समयसार, गाथा 294 में - रागादि का और आत्मा का निज-निज लक्षण जानकर, अपनी प्रज्ञारूपी छैनी को अपने स्वभावसन्मुख करने से दोनों अलग-अलग हो जाते हैं।* इससे सिद्ध होता है 'ज्ञान, अविकारी है'।

प्रश्न 26- बहुत से जीव, शुभभावों से धर्म की प्राप्ति होती है - ऐसा क्यों कहते हैं ?

उत्तर - (1) शुभभावों से धर्म की प्राप्ति होती है - ऐसा कोई मिथ्यावादी मानता है, किन्तु जैसे लहसुन खाने से कस्तूरी की डकार

---

* इसके लिए श्रीसमयसार, गाथा 71, 181 से 183 तक 294 की टीका, भावार्थसहित अभ्यास करना चाहिए।

नहीं आती; उसी प्रकार शुभभावों से कभी भी मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती।

प्रश्न 27 – शुभभावों को समयसार में क्या-क्या कहा है ?

उत्तर – (1) पुण्यभाव को धर्म का कारण माननेवाले को श्री समयसार, गाथा 154 में 'नपुंसक' कहा है।

(2) गाथा 72 में पुण्यभाव को मल, मैल, अपवित्र, घिनावना, अशुचि, जड़स्वभावी, चैतन्य से अन्य स्वभाववाला, आकुलता को उत्पन्न करनेवाला और दुःख का कारण कहा है।

(3) गाथा 74 में विरुद्धस्वभावी, अध्रुव, अनित्य, अशरण, वर्तमान में दुःखरूप और भविष्य में भी दुःख का कारण कहा है।

(4) गाथा 306 में विषकुम्भ कहा है।

(5) श्री समयसार, गाथा 152 में आत्मा का अनुभव हुए बिना, व्रत-तप को बालव्रत और बालतप कहा है।

प्रश्न 28 – शुभभावों को छहढाला में क्या-क्या कहा है ?

उत्तर – (1) पाँचवी ढाल में —

आस्रव दुःखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे।
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।

(2) छठी छाल में 'यह राग-आग दहै सदा' – कहा है।

(3) दूसरी ढाल में 'शुभ-अशुभबन्ध के फल मंझार, रति -अरति करे निजपद विसार' कहा है।

(4) पहली ढाल में 'जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यक्दर्शन बिन दुःख पाय' कहा है।

प्रश्न 29- प्रवचनसार में शुभभावों को क्या कहा है ?

उत्तर – गाथा 11 की टीका में 'शुभोपयोग को हेय' कहा है। गाथा 77 में 'पुण्य-पाप में जो अन्तर डालता है, वह घोर अपार संसार में भ्रमण करता है' – ऐसा कहा है।

प्रश्न 30– सोलहकारण की पूजा में पुण्यभाव को क्या कहा है ?

उत्तर – 'पुण्य-पाप सब नाश के, ज्ञानभानु परकाश' तथा मङ्गल विधान में 'पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि', अर्थात् समस्त पुण्य को एकाग्र चित्त से केवलज्ञानरूप अग्नि में हवन करता हूँ। देव-गुरु-शास्त्र की पूजा में 'शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल' – ऐसा कहा है।'

प्रश्न 31– योगसार में पुण्य को क्या कहा है ?

उत्तर – दोहा 71 में – ज्ञानी, पुण्य को पाप जानते हैं – ऐसा कहा है।

प्रश्न 32– पुरुषार्थसिद्धि उपाय में पुण्य को क्या कहा है ?

उत्तर – गाथा 220 में शुभोपयोग 'अपराध' ऐसा कहा है।

प्रश्न 33– शुभभाव को नपुंसक, अपराध आदि कहने से तात्पर्य क्या है ?

उत्तर – ज्ञान, अर्थात् आत्मा, अविकारी है, उसकी प्राप्ति किसी भी प्रकार के शुभभावों से नहीं हो सकती है; एकमात्र भूतार्थस्वभाव का आश्रय लेकर अपना अनुभव करे तो 'ज्ञान, अविकारी है' – ऐसा माना।

प्रश्न 34– 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' – यह किस प्रकार है ?

उत्तर – केवलज्ञान में त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों का सम्पूर्ण

स्वरूप प्रत्येक समय में सर्व प्रकार से एक साथ स्पष्ट ज्ञात होता है – ऐसी केवलज्ञान की अचिन्त्य अपार शक्ति है और प्रत्येक आत्मा में शक्तिरूप से ऐसा ही स्वभाव है – यह अरहन्त-सिद्ध भगवान दर्शा रहे हैं। ऐसा जिसने जाना, माना – तब 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कार-स्वरूप है' कहा जावेगा।

प्रश्न 35– 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' – ऐसा छहढाला में कहीं बताया है ?

उत्तर – सकल द्रव्य के गुण अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण।
इहि परमामृत जन्म जरा मृति-रोग निवारन।

इसी कारण से ज्ञान को चैतन्य चमत्कारस्वरूप कहा है।

[श्रीप्रवचनसार, गाथा 200 की टीका]

प्रश्न 36– 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' जरा इसे स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर – (1) अनेक प्रकार की अलग-अलग चीजें कभी इकट्ठी नहीं हो सकती, परन्तु वे सब वस्तुएँ ज्ञान की एक समय की पर्याय में एक साथ जानी जा सकती हैं; इसलिए 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' कहा जाता है।

(2) बहुत वस्तुओं को भोगना एक साथ नहीं हो सकता, परन्तु ज्ञान बहुत वस्तुओं का भोग एक समय में एक साथ कर / जान सकता है; इसलिए 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' कहा जाता है।

(3) एक बड़े कमरे में कुर्सी, मेज, पलंग आदि अनेक चीजें पड़ी हैं; आप उन्हें इकट्ठी नहीं कर सकते परन्तु ज्ञान में एक साथ ले सकते हैं; इसलिए 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' कहा जाता है।

(4) थाली में 50 चीजों का एक साथ भोग नहीं हो सकता, परन्तु ज्ञान में एक साथ भोग कर सकते हैं; इसलिए 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' कहा जाता है।

प्रश्न 37- जीव को परवस्तु का विस्मय क्यों आता है ?

उत्तर - चारों गतियों में घूमकर निगोद में जाने की तैयारी है; इसलिए अज्ञानियों को परवस्तु का विस्मय आता है।

प्रश्न 38- परवस्तु का विस्मय अज्ञानी किस-किस प्रकार करता है - उसका दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर - (1) किसी के पास भूत-व्यन्तर आवे, उसे सब नमस्कार करने पहुँच जाते हैं क्योंकि अज्ञानी को उसकी महिमा है; इसलिए परवस्तु का विस्मय आता है, आत्मा का विस्मय नहीं आता है।

(2) रूस ने बिना ड्राईवर का राकेट छोड़ा, उसका विस्मय अज्ञानी को आता है परन्तु ज्ञान करनेवाला स्वयं ज्ञानस्वरूप है, उसका (अपनी आत्मा का) विस्मय नहीं आता है, क्योंकि पर की महिमा है।

(3) अज्ञानी 24 घण्टे नौ प्रकार के पक्षों में पागल बन रहा है क्योंकि वह अनादि से एक-एक समय करके, पर के विस्मय में पागल है।

प्रश्न 39- पर का विस्मयपना कैसे मिटे ?

उत्तर - जब तक विस्मय करनेवाले का विस्मय न आवे, तब तक परवस्तु का विस्मयपना नहीं मिटता है; इसलिए पात्र जीव को अपनी आत्मा का विस्मय लाना चाहिए।

प्रश्न 40- अपनी आत्मा का विस्मय लाने का उपाय क्या है ?

उत्तर - जब तक सच्चे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति न हो, अर्थात्

जब तक अपना विस्मय न आवे, तब तक इनको भी अनुक्रम ही से अङ्गीकार करना —

(1) प्रथम तो परीक्षा द्वारा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की मान्यता छोड़कर, अरिहन्त देवादिक का श्रद्धान करना चाहिए क्योंकि उनका श्रद्धान करने से, गृहीतमिथ्यात्व का अभाव होता है।

(2) फिर जिनमत में कहे हुए द्रव्य, सात तत्त्व, हेय–उपादेय –ज्ञेय, त्यागनेयोग्य मिथ्यादर्शनादिक का स्वरूप और ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादिक का स्वरूप, निश्चय–व्यवहार, उपादान, उपादेय, निमित्त–नैमित्तिकसम्बन्ध, छह कारक, चार अभाव और छह सामान्यगुण आदि के नाम–लक्षणादि सीखना चाहिए, क्योंकि इस अभ्यास से तत्त्वश्रद्धान की प्राप्ति होती है।

(3) फिर जिनसे स्व–पर का भिन्नत्व भासित हो, वैसे विचार करते रहना चाहिए, क्योंकि इस अभ्यास से भेदज्ञान होता है।

(4) तत्पश्चात् एक स्व में स्वपना मानने के लिये स्वरूप का विचार करते रहना चाहिए, क्योंकि इस अभ्यास से आत्मानुभव की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार अनुक्रम से अङ्गीकार करके, फिर उसी में से किसी समय देवादिक के विचार में; कभी तत्त्वविचार में; कभी स्व–पर के विचार में; तथा कभी आत्माविचार में उपयोग लगाना चाहिए.... जीव, पुरुषार्थ चालू रखे तो उसी क्रम से उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति, अर्थात् अपनी आत्मा का विस्मय आ जाता है।

प्रश्न 41– मोक्षमार्ग में विघ्न करनेवाले कुदेवादिक की क्या पहिचान है ?

उत्तर – (1) शरीर की क्रिया से, कर्म के क्षयादि से, शुभभाव करने से धर्म की प्राप्ति होती है;

(2) निमित्त मिले तो कल्याण हो;

(3) दया-दान, पूजा-यात्रा-अणुव्रत-महाव्रतादिक के शुभभावों से मोक्ष होता है - आदि कथन करनेवाले कुदेवादिक हैं और जो एकमात्र अपनी आत्मा के आश्रय से ही धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है - ऐसा कथन करनेवाले हैं, वही सच्चे देवादिक हैं। इस सच्चे निमित्त से अपना आश्रय ले, तो 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कार-स्वरूप है' माना कहलायेगा।

प्रश्न 42- 'ज्ञान, पर का कुछ नहीं कर सकता' - यह किस प्रकार है?

उत्तर - एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता; उसे परिणमित नहीं कर सकता; प्रेरणा नहीं कर सकता; लाभ-हानि नहीं कर सकता; उस पर प्रभाव नहीं डाल सकता; उसकी सहायता या उपकार नहीं कर सकता; उसे मार-जिला नहीं सकता—ऐसी प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता अनन्त ज्ञानियों ने पुकार-पुकार कर कही है, क्योंकि जगत में छहों द्रव्य, नित्य स्थिर रहकर प्रति समय अपनी अवस्था का उत्पाद-व्यय करते रहते हैं। इस प्रकार अनन्त जड़ और चेतनद्रव्य एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं; इसलिए वास्तव में किसी का नाश नहीं होता, कोई नया उत्पन्न नहीं होता है और न दूसरे उनकी रक्षा कर सकते हैं; इसलिए ज्ञान, पर का कुछ नहीं कर सकता है।

प्रश्न 43- 'ज्ञान, पर का कुछ नहीं कर सकता है' - इस सम्बन्ध में कुछ दृष्टान्त देकर समझाइये?

उत्तर - (1) शरीर की बाल्य अवस्था के बाद, कुमार अवस्था आती है; कुमार अवस्था के बाद युवा अवस्था; युवा अवस्था के बाद प्रौढ़ अवस्था; प्रौढ़ अवस्था के समय बाल्य अवस्था का, कुमार

अवस्था का, युवा अवस्था का ज्ञान, एक साथ हो सकता है परन्तु आत्मा इन सब अवस्थाओं को एक साथ नहीं ला सकता, क्योंकि 'ज्ञान, पर का कुछ नहीं कर सकता है।'

(2) शरीर की नीरोग अवस्था या शरीर की रोग अवस्था में से एक अवस्था हो, उस समय आत्मा, दूसरी अवस्था का ज्ञान कर सकता है परन्तु दूसरी अवस्था को नहीं ला सकता क्योंकि 'ज्ञान, पर का कुछ नहीं कर सकता।'

(3) एक क्षेत्रावगाहीरूप से रहनेवाले इस शरीर की एक अवस्था के समय, दूसरी अवस्थाओं का ज्ञान, आत्मा कर सकता है परन्तु आत्मा उन अवस्थाओं को ला नहीं सकता, बदल नहीं सकता है। तब अत्यन्त भिन्न परक्षेत्र में रहनेवाले पदार्थों की कोई भी अवस्था आत्मा ला सके, बदल सके - ऐसा त्रिकाल में नहीं हो सकता, क्योंकि 'ज्ञान, पर का कुछ नहीं कर सकता है।'

(4) बुखार आया, खाँसी हुई; क्षयरोग हुआ; बुढ़ापा आया; बाल सफेद हो गए; मुँह साँपों जैसा भट्टा बन गया, दस्त लग जाते हैं; फोड़ा हो जाता है; लड़का मर जाता है; माल चोरी हो जाता है; आग लग जाती है - आत्मा इन सबका ज्ञान कर सकता है परन्तु इनमें जरा भी हेर-फेर नहीं कर सकता है।

प्रश्न 44- आप कहते हो कि जीव, शरीर आदि परद्रव्यों का कुछ नहीं कर सकता लेकिन हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि हमने भाव किया तो हाथ उठा; हमने चलने का भाव किया तो चले; हमने भाव किए - तो शब्द निकला, यह बात कैसे है?

उत्तर - अज्ञानी को मिथ्यात्वरूपी पीलिया रोग हो गया है; इसलिए उसे जिनेन्द्रभगवान से विरुद्ध ही दिखता है। अच्छा भाई! तुम्हारे विचार में जीव, शरीरादि पर का कार्य कर सकता है - तो हम

तुमसे पूछते हैं-देखो! यह हाथ सीधा था, अब टेढ़ा हो गया, यह हमने किया। अब तुम इस हाथ को, पीछे की तरफ लगा दो। तब वह कहता है कि ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर का ऐसा स्वभाव नहीं है - तो याद रखो! हाथ टेढ़ा भी अपने स्वभाव से ही हुआ है, जीव से नहीं।

(1) बाल, सफेद है, आप तो नहीं चाहते - तो कर दो काले।

(2) शरीर का रङ्ग काला है, आप तो नहीं चाहते, तो कर दो गोरा।

(3) शरीर में बुखार है, आप तो नहीं चाहते - तो कर दो दूर।

(4) बहरा है; वह तो नहीं चाहता - तो कर दो ठीक।

(5) अन्धा है, वह तो नहीं चाहता - कर दो ठीक।

(6) जुखाम-खाँसी हो गया, आप तो नहीं चाहते - कर दो ठीक।

(7) फोड़ा हो गया, आप तो नहीं चाहते - कर दो ठीक।

(8) बुखार हो गया, आप तो नहीं चाहते - कर दो ठीक।

(9) बुढ़ापा आ गया, आप तो नहीं चाहते - कर दो ठीक।

(10) धन सब चाहते हैं, क्यों नहीं होता - ला दो तुम।

(11) माल खाया जाता है, बनता है बिष्टा; आप तो खून चाहते हैं - बना दो।

(12) टाँग कट गयी, आप तो नहीं चाहते - जोड़ दो।

याद रखो — शरीर में जुकाम, खाँसी, फोड़ा-फुन्सी, काला -गोरा, यह पुद्गल का स्वतन्त्र परिणमन है, यह अपने स्वभाव से ही स्वयं बदलता है क्योंकि प्रत्येक द्रव्य कायम रहता हुआ, अपना प्रयोजनभूत कार्य करता हुआ, स्वयं बदलता है—ऐसा वस्तुस्वभाव है।

(अ) अनादि काल से आज तक अनन्त शरीर धारण किए, लेकिन एक रजकण भी अपना नहीं बना।

(आ) केवलीभगवान को अनन्त चतुष्टय प्रगट हुआ है, वे उसी समय चार अघातिकर्म और औदारिकशरीर का अभाव नहीं कर सकते हैं। उनका भक्त कहलानेवाला कहे, हम कर सकते हैं, यह आश्चर्य है।

(इ) अज्ञानी को, शरीरादि का कार्य मैं कर सकता हूँ – ऐसा दिखता है। जैसे—चलती रेल में बैठ कर बाहर देखें, तो पेड़ चलते दिखते हैं।

प्रश्न 45– आत्मा, पर का कुछ नहीं कर सकता, ऐसा कहीं समयसार में लिखा है ?

उत्तर – (1)

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः पर द्रव्यात्मत्वयोः।
कर्तृकर्मत्व सम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥200॥

अर्थात्, परद्रव्य और आत्मतत्त्व का (कोई भी) सम्बन्ध नहीं है, तब फिर उनमें कर्ता–कर्मसम्बन्ध कैसे हो सकता है ? इस प्रकार जहाँ कर्ता–कर्मसम्बन्ध नहीं है, वहाँ आत्मा के परद्रव्य का कर्तृत्व कैसे हो सकता है ? कभी भी नहीं हो सकता है।

(2) कलश 199 में 'जो अज्ञान अन्धकार से आच्छादित होकर आत्मा को पर का कर्ता मानते हैं, वे चाहे मोक्ष के इच्छुक हो, तो भी लौकिकजनों की तरह उनको भी मोक्ष नहीं होता।' तथा कलश 201 में 'जो व्यवहार से मोहित होकर परद्रव्य का कर्तापना मानते हैं, वे लौकिकजन हों या मुनिजन हों — मिथ्यादृष्टि ही हैं।'

(3) श्री समयसार, गाथा 308 से 311 तक में बताया है कि 'समस्त द्रव्यों के परिणाम जुदे–जुदे, सभी द्रव्य अपने–अपने परिणामों के कर्ता हैं। निश्चय से किसी का, किसी के साथ कर्ता–कर्मसम्बन्ध नहीं है; इसलिए जीव अपने परिणाम का ही कर्ता, अपना परिणाम,

कर्म है। इसी तरह अजीव अपने परिणाम का ही कर्ता है, अपना परिणाम, कर्म है। इस प्रकार जीव, दूसरे के परिणामों का अकर्ता है।'

(4) अज्ञानीजन ही व्यवहार विमूढ़ होने से, परद्रव्य को ऐसा देखते मानते हैं कि 'यह मेरा है।'

(श्रीसमयसार, गाथा 324 से 327 की टीका से)।

(5) इस जगत में अज्ञानीजीवों का 'परद्रव्य का मैं करता हूँ' ऐसा परद्रव्य के कर्तृत्व का महा अहंकाररूप अज्ञान अन्धकार जो अत्यन्त दुर्निवार है, वह अनादि संसार में चला आ रहा है।'

(श्रीसमयसार, कलश 55)

(6) दो द्रव्य की क्रियाओं को, एक द्रव्य करता है - ऐसा मानना जिनेन्द्रभगवान का मत नहीं है। *(श्रीसमयसार, गाथा 85 का भावार्थ)*

(7) श्रीसमयसार, कलश 51 से 55 तक यही कहा है -

अर्थ - जो परिणमित होता है, वह कर्ता है, (परिणमित होनेवाले का) जो परिणाम है, वह कर्म है और जो परिणति है, वह क्रिया है; यह तीनों ही, वस्तुरूप से भिन्न नहीं हैं ॥51॥

वस्तु एक ही सदा परिणमित होती है, एक का ही सदा परिणाम होता है (अर्थात् एक अवस्था से अन्य अवस्था एक की ही होती है) और एक की ही परिणति-क्रिया होती है; क्योंकि अनेकरूप होने पर भी एक ही वस्तु है, भेद नहीं है ॥52॥

दो द्रव्य एक होकर परिणमित नहीं होते, दो द्रव्यों का एक परिणाम नहीं होता और दो द्रव्यों की एक परिणति-क्रिया नहीं होती; क्योंकि जो अनेक द्रव्य हैं, वह सदा अनेक ही हैं, वे बदलकर एक नहीं हो जाते ॥53॥

एक द्रव्य के दो कर्ता नहीं होते, और एक द्रव्य के दो कर्म नहीं होते तथा एक द्रव्य की दो क्रियाएँ नहीं होती; क्योंकि एक द्रव्य अनेक द्रव्यरूप नहीं होता ॥54॥

इस जगत् में मोही (अज्ञानी) जीवों का 'परद्रव्य को मैं जानता हूँ' ऐसा परद्रव्य के कर्तृत्व का महा अहंकाररूप अज्ञानान्धकार – जो अत्यन्त दुर्निवार है वह अनादि संसार से चला आ रहा है। आचार्य कहते हैं कि अहो! परमार्थनय का अर्थात् शुद्धद्रव्यार्थिक अभेदनय का ग्रहण करने से यदि वह एक बार भी नाश को प्राप्त हो तो ज्ञानघन आत्मा को पुनः बन्धन कैसे हो सकता है? (जीव ज्ञानघन है, इसलिए यथार्थ ज्ञान होने के बाद ज्ञान कहाँ जा सकता है? नहीं जाता और जब ज्ञान नहीं जाता तब फिर अज्ञान से बन्ध कैसे हो सकता है? कभी नहीं होता।) ॥55॥

(8) इस लोक में एक वस्तु का, अन्य वस्तु के साथ समस्त सम्बन्ध ही निषेध किया गया है। भिन्न-भिन्न वस्तुओं में कर्ता-कर्म की घटना नहीं होती; इसलिए ऐसा श्रद्धान करो कि कोई किसी का कर्त्ता नहीं है। परद्रव्य, पर का अकर्ता ही है।

प्रश्न 46– एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता, ऐसा कहीं मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है?

उत्तर – 'अनादिनिधन वस्तुएँ, भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादासहित परिणमित होती हैं, कोई किसी के आधीन नहीं है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती। उन्हें परिणमित कराना चाहे, वह कोई उपाय नहीं है, वह तो मिथ्यादर्शन ही है।'

(मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52)

प्रश्न 47– 'ज्ञान पर का कुछ नहीं कर सकता है' – इसका रहस्य क्या है?

उत्तर – हे आत्मा! तेरा कार्य, मात्र ज्ञाता-दृष्टा है; तू पर में जरा भी हेर-फेर नहीं कर सकता है – ऐसा जाने-माने तो दृष्टि अपने स्वभाव पर होती है और पर्याय में भगवान बन जाता है; इस प्रकार धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 48- 'ज्ञान, सर्व समाधानकारक है' यह किस प्रकार है ?

उत्तर - जैसे—किसी जगह एक पागल बैठा था। वहाँ अन्य स्थान से आकर मनुष्य, घोड़ा और धनादिक उतरे, उन सबको वह पागल अपना मानने लगा, किन्तु वे सब अपने-अपने आधीन हैं; अत: इसमें कोई आवे, कोई जाए और कोई अनेकरूप से परिणमन करता है। इस प्रकार सब की क्रिया अपने-अपने आधीन है, तथापि वह पागल उसे अपने आधीन मानकर पागल होता और उस पागल को किसी भले आदमी ने कहा - तू तो अलग है और यह सब अलग हैं, इनसे तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। उस पागल के दिमाग में यह बात आते ही बड़ा आनन्दित हुआ; उसी प्रकार यह जीव, जहाँ शरीर धारण करता है, वहाँ किसी अन्य स्थान से आकर पुत्र, घोड़ा, धनादिक स्वयं प्राप्त होते हैं, यह जीव उन सबको अपना जानता है परन्तु ये सभी अपने-अपने आधीन होने से कोई आते, कोई जाते और कोई अनेक अवस्थारूप से परिणमते है। क्या यह उसके आधीन हैं ? वास्तव में उसके अधीन नहीं हैं तो भी अज्ञानी जीव उन्हें अपने आधीन मान कर, खेद खिन्न होता है। ऐसे समय में सद्गुरुदेव ने कहा - तू तो अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारक, अनादि-निधन, वस्तु है तथा शरीर, मूर्तिक पुद्गलद्रव्यों का पिण्ड, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों से रहित, नवीन ही जिसका संयोग हुआ है, ऐसे यह शरीरादि पुद्गल जो कि तेरे पर से हैं, इनसे तेरा सम्बन्ध नहीं है। इतना सुनते ही सर्व समाधान हो गया, अर्थात् शान्ति की प्राप्ति हो गयी। इसलिए 'ज्ञान, सर्व समाधानकारक हैं' कहा जाता है।

प्रश्न 49- 'ज्ञान, सर्व समाधानकारक है' इसे जरा स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर - अज्ञानी जीव तो रागादिभावों के द्वारा सर्व द्रव्यों को

अन्य प्रकार से परिणमाने की इच्छा करता है, किन्तु ये सब द्रव्य, जीव की इच्छा के आधीन नहीं परिणमते; इसलिए अज्ञानी को आकुलता होती है। यदि जीव की इच्छानुसार सब ही कार्य हों, अन्यथा न हों तो ही निराकुलता रहे। तब सद्गुरुदेव ने कहा – ऐसा तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि किसी द्रव्य का परिणमन, किसी द्रव्य के आधीन नहीं है; इसलिए सम्यक् अभिप्राय द्वारा स्वसन्मुख होने से ही रागादिभाव दूर होकर निराकुलता होती है। ऐसा सुनते ही सर्व समाधान हो गए और पर में कर्ता–भोक्ता की खोटी बुद्धि का अभाव हो गया। इसलिए कहा जाता है 'ज्ञान, सर्व समाधानकारक है।'

प्रश्न 50– किसी लौकिक दृष्टान्त से 'ज्ञान, सर्व समाधान-कारक है' इसे समझाइए?

उत्तर – एक सेठजी थे। उनकी उम्र 80 वर्ष की थी। उनका इकलौता पुत्र श्यामसुन्दर था। उनके पास 10 लाख रुपये नकद थे। सेठजी ने श्यामसुन्दर को बुलाकर कहा – देखो बेटा श्यामसुन्दर! हमारे पास 10 लाख रुपया नकद है, बाकी जेवर–दुकान–मकान है ही। तुम पूरी उम्र कुछ न करो तो भी यह रुपया समाप्त नहीं होगा। इसका बैंक ब्याज ही इतना आता है कि तुम रुपये–पैसों की तरफ से दु:खी नहीं रहोगे, लेकिन याद रखना कि तुम किसी भी प्रकार का व्यापार मत करना। लड़के ने पिताजी के सामने तो हाँ करली, लेकिन बाद में उसने विचार किया कि यह रुपया तो पिताजी का कमाया हुआ है, मुझे स्वयं भी कुछ कमाना चाहिए। ऐसा विचार कर सट्टे का काम किया। उसमें जल्दी ही 5 लाख रुपया का घाटा हो गया। अब रुपया देने को चाहिए, यदि ना दिया जावे तो सात दिन बाद दिवाला करार दे दिया जाता था। चार दिन तो जैसे–तैसे बीत गये। पाँचवें दिन श्यामसुन्दर ने अपने पिताजी के मित्र से कहा – चाचाजी! मैंने पिताजी के मना करने पर भी सट्टे का काम किया,

उसमें 5 लाख रुपया का घाटा हो गया। पिताजी को पता चलेगा तो वे मुझे मारेंगे और घर से बाहर निकाल देंगे। अब आप किसी प्रकार कृपा करके पिताजी से यह रुपया दिलवाओ। वह मित्र उसके पिताजी के पास गया और कहा, कि श्यामसुन्दर ने सट्टे में 5 लाख रुपया का घाटा दे दिया है। यह सुनते ही सेठजी आपे से बाहर हो गये और कहा – मैंने तो उसे व्यापार करने की मनाही की थी। उसने व्यापार क्यों किया? मैं 5 लाख रुपया नहीं दूँगा, चाहे वह पकड़ा जावे—मर जावे। मैं तो अब उसका मुँह भी देखना नहीं चाहता।

मित्र ने कहा – कल 12 बजे तक 5 लाख रुपया नहीं दोगे तो श्यामसुन्दर जहर खाकर मर जावेगा; समझाते हुए उसने फिर कहा – जरा विचारो! तुम्हारी उम्र 80 वर्ष की हो गयी है। अब दो-चार साल ही जीना है। परलोक में रुपया साथ जावेगा नहीं। सब रुपया आपको उसी को दे देना ही तो था। उसने 5 लाख रुपया खो दिया तो उसमें तुम्हारा क्या गया? उसी का गया। सेठजी को यह बात जँच गयी। उनको सर्व समाधान हो गया और आकुलता मिट गयी। इससे सिद्ध हुआ 'ज्ञान, सर्व समाधानकारक है।'

प्रश्न 51- इन छह बोलों से क्या तात्पर्य रहा?

उत्तर – शरीर, धन, सुख-दुःख अथवा शत्रु-मित्रजन (यह सब कुछ) जीव के ध्रुव नहीं हैं; ध्रुव तो ज्ञानात्मक, दर्शनरूप; इन्द्रियों के बिना सबको जाननेवाला महापदार्थ; ज्ञेय-पर्यायों का ग्रहण-त्याग न करने से अचल और ज्ञेय-परद्रव्यों का आलम्बन न लेने से निरालम्ब है; इसलिए भगवान आत्मा एक है, एक होने से शुद्ध है, शुद्ध होने से ध्रुव है; ध्रुव होने से एकमात्र वही उपलब्ध करने योग्य है – ऐसा श्रद्धान-ज्ञान-अनुभव होना, यह ज्ञान के छह बोलों के जानने का तात्पर्य है। *(श्रीप्रवचनसार, गाथा 192 से 196 तक का सार)*

5

श्रीसमयसार, गाथा 14 तथा कलश 10 का रहस्य

शुद्धनय का स्वरूप

प्रश्न 1- शुद्धनय क्या है ?

उत्तर - आदि अन्त पूरन-सुभाव-संयुक्त है।
पर-स्वरूप पर-जोग कल्पना मुक्त है॥
सदा एक रस प्रगट कही है जैन में।
शुद्धनयातम वस्तु विराजै बैन में॥

अर्थात्, जीव, निगोद से लगाकर सिद्धदशा तक परिपूर्ण स्वभाव से संयुक्त है और परद्रव्यों की कल्पना से रहित है। सदैव एक चैतन्यरस से सम्पन्न है - ऐसा शुद्धनय की अपेक्षा जिनवाणी में कहा है। ऐसे त्रिकाली एकरूप का अनुभव हुआ, तब शुद्धनय का पता चलता है। अपने आपका अनुभव हुए बिना, शुद्धनय का ज्ञान, अज्ञान है।

(1) बुधजनजी कहते हैं कि 'जो निगोद में सो ही मुझ में, सो ही मोक्ष मंझार; निश्चय भेद कुछ भी नाहीं, भेद गिनै संसार॥

(2) इसी बात को श्रीनियमसार में कहा है कि जैसे, सिद्ध आत्मा है; वैसे ही संसारी जीव हैं, जिससे (वे संसारी जीव, सिद्धात्माओं की भाँति) जन्म-जरा-मरण से रहित और आठ गुणो से अलंकृत हैं। *(गाथा, 47)*

जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धभगवन्त अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा है; उसी प्रकार संसार में (सर्व) जीव जानना। *(गाथा, 48)*

प्रश्न 2- दशवें कलश में 'शुद्धनय' को कैसा बताया है ?

उत्तर -

आत्मस्वभावं परभावभिन्नमापूर्णमाद्यंत विमुक्तमेकम्।
विलोनसंकल्प-विकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्ध नयोऽम्युदेति ॥10॥

अर्थात्, शुद्धनय, आत्मस्वभाव को प्रगट करता हुआ उदयरूप हुआ है।

(1) वह शुद्धनय कैसा है ? (परभाव भिन्नम्) परद्रव्यों और परभावों से भिन्न है।

(2) और कैसा है ? (आपूर्णम्) आत्मस्वभाव समस्तरूप से पूर्ण है।

(3) और कैसा है ? (आद्यन्त विमुक्तं) आदि और अन्त से रहित, अर्थात अनादि-अनन्त है।

(4) और कैसा है ? (एकं)एक है।

(5) और कैसा है ? (विलीन सङ्कल्प विकल्प जालं) सङ्कल्प और विकल्पों से रहित है।

प्रश्न 3- समयसार, गाथा 14 में इन पाँचों बोलों को किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर -

अनबद्ध स्पृष्ट अनन्य अरु जो नियत देखे आत्म को।
अविशेष अनसंयुक्त उसको शुद्धनय तू जान जो ॥14॥

अर्थात्, (1) [अबद्धस्पृष्टम्] बन्धरहित और पर के स्पर्श से रहित।

(2) [अनन्य] अन्य-अन्यपने से रहित।

(3) [नियतम्] चलाचलरहित।

(4) [अविशेषम्] विशेषरहित, अर्थात् भेदरहित।

(5) [असंयुक्तं] अन्य के संयोग से रहित – ऐसा बताया है।

प्रश्न 4– दशवें कलश और गाथा 14 में जो पाँच-पाँच बोल हैं, वह किस-किस अपेक्षा से हैं ?

उत्तर – (1) [द्रव्य अपेक्षा] परद्रव्य और परभावों से भिन्न। अबद्धस्पृष्ट, अर्थात् बन्धरहित, पर के स्पर्श से रहित – ऐसा शुद्धनय है।

(2) [क्षेत्र अपेक्षा] आपूर्ण, अर्थात् समस्तरूप से पूर्ण। अनन्य, अर्थात् अन्य-अन्यपने से रहित – ऐसा शुद्धनय है।

(3) [काल अपेक्षा] अनादि-अनन्त। नियत, अर्थात् चलाचलता रहित – ऐसा शुद्धनय है।

(4) [भाव अपेक्षा] एक, अर्थात् अभेद। अविशेष, अर्थात् विशेषरहित – ऐसा शुद्धनय है।

(5) [भव अपेक्षा] सङ्कल्प-विकल्प जालों से रहित। असंयुक्त, अर्थात् अन्य के संयोगरहित – ऐसा शुद्धनय है।

जो भव्यजीव ऐसे पाँच भावरूप से एक अपने आत्मा को देखता है, वह मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

प्रश्न 5– द्रव्य अपेक्षा से आत्मा अबद्ध-अस्पृष्ट, एवं परद्रव्य और परभावों से भिन्न है – इसका क्या रहस्य है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर – जैसे – कमलिनी का पत्र, जल में डूबा हुआ है। उसका जल से स्पर्शितरूप अवस्था से अनुभव किये जाने पर, जल से स्पर्शरूप अवस्था भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय कमलिनीपत्र के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर, जल से स्पर्शरूपदशा

अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; उसी प्रकार-आत्मा का अनादि पुद्गलकर्म से बद्ध-स्पर्शरूप अवस्था से अनुभव किये जाने पर, बद्ध-स्पर्शपना भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय पुद्गल से किञ्चितमात्र भी बद्ध-स्पर्श न होने योग्य आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर, बद्ध-स्पर्शता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है।

तात्पर्य यह है कि आत्मा, कर्मों से बँधा हुआ-स्पर्शा हुआ है, उसी समय स्वभाव की अपेक्षा से देखने पर, कर्मों से बँधा और स्पर्शा हुआ नहीं है - ऐसा जानकर अपने स्वभाव की दृष्टि करे, तो आठों कर्मों का अभाव होकर 'स हि मुक्त एव' बन जाता है।

प्रश्न 6- क्या कर्मों से सम्बन्ध होते हुए भी अबद्ध-स्पृष्ट आत्मा का अनुभव हो सकता है और उसका क्या फल है ?

उत्तर - हाँ, हो सकता है, क्योंकि कर्मों का सम्बन्ध, अभूतार्थ है और भगवान आत्मा, भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने यही बात इसमें बतलायी है और इसका फल (आत्मा के अनुभव का फल) आठों कर्मों का अभाव बताया है।

प्रश्न 7- सम्यग्दर्शन होते ही आठों कर्मों का अभाव कैसे हो जाता है ?

उत्तर - (1) जीव, अज्ञानदशा में अपने स्वरूप की असावधानी रखना था, उसमें मोहनीयकर्म का उदय निमित्त होता था; अब अपना अनुभव होने पर, अपने स्वरूप की सावधानी रखता है, इससे मोहनीयकर्म का अभाव हो गया ।

(2) स्वरूप की असावधानी होने से अज्ञानी जीव, अपना ज्ञान पर की ओर मोड़ता था, उसमें ज्ञानावरणीयकर्म निमित्त होता था; अब अपना ज्ञान अपनी ओर लगाने से ज्ञानावरणीयकर्म का अभाव हो गया।

(3) स्वरूप की असावधानी होने से अज्ञानी जीव, अपना

दर्शन पर की ओर मोड़ता था, उसमें दर्शनावरणीयकर्म निमित्त होता था; अब अपना दर्शन अपनी ओर लगाने से दर्शनावरणीयकर्म का अभाव हो गया।

(4) स्वरूप की असावधानी होने से अज्ञानी जीव, अपना वीर्य पर की ओर मोड़ता था, उसमें अन्तरायकर्म निमित्त होता था; अब अपना वीर्य अपनी ओर लगाने से अन्तरायकर्म का अभाव हो गया।

(5) पर की ओर झुकाव से अज्ञानी जीव को पर का संयोग होता था, इसमें नामकर्म का उदय निमित्त होता था; अब पर की ओर झुकाव न होने से, अपनी ओर झुकाव होने से नामकर्म का अभाव हो गया।

(6) जहाँ शरीर हो, वहाँ ऊच-नीचकुल में उत्पत्ति होती थी, उसमें गौत्रकर्म का उदय निमित्त होता था; अब ऊँच-नीचपना से रहित ज्ञायकस्वभाव की ओर झुकाव होने से गोत्रकर्म का अभाव हो गया।

(7) जहाँ शरीर होता है, वहाँ बाहर की अनुकूलता-प्रतिकूलता रोग-निरोग आदि होते थे, उसमें वेदनीयकर्म का उदय निमित्त होता था; अब शरीर की अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि का भाव न होने की अपेक्षा वेदनीयकर्म का अभाव हो गया।

(8) अज्ञानदशा में भव के भाव, जीव ने किये होने से आयु का बन्ध होता था; अब भव के भाव का अभाव होने से आयु का अभाव हो गया।

इस अपेक्षा से सम्यग्दर्शन होते ही आठों कर्मों का अभाव हो जाता है; इसलिए अबद्धस्पृष्टादि रूप अपने एक भगवान का आश्रय लेकर शान्ति की प्राप्ति करना, भव्य जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न 8- क्षेत्र अपेक्षा से आत्मा, अनन्य एवं समस्त प्रकार

से पूर्ण है - इसका क्या रहस्य है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर - मिट्टी का ढक्कन, घड़ा, झारी इत्यादि पर्यायों से अनुभव करने पर अन्यत्व, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय सर्व पर्यायभेदों से किञ्चित्मात्र भी भेदरूप न होनेवाले, एक मिट्टी के स्वभाव के समीप अनुभव करने पर अन्यत्व, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; उसी प्रकार आत्मा का नारक आदि पर्यायों के अन्य-अन्यरूप से अन्यत्व, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय सर्व पर्यायभेदों से किञ्चित्-मात्र भेदरूप न होनेवाले एक चैतन्याकार असंख्यात प्रदेशी आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि गतिसम्बन्धी शरीर होने पर, शरीर सम्बन्धी नामकर्मादि का उदयादि होने पर और गतिसम्बन्धी भाव होने पर भी, गतिरहित स्वभाव एकरूप पड़ा है; उसकी ओर दृष्टि करते ही चारों गतियों का अभाव होकर पञ्चम गति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 9- क्या शरीर, कर्मादि और भावकर्म होने पर भी, आत्मा का अनुभव हो सकता है और उसका फल क्या है ?

उत्तर - हाँ, हो सकता है, क्योंकि गतिसम्बन्धी शरीर, कर्म का उदय और गतिसम्बन्धी भाव, अभूतार्थ है और भगवान आत्मा का गतिरहित स्वभाव, भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने यही बात दूसरे बोल में समझायी है और इसका फल, चारों गतियों के अभावरूप मोक्ष की प्राप्ति बताया है; इसलिए शरीर, कर्म और शरीरसम्बन्धी भावों से रहित, अगतिस्वभाव पर दृष्टि करके पात्र जीवों को अपना कल्याण तुरन्त कर लेना चाहिए।

प्रश्न 10- क्या आत्मा का अनुभव होते ही चारों गतियों के अभावरूप मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ?

उत्तर - हाँ, हो जाती है। जैसे - लड़की का रिश्ता पक्का करने

पर सगाई, विवाह न होने पर भी विवाह हो गया, कहा जाता है; उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर, एक-दो भव होने पर भी, ज्ञानी की दृष्टि, अगतिस्वभाव होने से चारों गति के अभावरूप मोक्ष की प्राप्ति कही जाती है। वास्तव में जब तक सम्यग्दर्शन नहीं है; तब तक चार गतिरूप निगोद है और सम्यग्दर्शन होते ही चार गति के अभावरूप मोक्ष है क्योंकि चार गतियों के भाव का फल अन्त में निगोद है और अगतिरूप स्वभाव के लक्ष्य से मोक्ष है।

प्रश्न 11- मोक्ष कितने प्रकार का है?

उत्तर - पाँच प्रकार का है - (1) शक्तिरूप मोक्ष, (2) दृष्टिमोक्ष, (3) मोहमुक्त मोक्ष, (4) जीवनमुक्त मोक्ष, (5) विदेहमोक्ष।

याद रखना चाहिए —

(अ) शक्तिरूप मोक्ष के आश्रय से ही दृष्टिमोक्ष की प्राप्ति होती है।

(आ) दृष्टिमोक्ष प्राप्त होने पर, मोहमुक्त मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(इ) मोहमुक्त मोक्ष प्राप्त होने पर, जीवनमुक्त मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(ई) जीवनमुक्त मोक्ष प्राप्त होने पर ही विदेहमोक्ष की प्राप्ति होती है। यही अनादि-अनन्त नियम है।

प्रश्न 12- काल अपेक्षा से आत्मा नियत, अनादि-अनन्त है — इसका रहस्य क्या है, दृष्टान्त देकर समझाइये?

उत्तर - जैसे - समुद्र का वृद्धि-हानिरूप अवस्था से अनुभव करने पर अनियमितता, भूतार्थ-सत्यार्थ है; उसी समय नित्य / स्थिर समुद्रस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर, अनियतता, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; उसी प्रकार आत्मा का वृद्धि-हानिरूप पर्याय-भेदों

से अनुभव करने पर अनियतता, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय नित्य / स्थिर आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि आत्मा की पर्याय में हानि-वृद्धि होने पर भी, हानि-वृद्धिरहित एकरूप स्वभाव पृथक् पड़ा है; उसकी ओर दृष्टि करे तो पञ्च परावर्तनरूप संसार का अभाव हो जाता है।

प्रश्न 13- क्या पर्याय में हानि-वृद्धि होने पर भी पञ्च परावर्तनरूप संसार का अभाव हो सकता है और उसका फल क्या है?

उत्तर - हाँ हो सकता है, क्योंकि पर्याय में हानि-वृद्धिपना अभूतार्थ है और स्वभाव, भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने तीसरे बोल में यही बात बतलायी है और हानि-वृद्धिरहित स्वभाव के आश्रय का फल, पञ्च परावर्तन का अभाव बताया है।

प्रश्न 14- पञ्च परावर्तन का स्वरूप, संक्षेप में क्या है?

उत्तर - (1) जीव का विकारी अवस्था में कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलों के साथ जो सम्बन्ध होता है, उसे द्रव्यपरावर्तन कहते हैं। इस जीव ने लोकाकाश में जितने पुद्गल हैं, उनका अनन्त बार ग्रहण किया और छोड़ा, परन्तु मैं भगवान आत्मा हूँ - ऐसा नहीं समझा; अत: द्रव्यपरावर्तन करना पड़ा।

(2) जीव की विकारी अवस्था में आकाश के क्षेत्र के साथ होनेवाले सम्बन्ध को क्षेत्रपरावर्तन कहते हैं। यह जीव सम्पूर्ण लोकाकाश में क्षेत्रों में अनन्त बार जन्मा और मरा, परन्तु मैं भगवान आत्मा हूँ - ऐसा अनुभव नहीं किया; अत: क्षेत्रपरावर्तन करना पड़ा।

(3) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में ऐसा कोई काल नहीं, जब यह जीव अनन्त बार जन्मा और मरा ना हो परन्तु मैं

भगवान आत्मा हूँ – ऐसा अनुभव नहीं किया; अत: कालपरावर्तन करना पड़ा

(4) मिथ्यात्व के संसर्गसहित नरकादि की जघन्य आयुवाले भव से लेकर नववे ग्रैवेयक तक भवों की स्थिति को इस जीव ने अनन्त बार प्राप्त की और छोड़ी परन्तु मैं भगवान आत्मा हूँ – ऐसा अनुभव नहीं किया; अत: भवपरावर्तन करना पड़ा।

(5) अशुभभाव से लेकर शुक्ललेश्या तक के भाव इस जीव ने अनन्त बार किये और छोड़े परन्तु मैं भगवान आत्मा हूँ – ऐसा अनुभव नहीं किया; अत: भावपरावर्तन करना पड़ा। यदि एक बार हानि–वृद्धिरहित स्वभाव की दृष्टि कर ले तो उसी समय पञ्च परवर्तन का अभाव हो जाता है।

प्रश्न 15– पञ्च परावर्तन के विषय में परमात्मप्रकाश, गाथा 77 में क्या बताया है ?

उत्तर – यह जीव, मिथ्यात्वपरिणाम से शुद्धात्मा के अनुभव से परांमुख अनेक तरह के कर्मों को बाँधता है, जिनसे कि द्रव्य–क्षेत्र –काल–भव और भावरूपी पाँच प्रकार के संसार में भटकता है।

(1) द्रव्यपरावर्तन – ऐसा कोई शरीर नहीं, जो इसने न धारण किया हो।

(2) क्षेत्रपरावर्तन – ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, जहाँ जन्म–मरण न किया हो।

(3) कालपरावर्तन – ऐसा कोई काल नहीं कि जिसमें इसने जन्म–मरण न किये हों।

(4) भवपरावर्तन – ऐसा कोई भव नहीं है, जो इसने न पाया हो।

(5) भावपरावर्तन – ऐसे अशुद्धभाव नहीं है, जो इसके न हुए हों; इस तरह अनन्त परावर्तन इसे किये हैं – ऐसा बताया है।

प्रश्न 16– यदि मनुष्यभव में जहाँ सच्चे देव-गुरु-धर्म का सम्बन्ध मिला, वहाँ जीव अपना कल्याण न करे, व्यर्थ के कोलाहल में लगा रहे तो क्या होगा ?

उत्तर – चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद में चला जाएगा।

प्रश्न 17– 'मनुष्यभव में दिगम्बरधर्म मिलने पर भी, यदि व्रतादिक में ही लाभ मानता रहा तो निगोद जाना पड़ेगा' – यह कहाँ लिखा है ?

उत्तर – (1) जब तक लोहा गरम है, तब तक उसे पीट लो; गढ़ लो; इस कहावत के अनुसार इसी मनुष्यभव में जल्दी आत्मस्वरूप को समझ लो, अन्यथा थोड़े ही समय में त्रसकाल पूरा हो जाएगा और एकेन्द्रिय निगोदपर्याय प्राप्त होगी और उसमें अनन्त काल तक रहना होगा; इसलिए इस मनुष्यभव में ही पात्र जीवों को आत्मा का सच्चा स्वरूप समझ कर, सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर लेना चाहिए, क्योंकि आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने कहा है कि 'यदि इस अवसर में भी तत्त्वनिर्णय करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमाद से काल गँवाये – या तो मन्दरागादिसहित विषय-कषायों के कार्यों में ही प्रवर्ते या व्यवहारधर्म कार्यों में प्रवर्ते, तब अवसर चला जावेगा और संसार में ही भ्रमण होगा। ....'ऐसे समय में मोक्षमार्ग में प्रवर्तन नहीं करे, तो किञ्चित विशुद्धता पाकर फिर तीव्र उदय आने पर निगोदादि पर्याय को प्राप्त करेगा; इसलिए अवसर चूकना योग्य नहीं है। अब सर्व प्रकार से अवसर आया है – ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है, इसलिए श्रीगुरु दयालु होकर मोक्षमार्ग का उपदेश दे रहे हैं, उसमें भव्य जीवों को प्रवृत्ति करना योग्य है।'

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक]

प्रश्न 18- भाव अपेक्षा से आत्मा, अविशेष-एक है - इसका क्या रहस्य है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर - जैसे-सोने का चिकनापन, पीलापन, भारीपन इत्यादि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं - ऐसे स्वर्णस्वभाव के समीप आकर अनुभव करने पर विशेषता, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान-दर्शन आदि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय जिसमें सब विशेष विलय हो गये हैं-ऐसे आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि आत्मा में गुणभेद संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा से है; प्रदेशभेद नहीं है। आत्मा में गुणभेद होने पर भी, तू अभेद भगवान ज्ञायकस्वभावी है - ऐसा जानकर, अभेदस्वभावी का आश्रय ले तो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग का अभाव होकर शान्ति की प्राप्ति हो जाएगी।

प्रश्न 19- क्या गुणभेद होने पर भी, संसार के पाँच कारणों को अभाव हो सकता है और उसका फल क्या है ?

उत्तर - हाँ, हो सकता है क्योंकि गुणभेद, अभूतार्थ है और भगवान आत्मा, अभेद भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने चौथे बोल में यही बात समझायी है कि तू अभेदस्वभाव की दृष्टि करे तो संसार के कारणों का अभाव होकर, सिद्धदशा की प्राप्ति हो जाएगी।

प्रश्न 20- संसार के पाँच कारण कौन-कौन से है, जिनसे संसार परिभ्रमण होता है ?

उत्तर - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, और योग - ये संसार परिभ्रमण के पाँच कारण हैं।

प्रश्न 21- मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर - मिथ्यात्व—अनादि से एक-एक समय करके अज्ञानी की मिथ्यात्वदशा है। सम्पूर्ण दु:खों का मूलकारण मिथ्यात्व ही है। जीव के जैसा श्रद्धान है, वैसा पदार्थ स्वरूप न हो और जैसा पदार्थ का स्वरूप हो, वैसा यह न माने, यह मिथ्यादर्शन है। अज्ञानी जीव, स्व और शरीर को एक मानता है; किसी समय अपने को पतला, मोटा, बुखारवाला, कड़ा, नरम, गोरा आदि मानता है, यह मिथ्यादर्शन है।

प्रश्न 22- मिथ्यादर्शन को समझाने के लिए आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने क्या दृष्टान्त और सिद्धान्त समझाया है ?

उत्तर - [अ] (1) जैसे-पागल को किसी ने वस्त्र पहिना दिया। वह पागल उस वस्त्र को अपना अङ्ग जानकर, अपने को और वस्त्र को एक मानता है; उसी प्रकार इस जीव को कर्मोदय ने शरीर सम्बन्ध कराया। यह जीव, इस शरीर को अपना अङ्ग जानकर, अपने को और शरीर को एक मानता है।

(2) जैसे-वह वस्त्र, पहिनानेवाले के आधीन होने से कभी वह फाड़ता है, कभी जोड़ता है, कभी खोंसता है, कभी नया पहिनाता है - इत्यादि चरित्र करता है; उसी प्रकार वह शरीर, कर्म के आधीन (निमित्त से) कभी कृष होता है - कभी स्थूल होता है, कभी नष्ट होता है, कभी नवीन उत्पन्न होता है-इत्यादि चरित्र होते हैं।

(3) जैसे-वह पागल उसे अपने आधीन मानता है; उसकी पराधीनक्रिया होती है, उससे वह महा खेदखिन्न होता है; उसी प्रकार यह जीव, उसे अपने आधीन मानता है, उसकी पराधीनक्रिया होती है, इससे वह महा खेदखिन्न होता है।

[आ](3) जैसे-जहाँ वह पागल ठहरा था, वहाँ अन्य स्थान से आकर, मनुष्य, घोड़ा और धनादिक उतरे। उन सबको वह पागल

अपना मानने लगा, किन्तु वे सभी अपने-अपने आधीन हैं; अतः इसमें कोई आवे, कोई जावे और कोई अनेक अवस्थारूप से परिणमन करता है; इस प्रकार सबकी क्रिया अपने-अपने आधीन है, तथापि वह पागल, उसे अपने आधीन मानकर खेदखिन्न होता है; उसी प्रकार यह जीव, जहाँ शरीर धारण करता है, वहाँ किसी अन्य स्थान से आकर पुत्र, घोड़ा और धनादिक स्वयं प्राप्त होते हैं। यह जीव उन सबको अपना जानता है परन्तु ये सभी अपने-अपने आधीन होने से कोई आते हैं, कोई जाते हैं और अनेक अवस्थारूप से परिणमते हैं। क्या ये उसके आधीन हैं? ये जीव के आधीन नहीं हैं तो भी यह जीव, उन्हें अपने आधीन मानकर खेदखिन्न होता है, यह सब मिथ्यादर्शन है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ...... के आधार से]*

प्रश्न 23- यह जीव स्वयं जिस प्रकार है, उसी प्रकार अपने को नहीं मानता और किन्तु जैसा नहीं है, वैसा मानता है; यह मिथ्यादर्शन है-इसे जरा स्पष्टरूप से समझाइये?

उत्तर - जीव स्वयं (1) अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, (2) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारक, (3) अनादि निधन, (4) वस्तु स्व है तथा (1) शरीर, मूर्तिक पुद्‌गलद्रव्यों का पिण्ड (2) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों से रहित, (3) नवीन ही जिनका संयोग हुआ है, (4) ऐसे यह शरीरादिक पुद्‌गल पर हैं। इन दोनों के संयोगरूप मनुष्य, तिर्यञ्चादि अनेकर प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं; मूढ़ जीव इनमें अपनापना मानता है। स्व और पर का विवेक न होने से यह मिथ्यादर्शन है।

प्रश्न 24- मिथ्यादर्शन की कुछ पहिचान बताईए?

उत्तर - (1) नौ प्रकार के पक्षों में अपनेपने की बुद्धि;

(2) स्व-पर की एकत्वबुद्धि;

(3) शुभभावों से धर्म होता है - ऐसी बुद्धि;

(4) ज्ञेय से ज्ञान होना मानना;

(5) शुभाशुभभावों का ग्रहण-त्यागरूप बुद्धि;

(6) अपने को नरकादिरूप मानने की बुद्धि;

(7) पर में इष्ट-अनिष्ट की बुद्धि;

(8) मनुष्य-तिर्यञ्चों के प्रति करुणाभाव आदि मान्यताएँ; मिथ्यादर्शन के चिह्न हैं।

प्रश्न 25- मिथ्यात्व की पहिचान क्यों बतायी है ?

उत्तर - मिथ्यात्व का स्वरूप जानकर, भव्य जीवों को मिथ्यात्व छोड़ देना चाहिए क्योंकि सब प्रकार के बन्ध का मूलकारण मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व नष्ट हुए बिना अविरति आदि दूर नहीं होते; इसलिए प्रथम मिथ्यात्व को छोड़ना चाहिए।

प्रश्न 26- अविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर - (1) चारित्रसम्बन्धी निर्विकार स्वसंवेदन से विपरीत, अव्रत परिणामरूप विकार को अविरति कहते हैं।

(2) पाँच इन्द्रिय और मन के विषय एवं पाँच स्थावर और त्रस हिंसा, इन बारह प्रकार के त्यागरूप भाव का न होना, वह बारह प्रकार की अविरति है। अविरति को असंयम भी कहते हैं।

प्रश्न 27- प्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर - उत्तम क्षमादि दश धर्मों में उत्साह न रखना, यह प्रमाद है।

प्रश्न 28- कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - (1) मिथ्यात्व तथा क्रोधादिरूप आत्मा की अशुद्ध परिणति को कषाय कहते हैं।

(2) कष् = संसार। आय = लाभ। जिस भाव से संसार का लाभ हो, वह कषाय है, अर्थात् जो आत्मा को दु:ख दे, उसे कषाय कहते हैं। कषाये पच्चीस होती हैं।

प्रश्न 29- योग किसे कहते हैं ?

उत्तर - (1) मन-वचन-काय के निमित्त से आत्मप्रदेशों के परिस्पंदन को योग कहते हैं।

(2) आत्मा के प्रदेशों का सकम्प होना, सो योग है। योग के पन्द्रह भेद, निमित्त को अपेक्षा से हैं। आत्मा में योग नाम का गुण है, इसमें शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकार का परिणमन है।

प्रश्न 30- क्या सम्यग्दर्शन होते ही संसार के पाँच कारणों का अभाव हो जाता है ?

उत्तर - (1) जैसे, किसी को 99999 रुपया देना है। वह यदि 90000 रुपया दे दे तो 9999 रुपया बाकी रहता है; 90000 दे दिया तो बाकी आ ही जाता है। उसी प्रकार मिथ्यात्व का अभाव होना 90000 देने के बराबर है। जहाँ मिथ्यात्व का अभाव हो गया, वहाँ अविरति, प्रमाद, कषाय और योग का अभाव अल्प काल में हो ही जाता है; इसलिए सम्यक्त्व होते ही संसार के पाँच कारणों का अभाव हो जाता है।

(2) अनन्त संसार का कारण तो मिथ्यात्व है। उसका अभाव हो जाने पर, अन्य बन्ध की गणना कौन करता है ? जैसे, वृक्ष की जड़ कट जाने पर, फिर हरे पत्ते की अवधि कितनी रहती है ? इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर जो कुछ कमी होती है, वह सहज मिट ही जाती है; अत: मिथ्यात्व का अभाव होते ही संसार के पाँच कारणों का अभाव हो जाता है।

प्रश्न 31- भव अपेक्षा से आत्मा असंयुक्त, सङ्कल्प-विकल्पजालों से रहित है - इसका क्या रहस्य है, जरा दृष्टान्त देकर समझाइए ?

उत्तर - जैसे-जल का, अग्नि जिसका निमित्त है - ऐसी उष्णता के साथ संयुक्ततारूप अवस्था से अनुभव करने पर (जल का) उष्णतारूप संयुक्तता, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय एकान्त शीतलतारूप जलस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर (उष्णता के साथ) संयुक्तता, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; उसी प्रकार आत्मा का] कर्म जिसका निमित्त है - ऐसे मोह के साथ संयुक्ततारूप अवस्था से अनुभव करने पर संयुक्तता, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय जो स्वयं एकान्त ज्ञायक जीवस्वभाव (पर के, निमित्त के, भेद से रहित, स्वाश्रितरूप से स्थायी ज्ञानस्वभाव) है, उसके (चैतन्यस्वभाव) के समीप जाकर अनुभव करने पर संयुक्तता, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि आत्मा का, पर्याय में मोह-राग-द्वेष होने पर, कर्म का निमित्त होने पर भी आत्मा का परमपारिणामिकभाव एकरूप पड़ा है; उसकी ओर दृष्टि करे तो औदयिकभावों के अभावरूप औपशमिकभाव तथा धर्म का क्षयोपशमपना प्रगट होकर, क्रम से पूर्ण क्षायिकपना प्रगट होता है। ऐसा जानकर अपने पारिणामिकभाव का आश्रय लेकर क्षायिकदशा प्रगट करना, पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न 32- क्या पर्याय में मोह-राग-द्वेष होने पर, कर्म का निमित्त होने पर भी, औदयिकभावों का अभाव हो सकता है, और उसका फल क्या है ?

उत्तर - हाँ, हो सकता है क्योंकि पर्याय में मोह-राग-द्वेषभाव, अभूतार्थ है और भगवान आत्मा, भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य

ने यही बात इस पाँचवें बोल में समझायी है कि तेरी पर्याय में मोह –राग–द्वेष होने पर भी, तू अपने परमपारिणामिकभाव की दृष्टि करे तो पूर्ण क्षायिकदशा प्रगट होती है।

प्रश्न 33– श्रीसमयसार, कलश 10 तथा गाथा 14 में, 'जो आत्मा को अबद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावरूप से देखता है, उसे तू शुद्धनय जान' – इसको समझाने से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – पाँचरूप से नहीं, परन्तु एकरूप से जानता–अनुभवता और स्थिरता करता है, उसने शुद्धनय को जाना। वास्तव में इस गाथा में पाँच प्रकार से कथन किया है। आचार्य भगवान को पात्र भव्य जीवों के प्रति करुणा है कि किसी भी प्रकार इस अज्ञानी जीव का अज्ञान मिटकर, धर्म की प्राप्ति हो। वास्तव में प्रथम बोल के समझने से ही कल्याण हो जाना चाहिए; जो इतने से नहीं समझा, उसे दूसरे बोल से; फिर तीसरे बोल से; फिर चौथे बोल से और फिर पाँचवें बोल से समझाया है। यदि पात्र जीव समझ जावे तो स्वयं भगवान बन जाता है और यदि न समझे तो चारों गतियों में घूमकर निगोद चला जाता है। अबद्धस्पृष्टादि को समझने से मोक्ष का पथिक बने, यह तात्पर्य पाँच बोलो से है।

प्रश्न 34– जो शुद्धनय को जान जाता है, उसका फल अनादि से जिन, जिनवर और जिनवर वृषभों ने क्या–क्या बताया है?

उत्तर – (1) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग – इन संसार परिभ्रमण के पाँच कारणों का अभाव होकर, मोक्ष का पथिक बन जाता है।

(2) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पाँच परावर्तन का अभाव होकर, क्रम से सिद्धदशा को प्राप्ति इसका फल है।

(3) पञ्च परमेष्ठियों में उसकी गिनती होने लगती है।

(4) चारों गतियों का अभाव होकर, पञ्चम गति / मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

(5) औदायिकादिभावों से दृष्टि हटकर, परमपारिणामिकभाव का महत्त्व आ जाता है।

(6) आठों कर्मों का अभाव हो जाता है।

(7) गुणस्थान, मार्गणा और जीवसमास से दृष्टि हटकर, अपने भगवान का पता चल जाता है।

(8) श्रीसमयसार, गाथा 50 से 55 तक कहे 29 बोलों से दृष्टि हटकर, अपने भगवान का पता चल जाता है।

(9) मैं ज्ञायक और लोकालोक ज्ञेय है - ऐसा पता चल जाता है।

(10) शुद्धनय का पता चलते ही (अ) सिद्धभगवान क्या करते हैं और सिद्धदशा क्या है? (आ) अरहन्तभगवान क्या करते हैं और अरहन्तदशा क्या है? (इ) आचार्य, उपाध्याय और साधु क्या करते हैं और आचार्य, उपाध्याय और साधुपना क्या है? (ई) श्रावकपना, सम्यग्दृष्टिपना क्या है और श्रावक, सम्यग्दृष्टि क्या करते हैं? (उ) अनादि से मिथ्यादृष्टि क्या करते हैं और मिथ्यादृष्टि क्या है? - आदि सब बातों का पता चल जाता है।

(11) समस्त जिनशासन का पता चल जाता है।

(12) देव-गुरु-शास्त्र क्या है - इसका पता भी शुद्धनय के जानने पर ही होता है।

इसलिए हे जीव! तू एक बार अनादि-अनन्त अपने शुद्धनय का आश्रय ले तो सादि-सान्तदशा प्रगट होकर, सादि-अनन्त दशा को प्राप्ति हो जाती है। यह 10 वें कलश तथा गाथा 14 का रहस्य है।

6

श्रीसमयसार, गाथा 349 से 382 तक का रहस्य

ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता

प्रश्न 1– 'ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।' इस विषय में नाटक – समयसार, सर्वविशुद्ध द्वार–काव्य 53 में क्या बताया है ?

उत्तर –

ज्ञेयाकार ग्यान की परिणति, पै वह ग्यान ज्ञेय नहिं होइ।
ज्ञेयरूप षट दरव भिन्न पद, ग्यानरूप आतमपद सोइ॥
जानै भेदभाउ सु विचचछन, गुन लच्छन सम्यक् द्रिग जोइ।
मूरख कहै ग्यानमय आकृति, प्रगट कलंक लखै नहि कोई॥

विशेष अर्थ – जीवपदार्थ, ज्ञायक है; ज्ञान, उसका गुण है। वह अपने ज्ञानगुण से जगत के छहों द्रव्यों को जानता है और अपने को भी जानता है; इसलिए जगत के सब जीव–अजीव पदार्थ और स्वयं आत्मा ज्ञेय और आत्मा स्व–पर को जानने से ज्ञायक है। भाव यह है आत्मा, ज्ञेय भी है, और ज्ञायक भी है। आत्मा के सिवाय सब पदार्थ, ज्ञेय हैं। जब कोई ज्ञेयपदार्थ, ज्ञान में प्रतिभासित होता है, तब ज्ञान की ज्ञेयाकार परिणति होती है। परन्तु ज्ञान, ज्ञान ही रहता है; ज्ञेय नहीं हो जाता और ज्ञेय, ज्ञेय ही रहता है, ज्ञान नहीं हो जाता; कोई किसी में नहीं मिलता है। ज्ञेय का स्वचतुष्टय जुदा रहता है और ज्ञायक का स्वचतुष्टय जुदा रहता है परन्तु विवेकशून्य वैशैषिक आदि ज्ञान में

ज्ञेय की आकृति देखकर, ज्ञान में अशुद्धता ठहराते हैं, यह मिथ्या मान्यता है।

प्रश्न 2- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ अनुसार ज्ञेय जाना जाता है - इस विषय में श्रीसमयसार, गाथा 373 से 382 तथा कलश 222 का क्या रहस्य है?

उत्तर - जैसे, दीपक का स्वभाव, घट-पटादि को प्रकाशित करने का है; उसी प्रकार ज्ञान का स्वभाव, ज्ञेय को जानने का है, ऐसा वस्तुस्वभाव है।

(2) ज्ञेय को जाननेमात्र से ज्ञान में विकार नहीं होता। ज्ञेयों को जानकर, उन्हें अच्छ-बुरा मानकर, आत्मा, रागी-द्वेषी-विकारी होता है, जो कि अज्ञान है।

(3) इसलिए आचार्यदेव ने सोच किया है कि वस्तु का स्वभाव तो ऐसा है, फिर भी यह आत्मा, अज्ञानी होकर राग-द्वेषरूप क्यों परिणामित होता है? अपनी स्वभाविक उदासीन अवस्थारूप क्यों नहीं रहता?

(4) इस प्रकार आचार्यदेव ने जो सोच किया है, सो उचित ही है क्योंकि ज्ञानियों को जब तक शुभराग है, तब तक प्राणियों को अज्ञान से दुःखी देखकर करुणा उत्पन्न होती है और उससे सोच भी होता है।

प्रश्न 3- श्रीसमयसार, गाथा 356 से 365 तक का सार क्या है?

उत्तर - (1) जिसे सम्यग्ज्ञान हो जाता है, वह जानता है कि आत्मा वास्तव में अपने ज्ञान की पर्याय को जानता है और परज्ञेय तो ज्ञान का निमित्तमात्र है।'परज्ञेय को जाना' - ऐसा कथन व्यवहार है।

(2) यदि परमार्थदृष्टि से देखा जावे तो आत्मा, पर को जानता

है, सो मिथ्या है क्योंकि ऐसा होने पर आत्मा और ज्ञेय (ज्ञान और ज्ञेय) दोनों ही एक जावेंगे। 'जिसका जो होता है, वह वही होता है' यह कानून है; इसलिए वास्तव में यदि यह कहा जावे कि 'पुद्गल का ज्ञान है' तो ज्ञान, पुद्गलरूप-ज्ञेयरूप हो जावेगा; अतः यह समझना चाहिए कि निमित्तसम्बन्धी अपने ज्ञान की पर्याय को आत्मा जानता है।

(3) आत्मा, आत्मा को जानता है, यह भी स्व-स्वामी अंश है; ऐसे भेद से भी धर्म की प्राप्ति नहीं होगी क्योंकि लक्षण से लक्ष्य का ज्ञान कराना, यह भी भेद है। जब तक भेद में पड़ा रहेगा, तब तक सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति नहीं होगी; अतः 'ज्ञायक, ज्ञायक ही है'— यह निश्चय है।

प्रश्न 4- श्रीसमयसार, गाथा 356 से 365 की टीका में श्री अमृतचन्द्राचार्यजी ने छह बार क्या बात बतलायी है?

उत्तर - 'एक द्रव्य का, अन्य द्रव्यरूप में संक्रमण होने का निषेध किया है।' इस बात को टीका में छह बार बताया है।

प्रश्न 5- श्रीसमयसार, कलश 214 का सार क्या है?

उत्तर - कोई आशंका करता है कि जैन सिद्धान्त में भी ऐसा कहा है कि जीव, ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म को करता है-भोगता है। उसका समाधान किया है कि झूठे व्यवहार से कहने को है। द्रव्य के स्वरूप का विचार करने पर, परद्रव्य का कर्ता जीव नहीं है, इससे यह समझना चाहिए परद्रव्यरूप ज्ञेयपदार्थ अपने भाव से परिणमित होते हैं और ज्ञायक आत्मा अपने भावरूप परिणमन करता है। वे एक दूसरे का परस्पर कुछ नहीं कर सकते; इसलिए वह व्यवहार से ही कहा जाता है कि 'ज्ञायक, परद्रव्यों को जानता है;' निश्चय से ज्ञायक तो बस ज्ञायक ही है।

प्रश्न 6- इस विषय पर श्रीप्रवचनसार, गाथा 173-174 में क्या बताया है ?

उत्तर - उन दोनों गाथाओं में प्रश्न और उत्तर हैं।

प्रश्न- आत्मा अमूर्तिक होने पर भी, वह मूर्तिक कर्म-पुद्गलों के साथ कैसे बँधता है ?

उत्तर - *आत्मा, अमूर्तिक होने पर भी, वह मूर्तिक पदार्थों को कैसे जानता है ? जैसे, वह मूर्तिक पदार्थों को जानता है; उसी प्रकार मूर्तिक कर्मपुद्गलों के साथ बँधता है।*

प्रश्न- शास्त्रों में आता है कि 'वास्तव में अरूपी आत्मा का, रूपी पदार्थों के साथ कोई सम्बन्ध न होने पर भी, अरूपी आत्मा का रूपी के साथ सम्बन्ध होने का व्यवहार भी विरोध को प्राप्त नहीं होता है', इसे स्पष्ट करके समझाइए' ?

उत्तर - *(अ) जहाँ यह कहा जाता है कि 'आत्मा, मूर्तिक पदार्थों को जानता है' वहाँ परमार्थतः अमूर्तिक आत्मा का मूर्तिक पदार्थों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, उसका तो मात्र उस मूर्तिक पदार्थ के आकाररूप होनेवाले ज्ञान के साथ ही सम्बन्ध है और उस पदार्थ के ज्ञान के साथ के सम्बन्ध के कारण ही 'अमूर्तिक आत्मा, मूर्तिक पदार्थ को जानता है' - ऐसा अमूर्तिक-मूर्तिक का सम्बन्धरूप व्यवहार सिद्ध होता है; उसी प्रकार जहाँ यह कहा जाता है कि 'अमूक आत्मा का मूर्तिक कर्मपुद्गलों के साथ बन्ध है' वहाँ परमार्थतः अमूर्तिक आत्मा का, मूर्तिक कर्मपुद्गलों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा का तो कर्मपुद्गल जिसमें निमित्त हैं, ऐसे राग-द्वेषादिभावों के साथ ही सम्बन्ध (बन्ध) है और उन कर्म-निमित्तक राग-द्वेषादिभावों के साथ सम्बन्ध होने से ही 'इस आत्मा का मूर्तिक कर्म-पुद्गलों के साथ बन्ध है' - ऐसा अमूर्तिक-मूर्तिक का बन्धरूप व्यवहार सिद्ध होता है।*

(आ) मनुष्य को स्त्री-पुत्र-धनादिक के साथ वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं है, वे उस मनुष्य से सर्वथा भिन्न हैं, तथापि स्त्री-पुत्र -धनादिक के प्रति राग करनेवाले मनुष्य को राग का बन्धन होने से और उस राग में स्त्री-पुत्र-धनादिक के निमित्त होने से, व्यवहार से यह अवश्य कहा जाता है कि 'इस मनुष्य को स्त्री-पुत्र-धनादिक का बन्धन है; उसी प्रकार आत्मा का कर्म-पुद्गलों के साथ वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं है, वे आत्मा से सर्वथा भिन्न हैं, तथापि राग -द्वेषादिभाव करनेवाले आत्मा को, राग-द्वेषादिभावों का बन्धन होने से, और उन भावों में कर्मपुद्गल निमित्त होने से, व्यवहार से यह अवश्य कहा जा सकता है कि 'इस आत्मा को कर्मपुद्गलों का बन्धन है।' ***[श्रीप्रवचनसार, गाथा 174 के भावार्थ से]***

प्रश्न 7- इस निश्चय-व्यवहार के बताने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर - (1) आत्मा का ज्ञानपर्याय के साथ सम्बन्ध है; ज्ञेय पदार्थों के साथ सम्बन्ध नहीं है-यह बात यथार्थ है।

(2) अज्ञानी आत्मा का भी राग-द्वेषादिभावों से सम्बन्ध है; द्रव्यकर्म-नोकर्म के साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है-यह बात यथार्थ है।

(3) सुख-दुःख का सम्बन्ध, सुख-दुःख पर्याय से है; पदार्थों के साथ सम्बन्ध नहीं है-यह बात यथार्थ है।

(4) सम्यग्दर्शन का सम्बन्ध, आत्मा के श्रद्धागुण से है; देव-गुरु-शास्त्र से, दर्शनमोहनीय उपशमादि से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है-यह बात यथार्थ है।

(5) केवलज्ञान का सम्बन्ध, ज्ञानगुण से है; बज्रवृषभनाराच-संहनन, चौथा काल, ज्ञानावरणीय के अभाव से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है-यह बात यथार्थ है।

तात्पर्य है कि 'निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारकता का सम्बन्ध नहीं है कि जिससे शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति के लिए बाह्य सामग्री ढूँढने की व्यग्रता से जीव व्यर्थ ही परतन्त्र-दु:खी होकर आकुलित होते हैं।' *[श्रीप्रवचनसार, गाथा 16 की टीका से]*

प्रश्न 8- शास्त्रों में आता है कि जीव, ज्ञानावरणीय आदि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड का कर्ता है - सो वहाँ क्या समझना चाहिए ?

उत्तर - कहने को तो है; वस्तुस्वरूप विचारने पर कर्ता नहीं है क्योंकि व्यवहारदृष्टि से ही कहने के लिए सत्य है, वस्तुस्वरूप का विचार करने पर झूठा है।

प्रश्न 9- शास्त्रों में व्यवहारकथन किस प्रकार से होते हैं, उनके लिए जिनवाणी में क्या दृष्टान्त दिए हैं ?

उत्तर - (1) जैसे, हाथी के दाँत बाहर देखने के अलग हैं तथा भीतर चबाने-खाने के अलग हैं; वैसे ही जैन ऋषि, मुनि और आचार्यों के रचे हुए सिद्धान्तशास्त्र, सूत्र और पुराणादि हैं, वे तो हाथी के बाहर के दाँतो समान समझना तथा भीतर का यथार्थ आशय जिसका जो वही जानता है। यह दृष्टान्त ऐसा सूचित करता है कि शास्त्रों में अनेक उपचारकथन है, उनका आशय पकड़कर परमार्थ अर्थ समझना। यदि शब्दों को पकड़ा जावेगा तो शास्त्र का आशय समझ में नहीं आवेगा।

(2) एक साहूकार ने अपने पुत्र को परदेश भेजा। कितने ही दिन क बाद बेटे की बहू बोली, 'मैं तो विधवा हो गयी।' तब सेठ ने अपने पुत्र के नाम पत्र भेजा - उसमें ऐसा लिखा कि 'बेटा! तेरी बहू तो विधवा हो गयी है।' तब वह सेठ का पुत्र उस पत्र को पढ़कर शोक करने लगा। किसी ने पूछा — 'तुम शोक क्यों करते हो ?'

उसने कहा 'हमारी स्त्री विधवा हो गयी है।' यह सुनकर वह बोला – 'तुम तो प्रत्यक्ष जीवित / मौजूद हो, फिर तुम्हारी स्त्री विधवा कैसे हो गयी ?' तब वह सेठ का पुत्र बोला – 'तुमने कहा, वह तो सच है परन्तु मेरे दादाजी का लिखा हुआ पत्र आया है, उसे झूठा कैसे मानूँ ?'

यह दृष्टान्त ऐसा सूचित करता है कि अज्ञानी, शास्त्र का आशय जानते नहीं और आशय समझे बिना ही कहते हैं कि 'शास्त्र में कर्म के उदय से / निमित्त से लाभ-हानि होती हैं – ऐसा लिखा है, वह क्या झूठ है ?' ज्ञानी कहते हैं 'भाई! शास्त्राकार का आशय तो यह है कि आत्मा स्वयं मौजूद है और उसकी परिणति, कर्म के उदय से या निमित्त से होती है – ऐसा मानना तो 'मेरी मौजूदगी में मेरी स्त्री विधवा हो गयी' — ऐसा कहकर जोर-जोर से रोने जैसा है। शास्त्र के वे कथन तो उपचारमात्र कर्म की अवस्था का तथा निमित्त का ज्ञान कराने के लिए है।

(3) व्यवहार अभूतार्थ है, सत्य स्वरूप का निरूपण नहीं करता; किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है तथा शुद्धनय जो निश्चय है, वह भूतार्थ है, जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा निरूपण करता है; इसलिए निश्चयनय से जो निरूपण किया हो, उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अङ्गीकार करना और व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर, उसका श्रद्धान छोड़ना – ऐसा शास्त्रों में बताया है।

प्रश्न 10– ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है – इसे दृष्टान्त से समझाइए ?

उत्तर – एक शिकारी था। उसकी तीन पत्नियाँ थी। एक ने कहा – 'मुझे प्यास लगी है, पानी लाओ'। दूसरी ने कहा 'बिछाने के लिए मृगचर्म लाओ', तीसरी ने कहा 'मुझे गायन सुनाओ।' शिकारी

ने तीनों को एक ही उत्तर दिया। 'सरो नात्थी' यह प्राकृत का शब्द है; इस शब्द से तीनों का मतलब हल हो गया। पहली ने समझा 'सर: न अस्ति' तालाब नहीं है, पानी कहाँ से लाऊँ? दूसरी ने समझा 'शरो न अस्ति' बाण नहीं है, मृगचर्म कहाँ से लाऊँ? तीसरी ने समझा 'स्वर न अस्ति' मेरा स्वर ठीक नहीं है, गायन कैसे सुनाऊँ? विचारिए! क्या शब्द से ज्ञान हुआ? नहीं, परन्तु तीनों को अपने-अपने ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञान हुआ। यदि शब्द से ज्ञान होता तो तीनों को एक-सा ही ज्ञान होना चाहिए था, सो हुआ नहीं। इससे सिद्ध हुआ कि शब्द से ज्ञान नहीं; ज्ञान, ज्ञान से आता है; इसलिए ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता है परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 11- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है - इसके लिए दूसरा दृष्टान्त देकर समझाइये?

उत्तर - तीर्थङ्कर भगवान को ओं गर्जनारूप दिव्यध्वनि खिरती है; समवसरण में बारह प्रकार की सभा होती हैं। क्या सब जीवों को एक-सा ज्ञान होता है? नहीं; वास्तव में जिस जीव को जितना उघाड़ होता है, उतना-उतना भगवान की दिव्यध्वनि पर आरोप आता है; इसलिए यह सिद्ध हुआ कि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 12- भगवान महावीर की वाणी सुनकर गौतम गणधर ने अन्तर्मुहूर्त में बारह अङ्ग की रचना की और आप कहते हैं कि ज्ञेय से ज्ञान नहीं होता है?

उत्तर - गौतम गणधर को मति, श्रुति, अवधि और मन:पर्यय ज्ञान था, वह दिव्यध्वनि से नहीं हुआ, क्योंकि यदि दिव्यध्वनि से

ज्ञान होता तो वहाँ सब जीवों को होना चाहिए था, सो हुआ नहीं; इसलिए ज्ञेय से ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 13- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है, इसका तीसरा उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर - हमारे सामने आम रखा है, उसमें स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण चारों एक साथ हैं। जिस समय हम रङ्ग का ज्ञान करते हैं, उस स्पर्श -रसादि का ज्ञान नहीं है। जिस समय रस का ज्ञान करते हैं, उस समय स्पर्श-गन्धादि का ज्ञान नहीं है। यदि आम से ज्ञान होता तो स्पर्शादि चारों का ज्ञान एक साथ होना चाहिए, सो होता नहीं। इससे सिद्ध हुआ, ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 14- क्या पाँच इन्द्रियाँ एवं मन से भी ज्ञान नहीं होता है ?

उत्तर - बिल्कुल नहीं, क्योंकि यह सब पुद्‌गल स्कन्धों की पर्यायें हैं, इनमें ज्ञान नहीं है। जिसमें स्वयं ज्ञान नहीं, वह ज्ञान का कारण कैसे बन सकते हैं ? कभी भी नहीं। इससे सिद्ध हुआ - संयोग के अनुसार ज्ञान नहीं, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार संयोग जाना जाता है।

प्रश्न 15- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है - चौथा उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर - सामने अमरूद का बाग है। बाग में पानी दिया। देखो पेड़ के ज्ञान का उघाड़, मात्र स्पर्श का ही है। पानी में स्पर्श-रस-

गन्ध-वर्णादि सब हैं, लेकिन पेड़ को रस-गन्ध-वर्णादि का ज्ञान नहीं है। इससे सिद्ध होता है, ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 16- सामने लोकालोक है, हमें ज्ञान क्यों नहीं होता और केवली को क्यों होता है?

उत्तर - केवली को अपने ज्ञान के उघाड़ के कारण ही ज्ञान होता है; लोकालोक के कारण नहीं। यदि लोकालोक के कारण ज्ञान होता तो हमें भी उसका ज्ञान होना चाहिए; अत: सिद्ध हुआ कि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 17- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है-पाँचवाँ उदाहरण देकर समझाइये?

उत्तर - सामने आदमी सो रहा है। उसे देखकर दूसरा आदमी कहता है कि देखो! इसके सिर पर कितने मच्छर उड़ रहे हैं। वे उसके लम्बे-लम्बे बाल हैं और ज्ञान किया मच्छरों का। यदि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता है तो बालों का ज्ञान होना चाहिए था, मच्छरों का नहीं; अत: सिद्ध हुआ कि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 18- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है—छठा उदाहरण देकर समझाइये?

उत्तर - रात्रि के समय में अन्धेरे में जा रहे हैं, लकड़ी के ठूँठ को भूत मान लिया और डर के मारे दु:खी हो रहे हैं। यदि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता तो लकड़ी के ठूँठ को भूत न मानता। इससे सिद्ध

हुआ ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 19- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है - कोई और उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर - कॉलिज में प्रोफेसर बहुत से विद्यार्थियों को एक साथ एक-सा पाठ पढ़ाता है। क्या सब विद्यार्थियों को एक-सा ज्ञान होता है ? कभी भी नहीं। अत: यह सिद्ध हुआ कि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 20- इस सिद्धान्त में क्या रहस्य है ?

उत्तर - जैसे, आत्मा में अननत गुण हैं। उस प्रत्येक गुण का उसकी पर्याय से तो सम्बन्ध कहो, परन्तु पर से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है क्योंकि विश्व में जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म, आकाश एक-एक और लोकप्रमाण असंख्यात काल हैं। प्रत्येक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं। प्रत्येक गुण अनादि-अनन्त कायम रहता हुआ, अपनी-अपनी प्रयोजनभूत क्रिया करता हुआ, स्वयं बदलता रहता है - ऐसा वस्तुस्वभाव है। यह बात जिसके ज्ञान में आ जावे तो अनन्त संसार का अभाव होकर मोक्षलक्ष्मी का नाथ बन जावे। ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है - यह उसका रहस्य है।

प्रश्न 21- ज्ञेय-ज्ञायक के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 216 का भाव क्या है ?

उत्तर - वास्तव में किसी द्रव्य का स्वभाव, किसी अन्य द्रव्यरूप नहीं होता। जैसे-चाँदनी, पृथ्वी को उज्ज्वल करती है, किन्तु पृथ्वी

चाँदनी की किञ्चित्मात्र भी नहीं होती; उसी प्रकार ज्ञान, ज्ञेय को जानता है, किन्तु ज्ञेय, ज्ञान का किञ्चित्मात्र भी नहीं होता। आत्मा का ज्ञानस्वभाव है; इसलिए ज्ञान की स्वच्छता में ज्ञेय स्वयमेव झलकता है, किन्तु ज्ञान में ज्ञेयों का प्रवेश नहीं होता है।

प्रश्न 22- ज्ञेय-ज्ञायक के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 215 में क्या बताया है ?

उत्तर - जिसने शुद्धद्रव्य के भाव में बुद्धि को लगाया है और जो तत्त्व का अनुभव करता है, उस पुरुष को एक द्रव्य के भीतर कोई भी अन्य द्रव्य रहता हुआ कदापि भासित नहीं होता। ज्ञान, ज्ञेय को जानता है, सो तो यह ज्ञान से शुद्धस्वभाव का उदय है। जबकि ऐसा है, तब फिर लोग, ज्ञान को अन्य ज्ञेय के साथ स्पर्श नहीं होने की मान्यता से आकुलबुद्धिवाले होते हुए शुद्धस्वरूप से क्यों च्युत होते हैं ? अर्थात्, आत्मा ने द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म को छुआ ही नहीं, तब मैं पर का कर्ता-भोक्ता हूँ-यह बुद्धि कहाँ से आयी ? अज्ञान से आयी है। इसलिए हे भव्य! तेरा तेरे से बाहर कुछ नहीं है। जरा अपने अन्दर देख, अपूर्व शान्ति का वेदन होगा। तात्पर्य यह है कि जीव समस्त ज्ञेय को जानता है, तथापि समस्त ज्ञेय से भिन्न है - ऐसा चौथे गुणस्थान से लेकर सिद्धदशा तक सब जानते हैं।

प्रश्न 23- ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध को समझने के लिए किस शास्त्र की, कौन-कौनसी गाथाएँ-टीकाएँ देखना चाहिए ?

उत्तर - (1) श्रीसमयसार, गाथा 356 से 365 तक तथा गाथा 373 से 382 तक टीकासहित और कलश 214 से 222 तक देखना चाहिए।

(2) श्रीप्रवचनसार, गाथा 173 से 174 तक टीकासहित देखना चाहिए।

प्रश्न 24- ज्ञेय-ज्ञायक के दोहे सुनाओ ?

उत्तर -

सकल वस्तु जग में असहाई। वस्तु वस्तु सों मिलै न काई॥
जीव वस्तु जानै जग जेती। सोऊ भिन्न रहे सब सेती॥

सुद्ध दरब अनुभव करे, शुद्ध दृष्टि घट माँहि।
तातैं समकितवंत नर, सहज उच्छेदक नाँहि॥

तथा

सकल ज्ञेय-ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि रज रहस विहीन॥

— — — —

जिनवाणी-श्रवण की पात्रता

चौरासी लाख योनियों का भ्रमण छुड़ानेवाली, त्रिलोकीनाथ की वाणी सुनने आये, उसे देव-शास्त्र-गुरु की कितनी विनय चाहिए? स्वर्ग से आकर इन्द्रादि देव, भगवान की वाणी कितनी विनय, भक्ति और नम्रता से सुनते हैं! जिनवाणी का श्रवण करते समय शास्त्र की विनय और बहुमान करना चाहिए, शास्त्र को नीचे नहीं रखा जाता, उस पर कुहनी नहीं टेकी जाती, पैर पर पैर चढ़ाकर शास्त्र श्रवण के लिये नहीं बैठा जाता, रूमाल या पन्ने आदि से हवा नहीं की जाती, जम्हाइयाँ नहीं ली जाती, प्रमाद से बैठा नहीं जाता आदि कितनी विनय-बहुमान-भक्ति हो, तब तो जिनवाणी-श्रवण की पात्रता है। व्यवहार-पात्रता जैसी है, वैसी जानना चाहिए।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

7

श्रीसमयसार, गाथा 31 तक का रहस्य

तीर्थङ्करदेव की निश्चयस्तुति

प्रश्न 1- जितेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर - श्रीसमयसार, गाथा 31 में कहा है कि -

कर इन्द्रियजय ज्ञान स्वभाव रु, अधिक जाने आत्म को।
निश्चय विषे स्थित साधुजन, भाषै जितेन्द्रिय उन्हीं को॥३१॥

अर्थात्, जो इन्द्रियों को जीतकर, ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक (भिन्न) आत्मा को जानते हैं, (अनुभवते हैं), उन्हें जो निश्चयनय में स्थित साधु हैं, वे वास्तव में जितेन्द्रिय कहते हैं।

प्रश्न 2- तीर्थङ्कर की निश्चयस्तुति क्या है ?

उत्तर - जिससे तिरा जाता है, ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह तीर्थ अपने में ही हैं। 'कर' अर्थात् प्रगट करे। सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चारित्र अपनी आत्मा में प्रगट होवे, वह तीर्थङ्कर की निश्चय स्तुति है।

प्रश्न 3- निश्चयस्तुति की शुरुआत कब से होती है ?

उत्तर - चौथे गुणस्थान से निश्चयस्तुति की शुरुआत होती है।

प्रश्न 4- निश्चयस्तुति कितने प्रकार की है और वह किस जीव को होती है तथा उसका फल क्या है ?

उत्तर - तीन प्रकार की है। (1) चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में जघन्य निश्चयस्तुति होती है।

(2) सातवें गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक मध्यम निश्चयस्तुति होती है।

(3) सातवें से बारहवें गुणस्थान तक उत्तम निश्चयस्तुति होती है और तेरहवाँ–चौदहवाँ गुणस्थान तथा सिद्धदशा, निश्चयस्तुति का फल है।

प्रश्न 5– हम मन्दिर में स्तुति बोलते हैं; अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा करते हैं – क्या यह हमारी निश्चयस्तुति नहीं है ?

उत्तर – अपनी आत्मा का अनुभव किए बिना, चाहे वह द्रव्यलिङ्गी मुनि हो, किसी को भी निश्चयस्तुति नहीं हो सकती है क्योंकि स्तुति का उच्चारण, भाषावर्गणा का कार्य है; हाथ जोड़ना, सामग्री चढ़ाना आदि सब जड़ का कार्य है, इसमें स्तुति की बात नहीं है परन्तु जो जीव यह मानता है कि मैं पाठ बोलता हूँ, सामग्री चढ़ाता हूँ, यह पर में अपनेपने की बुद्धि, मिथ्यात्वभाव हैं। उस समय जितनी मन्दकषाय है, वह पापानुबन्धी पुण्य है। जैसे – बहु का गाना गाने से बताशा मिलता है, बहु नहीं मिलती है; उसी प्रकार पुण्य से संयोग मिलता है, मोक्षमार्ग और मोक्ष नहीं मिलता है। अज्ञानी, पुण्य के संयोग में पागल बना रहता है, वह परम्परा निगोद का कारण है। वास्तव में अज्ञानी की स्तुति–पूजा आदि सब राग की स्तुति–पूजा है, मोहभजन है, जो संसार के लिए कार्यकारी है।

प्रश्न 6– अज्ञानी के स्तुति–पूजा आदि मोहभजन है, संसार के लिए कार्यकारी है; मोक्ष और मोक्षमार्ग के लिए कार्यकारी नहीं है – ऐसा कहाँ लिखा है ?

उत्तर –

वो धर्म को श्रद्धे प्रतीत, रुचि स्पर्शन करे।
वो भोग हेतु धर्म को, नहिं कर्म के क्षय के हेतु को ॥275॥

टीका - अभव्यजीव, नित्य कर्मफलचेतनारूप वस्तु की श्रद्धा करता है किन्तु नित्य ज्ञानचेतनामात्र वस्तु की श्रद्धा नहीं करता, क्योंकि वह सदा (स्व-पर के) भेदविज्ञान के अयोग्य है। इसलिए वह कर्मों से छूटने के निमित्तरूप, ज्ञानमात्र भूतार्थ (सत्यार्थ) धर्म की श्रद्धा नहीं करता, (किन्तु) भोग के निमित्तरूप, शुभकर्ममात्र अभूतार्थधर्म की ही श्रद्धा करता है; इसलिए वह अभूतार्थधर्म की ही श्रद्धा, प्रतीत, रुचि और स्पर्शन से ऊपर के ग्रैवेयक तक के भोगमात्र को प्राप्त होता है किन्तु कभी भी कर्मों से मुक्त नहीं होता; इसलिए उसे भूतार्थधर्म के श्रद्धान का अभाव होने से (यथार्थ) श्रद्धान भी नहीं है। ऐसा चारों अनुयोगों में बताया है। *[श्रीसमयसार, गाथा 275]*

प्रश्न 7- निश्चयस्तुति कैसे प्रगट होवे ?

उत्तर - जिनेन्द्रभगवान के कहे अनुसार तत्त्व का अभ्यास करके सम्यग्दर्शन प्रगट करे, तब निश्चयस्तुति प्रगट होती है।

प्रश्न 8- वर्तमान में जितने दिगम्बरधर्मी आत्मा के अनुभव बिना स्तुति, पूजा, सामायिक करते हैं और उसे करते-करते मोक्षमार्ग प्रगट हो जावेगा - ऐसा मानते हैं - क्या वे सब पागल ही हैं ?

उत्तर - जैसे - कोई दिल्ली जाने के लिए कलकत्ता की सड़क पर चले तो कभी भी दिल्ली नहीं पहुँच सकता है; उसी प्रकार अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना स्तुति, पूजा, सामायिक, महाव्रतादि करके मर भी जावे तो भी उससे मोक्षमार्ग कभी प्रगट नहीं होगा, परन्तु मोक्षमार्ग के बदले चारों गतियों की हवा खाता हुआ, निगोद पहुँच जावेगा। जैसे - एक के अङ्क बिना, बिन्दियों की कीमत नहीं होती; उसी प्रकार आत्मा के अनुभव हुए बिना, दिगम्बर धर्मियों के पूजा, स्तुति आदि सब अरण्यरुदन है; इसलिए आत्मा को समझे

बिना व्रतादि करनेवाले सब पागल ही हैं क्योंकि कुन्दकुन्दभगवान ने श्रीसमयसार, गाथा 153 में कहा है — व्रत और नियमों को धारणा करते हुए भी, तथा शील, तप करते हुए जो परमार्थ से बाह्य हैं, अर्थात् आत्म-अनुभव-ज्ञान से रहित हैं, वे निर्वाण को प्राप्त नहीं होते हैं।

प्रश्न 9- श्रीकुन्दकुन्दभगवान ने श्रीसमयसार, गाथा 31 में निश्चयस्तुति किसे कहा है ?

उत्तर - मूल गाथा में, इन्द्रियों को जीतकर ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक (जुदा) आत्मा को जानते हैं, (अनुभवते हैं) उन्हें जो निश्चयनय में स्थित साधु हैं, वे वास्तव में जितेन्द्रिय (निश्चयस्तुति) कहते हैं।

प्रश्न 10- अपनी आत्मा को अन्य द्रव्यों से अधिक (जुदा) जानता है, इस पर से कितने बोल निकलते हैं ?

उत्तर - चार बोल निकलते हैं - (1) जब अपनी आत्मा को द्रव्य कहा, तब अन्य सब, अद्रव्य हैं।

(2) जब अपनी आत्मा को जीव कहा, तब अन्य सब, अजीव हैं।

(3) जब अपनी आत्मा को अतीन्द्रिय कहा, तब अन्य सब, इन्द्रिय हैं।

(4) जब अपनी आत्मा को ज्ञायक कहा, तब अन्य सब ज्ञेय हैं, अर्थात् अपनी आत्मा को जब द्रव्य, जीव, अतीन्द्रिय और ज्ञायक कहा, तब उसकी अपेक्षा अन्य सब द्रव्य-अद्रव्य, अजीव, इन्द्रिय और ज्ञेय हैं।

प्रश्न 11- इन्द्रिय शब्द से भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने कितने बोल निकाले हैं ?

उत्तर – तीन बोल निकाले हैं – (1) द्रव्येन्द्रियाँ, (2) भावेन्द्रियाँ (खण्डखण्ड ज्ञान), (3) इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ (शास्त्र पढ़ना, दिव्यध्वनि सुनना, पूजा-पाठ आदि।)

प्रश्न 12– भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने द्रव्येन्द्रियों का जीतना किसे कहा है ?

उत्तर – (1) अन्तरङ्ग में; (2) प्रगट अति सूक्ष्म; (3) चैतन्य-स्वभावी निज भगवान आत्मा को; (4) बहिरङ्ग में; (5) प्रगट अति स्थूल; (6) जड़स्वभावी जड़इन्द्रियों से; (7) निर्मल; (8) भेदाभ्यास की; (9) प्रवीणता के द्वारा सर्वथा अलग किया, उसे द्रव्येन्द्रियों को जीतना कहा है। इस प्रकार नौ बोल आए हैं। जड़-इन्द्रियों से ज्ञायक को भिन्नरूप से अनुभव करना, द्रव्येन्द्रियों का जीतना है।

प्रश्न 13– अज्ञानी, द्रव्येन्द्रियों का जीतना किसे कहता है ?

उत्तर – आँख फोड़ लो, कान में डट्ठे ठोक लो, मुँह को बन्द कर लो, आदि को द्रव्येन्द्रियों को जीतना कहता है। यह सब जड़ की क्रिया है, इसे अपनी मानना, अनन्त संसार का कारण है।

प्रश्न 14– भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने 'भावेन्द्रियों' का जीतना किसे कहा है ?

उत्तर – कर्णभावेन्द्रिय, शब्द को जानती है; उसी प्रकार एक -एक इन्द्रिय अपने-अपने विषय द्वारा ज्ञान को खण्ड-खण्डरूप जानती है, वह भावेन्द्रिय = खण्ड-खण्ड ज्ञान, क्षायोपशमिकरूप है। भावेन्द्रियों के सामने अपना अखण्ड ज्ञायकस्वभाव है। पात्र जीव ऐसा जाने कि क्षायौपशमिक खण्ड-खण्डज्ञान जितना मेरा स्वभाव नहीं है परन्तु अखण्ड ज्ञान, मेरा स्वभाव है – ऐसा अनुभव-ज्ञान -आचरण करे तो यह भावेन्द्रियों को जीतना कहा है। अखण्ड

ज्ञायकस्वभाव द्वारा भावेन्द्रियों को सर्वथा अपने से भिन्न अनुभव करना, वह भावेन्द्रिय का जीतना है।

प्रश्न 15– राग-द्वेषवाले में और भगवान में क्या अन्तर है ?

उत्तर – (1) राग-द्वेषवाले की वाणी, खण्ड-खण्डरूप होती है; भगवान की वाणी, अखण्ड होती है।

(2) राग-द्वेषवाला क्रम से जानता है; भगवान युगपत् परिपूर्ण जानते हैं।

(3) राग-द्वेषवाला मन द्वारा विचारता है; भगवान का ज्ञान परिपूर्ण होने से उनको विचार नहीं करना पड़ता है।

(4) राग-द्वेषवाले का पैर आगे-पीछे पड़ता है; भगवान के डग नहीं भरते हैं।

(5) राग-द्वेषवाले को अल्प क्षायोपशमिकज्ञान है; भगवान के पूर्ण क्षायिकज्ञान है।

(6) राग-द्वेषवाले को क्षायोपशमिकज्ञान में पूर्ण ज्ञेय नहीं आता है; भगवान को सम्पूर्ण लोकालोक ज्ञेय हैं।

(7) राग-द्वेषवाले की आँखें निमेष (पलक) मारती है; भगवान की आँखें निमेष (पलक) नहीं मारती हैं।

प्रश्न 16– 'भावेन्द्रियों का जीतना' कौन से गुणस्थान से शुरु हो जाता है ?

उत्तर – चौथे गुणस्थान में अपना ज्ञायक अखण्डस्वभाव अनुभव में आ जाता है, तब से खण्ड-खण्ड क्षायोपशमिकज्ञान समाप्त हो जाता है क्योंकि अखण्डस्वभाव पर दृष्टि आने से उसके ज्ञान को भी अखण्ड कहा जाता है।

प्रश्न 17– भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने 'इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों का जीतना' किसे कहा है' ?

उत्तर - भगवान की वाणी, शास्त्रादि भावेन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने में आवें, वे इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ हैं, वे सङ्गरूप हैं और भगवान आत्मा असङ्गस्वभावी है। पात्र जीव ऐसा जाने कि इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ तो सङ्गरूप हैं, परन्तु मेरा असङ्गस्वभाव एकरूप है - ऐसा जानकर, असङ्गस्वभाव का आश्रय-ज्ञान-आचरण वर्ते, उसे इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों का जीतना कहा है।

प्रश्न 18- इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों का ग्राह्य-ग्राहक के ज्ञान का असङ्गपना कब कहा जा सकता है ?

उत्तर - (1) जो कोई इन्द्रियों के विषय हैं तथा रागादि हैं, वे सब जानने योग्य पर ज्ञेय हैं। वे (परज्ञेय) ग्राह्य हैं और इन सबको जाननेवाली ज्ञानपर्याय, वह ग्राहक है। वास्तव में परज्ञेय और ज्ञान की पर्याय सर्वथा भिन्न हैं परन्तु जहाँ तक ग्राहक - ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, परज्ञेयों को ग्राह्य बनाती है, वहाँ तक अज्ञानी को दोनों का (परज्ञेय और ज्ञानपर्याय का) एकपना अनुभव में आता है।

(2) जब ग्राहक ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, परज्ञेयों की तरफ से हटकर स्वज्ञेय ऐसा जो निज चैतन्यतत्त्व, उसे ग्राह्य बनाती है, तब अपनी चैतन्यशक्ति का असङ्गपना अनुभव में आता है। यह ही इन्द्रियों के विषयों का जीतना है; इसलिए ज्ञान की पर्याय जो ग्राहक है, वह (ज्ञान की पर्याय, ग्राहक) अपने पारिणामिकभाव को ग्राह्य बनाती हैं, तब सच्चा ग्राहक-ग्राह्यपने का असङ्गपना दृष्टि में आता है।

प्रश्न 19- ज्ञान का स्वभाव कैसा है ?

उत्तर - ज्ञान, समस्त पदार्थों को जानने पर भी उसरूप नहीं होता है और उन सब पदार्थों से भिन्न ही रहता है। समस्त विश्व को जानने पर भी, उनसे अलिप्त रहता हुआ, विश्व के ऊपर तैरते हुआ रहना, यह ज्ञान का स्वभाव है।

प्रश्न 20– द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ, इन तीनों में से प्रथम किसे जीतना चाहिए ?

उत्तर – अन्तरङ्ग में प्रगट अति सूक्ष्म चैतन्यस्वभावी, अखण्ड, असङ्ग आत्मा का आश्रय लेते ही तीनों एक साथ जीते जाते हैं, कथन करने में क्रम पड़ता है। अरे भाई! एक बार अपने स्वभाव का आश्रय ले तो सब झगड़ा समाप्त जावेगा और अपने भगवान का पता चल जावेगा। अपने आपका अनुभव हुए बिना, तीन काल–तीन लोक में 'इनको जीतने' का उपचार भी नहीं आ सकता है।

प्रश्न 21– स्तुति कितने प्रकार की है ?

उत्तर – स्तुति तो एक ही प्रकार की है परन्तु उसका कथन पाँच प्रकार से है। जिस जीव ने अपने शक्तिरूप चैतन्यस्वभाव जो 'शक्तिरूप स्तुति' हैं, उसका आश्रय लिया तो एकदेश भावस्तुति जो संवर –निर्जरारूप है, उसकी प्राप्ति होती है। पूर्णभाव स्तुति की प्राप्ति न होने से, भूमिका के अनुसार जो अस्थिरता का राग है, वह द्रव्यस्तुति है और द्रव्यस्तुति का जड़स्तुति के साथ निमित्त–नैमित्तिकसम्बन्ध है।

प्रश्न 22– तीर्थङ्कर की निश्चयस्तुति में (1) सात तत्त्व / नौ पदार्थ; (2) चार काल; (3) औपशमिकादिक पाँच भाव; (4) देव–गुरु–धर्म; (5) हेय–उपादेय–ज्ञेय; (6) सुखदायक–दुःखदायक; (7) संयोगादि पाँच बोल लगाकर बताओ, जिसस स्पष्टरूप से समझ में आवे ?

उत्तर – शक्तिरूपस्तुति – (1) जीव तत्त्व / पदार्थ; (2) अनादि –अनन्त काल; (3) परमपारिणामिकभाव; (4) धर्मस्वरूप शुद्धात्मा; (5) आश्रययोग्य परम उपादेय; (6) परम सुखदायक, एवं (7) स्वभाव त्रिकाली है।

एकदेशभाव स्तुति – (1) संवर–निर्जरातत्त्व / पदार्थ;

(2) सादि-सान्त काल; (3) औपशमिक, धर्म का क्षयोपशमिक एवं सम्यग्दर्शन की अपेक्षा क्षायिकभाव; (4) गुरु; (5) प्रगट करनेयोग्य एकदेश उपादेय; (6) सुखदायक, एवं (7) स्वभाव का साधन है।

द्रव्यस्तुति - (1) आस्रवबन्ध, पुण्य-पापतत्त्व / पदार्थ; (2) अनादि-सान्त काल; (3) औदयिकभाव; (4) देव-गुरु-धर्म में से कोई नहीं; (5) हेय; (6) दुःखदायक, एवं (7) संयोगीभाव है।

जड़स्तुति - (1) अजीवतत्त्व / पदार्थ; (2) अनादि-अनन्त काल; (3) औपशमिक आदि पाँच भावों में से कोई भाव नहीं; (4) देव-गुरु-धर्म में से कोई नहीं; (5) ज्ञेय; (6) न सुखदायक, न दुःखदायक, और (7) संयोग है।

पूर्ण भावस्तुति - (1) मोक्षतत्त्व / पदार्थ; (2) सादि-सान्त काल; (3) क्षायिकभाव; (4) देव; (5) पूर्ण प्रगट करनेयोग्य उपादेय; (6) पूर्ण सुखदायक, और (7) सिद्धत्व है।

प्रश्न 23- क्या अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना, स्तुति हो सकती है?

उत्तर - कभी नहीं हो सकती हैं। जैसे - जिसे हीरे-जवाहरात की पहिचान हो और लेना देना जानता हो, वही हीरे-जवाहरात की दुकान पर बैठ सकता है; उसी प्रकार जिनको अपनी आत्मा का अनुभव-ज्ञान-आचरण वर्तता हो, वही भगवान की स्तुति कर सकता है; अज्ञानी मिथ्यादृष्टि, स्तुति नहीं कर सकता है।

प्रश्न 24- जो जीव, सांसारिक प्रयोजन के लिए भक्ति-पूजादि करते हैं - क्या वह कुछ कार्यकारी है?

उत्तर - (1) भक्ति-पूजादि, संसारभ्रमण के लिए कार्यकारी

है। आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है कि 'जो जीव, कपटकरि अजीविका के अर्थि वा बड़ाई के अर्थि वा किछु विषय-कषाय सम्बन्धी प्रयोजन विचारि जैनी होते हैं, वे तो पापी ही हैं। अति तीव्र कषाय भये ऐसी बुद्धि आवै है। उनका सुलझना भी कठिन है क्योंकि जैनधर्म, संसार का नाश के अर्थि सेइए है ताकर जो सांसारिक प्रयोजन साध्या चाहैं, सो बड़ा अन्याय करै है। तातै ते तो मिथ्यादृष्टि हैं ही। इसलिए सांसारिक प्रयोजन लिए जो धर्म साधै हैं, ते पापी भी हैं और मिथ्यादृष्टि तो हैं ही।'

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 219]

प्रश्न 25- भक्ति आदि शुभभावों के विषय में मोक्षमार्ग - प्रकाशक में क्या-क्या बताया है?

उत्तर - (1) जो जीव, प्रथम से ही सांसारिक प्रयोजनसहित भक्ति करता है, उसके तो पाप का ही आभिप्राय हुआ।

....परन्तु भक्ति तो रागरूप है और राग से बन्ध है; इसलिए मोक्ष का कारण नहीं है।

यथार्थता की अपेक्षा तो ज्ञानी के सच्ची भक्ति है; अज्ञानी के नहीं है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 222]*

(2) सांसारिक प्रयोजन के हेतु अरहन्तादिक की भक्ति करने से तो तीव्रकषाय होने के कारण, पापबन्ध ही होता है।

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 8]

(3) कितने ही पुरुषों ने पुत्रादिक की प्राप्ति के लिये अथवा रोग-कष्टादि दूर करने के लिये चैत्याल्य, पूजनादि कार्य किये, स्तोत्रादि किये, नमस्कारमन्त्र का स्मरण किया, परन्तु ऐसा करने से तो नि:काँक्षित गुण का अभाव होता है; निदानबन्ध नामक आर्त्तध्यान होता है, पाप का ही प्रयोजन अन्तरङ्ग में हैं; इसलिए पाप का ही बन्ध होता है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 274]*

(4) ....बाह्य में अणुव्रत-महाव्रतादि साधते है परन्तु अन्तरङ्ग परिणाम नहीं हैं और स्वार्गादिक की बाँछा से साधते हैं, सो इस प्रकार साधने से तो पापबन्ध होता है; इसलिए पात्र जीवों को सांसारिक प्रयोजन का अर्थी होना योग्य नहीं है।

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 242]

प्रश्न 26- भावस्तुति, द्रव्यस्तुति और जड़स्तुति क्या है?

उत्तर - (1)भावस्तुति, निर्विकल्पदशा है; (2) द्रव्यस्तुति, पुण्यबन्ध का कारण है; और जड़स्तुति, पुण्य-पाप या धर्म का कारण नहीं है; मात्र ज्ञान का ज्ञेय है।

————

8

मुनिराज का स्वरूप

प्रश्न 1– जिनागम में मुनिराज का स्वरूप क्या बताया है ?

उत्तर – श्रीनियमसार में कहा है कि –

निर्गन्थ हैं, निर्मोह है, व्यापार से प्रविमुक्त हैं।
हैं साधु, चउ आराधना में, जो सदा अनुरक्त हैं ॥75॥

अर्थात्, समस्त व्यापार से रहित, ज्ञान–दर्शन–चारित्र–तपरूप चार आरधाना में सदा रक्त, निर्ग्रन्थ और निर्मोह ऐसे साधु होते हैं।

श्रीरत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा है कि –

विषयाशावशाातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञान ध्यान तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥10॥

अर्थात्, पाँच इन्द्रियों के विषयों की आशा से रहित, आरम्भ –परिग्रहरहित, ज्ञान–ध्यान–तप में लीन, वह साधु प्रशंसायोग्य है।

इसी ग्रन्थ के 111 वें श्लोक में लिखा है कैसे हैं दिगम्बर यति ? समयग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र इत्यादि गुणनिका निधान हैं। और कैसे हैं ? नहीं हैं अन्तरङ्ग–बहिरङ्ग परिग्रह जिनके। ऐसे मठ–मकान –उपासरा–आश्रमादि रहित, एकाकी अथवा गुरुजनों की चरणों के साथ कभी वन में, कभी पर्वत की निर्जन गुफा में, कभी घोर वन में, कभी नदी किनारे में नियमरहित है नित्य बिहार जिनका, असंयमी गृहस्थों के संगमरहित, आत्मा की विशुद्धता जो परमवीतराग का साधन करता हुआ और लौकिकजनकृत पूजा–स्तवन–प्रशंसादि को

नहीं चाहता, परलोक में देवलोकादिक के भोगों को तथा इन्द्र, अहमिन्द्र ऐश्वर्य को रागरूप अंगारे तप्त, महान आताप उपजावनेवाली तृष्णा के बाँधनेवाले जानकर, परम अतीन्द्रिय आकुलतारहित आत्मिकसुख को सुख जानकर, देहादिक में ममत्वरहित आत्मकार्य साधे हैं।

प्रश्न 2- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने सामान्यरूप से साधु का स्वरूप क्या बताया है ?

उत्तर - जो विरागी होकर, समस्त परिग्रह का त्याग करके, शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अङ्गीकार करके, अन्तरङ्ग में तो शुद्धोपयोग के द्वारा अपने को आपरूप अनुभव करते हैं; अपने उपयोग को बहुत नहीं भ्रमाते हैं। जिनके कदाचित् मन्दराग के उदय में शुभोपयोग भी होता है, परन्तु उसे भी हेय मानते हैं। तीव्र कषाय का अभाव होने से अशुभोगयोग का तो अस्तित्व ही नहीं रहता, ऐसे मुनिराज ही सच्चे साधु हैं। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 3]*

प्रश्न 3- मुनिराज किसके भोक्ता होते हैं ?

उत्तर - मुनिराज अतीन्द्रिय आनन्द के ही भोक्ता होते हैं।

प्रश्न 4- मुनि, नग्न ही क्यों होना चाहिए ?

उत्तर - अनादि काल से आज तक कोई भी संसारी जीव, स्पर्शनइन्द्रिय के बिना नहीं रहा। विचारिये, एक तरफ स्पर्शनइन्द्रिय है, दूसरी तरफ अतीन्द्रिय आत्मा है। स्पर्शनइन्द्रिय को जीते बिना, अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती; अत: स्पर्शनइन्द्रिय को जीतना चाहिए। इसको जीते बिना, मुनि नहीं हो सकता; इसलिए मुनि नग्न ही होना चाहिए।

प्रश्न 5- अखण्ड आत्मा की प्राप्तिवाले मुनि को नग्न क्यों होना चाहिए ?

उत्तर - रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण, ये चार इन्द्रियाँ, खण्ड-

खण्डरूप हैं। देखो! सुनना हो तो कान से होता है; देखना हो तो आँख से होता है; सूँघना हो तो नाक से होता है; और चखना हो तो रसना से होता है; इसलिए ये चार इन्द्रियाँ खण्ड-खण्डरूप हैं और स्पर्शनइन्द्रिय सम्पूर्ण शरीर में अखण्ड है; अत: अखण्ड स्पर्शनइन्द्रिय को जीते बिना, अखण्ड आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती; इसलिए अखण्ड आत्मा की प्राप्ति करनेवाले मुनि नग्न ही होते हैं।

प्रश्न 6- लोक में ऐसा क्यों कहा जाता है कि रसनाइन्द्रिय को जीतना कठिन है, जब तक लोकोत्तरमार्ग में कहा जाता है कि स्पर्शनइन्द्रिय को जीतना मुश्किल है - ऐसा क्यों ?

उत्तर - कान दो, काम एक सुनना होता है; आँख, दो काम एक देखना होता है; नाक के छेद दो, काम एक सूँघना होता है; जीभ एक, काम दो होते हैं, एक बोलना दूसरा चखना। इस प्रकार कर्ण, चक्षु, और घ्राण दो-दो हैं और काम एक-एक है, किन्तु रसना एक, काम दो है; इस प्रकार जीभ का चार गुना काम हुआ; इसलिए लौकिक में कहा जाता है कि जीभ को जीतना मुश्किल है।

नग्न शरीरवाले को विकार होने पर सबको पता चल जाता है; इसलिए विकार को जीतनेवाला मुनि, नग्न ही होना चाहिए; इसीलिए लोकोत्तरमार्ग में स्पर्शनइन्द्रिय को जीतना कठिन कहा गया है।

प्रश्न 7- जीभ हमें क्या शिक्षा देती है ?

उत्तर - जीभ अन्दर अन्धेरी गुफा में पड़ी, इसके ऊपर बत्तीस पैने दाँत पुलिस जैसे खड़े हैं, ऊपर दो होंठ किवाड़ सरीखे हैं - जीभ ऐसी प्रतिकूल अवस्था में पड़ी है तो भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती और चखनेयोग्य पदार्थ, कटु हों या स्वादिष्ट हों तो भी वह उसका स्वाद ले लेती है। उसी प्रकार हे आत्मा! तुझे भी जीभ की तरह, अपने ज्ञाता-दृष्टास्वभाव को प्रतिकूल या अनुकूल संयोग

मिलने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए, जीभ से पात्र जीव को यह शिक्षा मिलती है।

प्रश्न 8- विशेषरूप से बन्ध का निमित्तकारण कौन है ?

उत्तर - पुद्‌गल में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, ये चार विशेषगुण हैं। इनमें से रस की पाँच पर्यायें, गन्ध की दो पर्यायें, वर्ण की पाँच पर्यायें और स्पर्श की आठ पर्यायें हैं। इन आठ में से स्निग्ध और रुक्ष को छोड़कर, बाकी छह पर्यायों के कारण तो स्कन्धरूप बन्ध होता ही नहीं; मात्र स्निग्ध और रुक्षपर्याय के कारण परमाणुओं में परस्पर बन्ध होता है; उसी प्रकार आठ कर्मों में से चार अघातिकर्म तो बन्ध के कारण नहीं है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय का जितना उघाड़ है, वह भी बन्ध का कारण नहीं है; मात्र मोहनीयकर्म ही बन्ध का निमित्तकारण है और मोहनीयकर्म में भी विशेषरूप से दर्शनमोहनीयकर्म, बन्ध का मुख्य निमित्तकारण है।

प्रश्न 9- मात्र मोहनीयकर्म, बन्ध का निमित्तकारण है - इसमें आप क्या बताना चाहते हैं ?

उत्तर - जैसे, परमाणुओं में स्निग्ध-रुक्ष के कारण बन्ध होता है; उसी प्रकार आत्मा में भी राग-द्वेष ही बन्ध का कारण है। राग-द्वेष को जीतना तभी बनेगा, जबकि स्पर्शनइन्द्रिय को जीता जावे। इसलिए मुनि नग्न ही होना चाहिए।

प्रश्न 10- दीपक क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर - जैसे, जब तक दीपक में तेल रहता है, तब तक वह जलता रहता है; उसी प्रकार जब तक जीव से मोह रहेगा, तब तक वह कोल्हू के बैल की तरह चारों गतियों में जन्म-मरण के दुःख उठाता रहेगा; अतः मुनि, राग-द्वेष-मोहरहित होते हैं; इसलिए मुनि नग्न ही होना चाहिए।

प्रश्न 11- जीभ हमें और क्या शिक्षा देती है ?

उत्तर - जैसे, हाथ पर चिकनाहट लग जावे तो हम हाथों को साबुन-पानी से धोते हैं तथा जीभ कितने ही चिकने पदार्थ खावे, उस को साबुन और पानी की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जीव का स्वभाव लूखा है। जीभ अपने लूखे स्वभाव के कारण चिकनाई को तोड़े बिना नहीं रहती है; उसी प्रकार जो जीव अपने त्रिकाली ज्ञायक भगवान का आश्रय लेता है, उसको राग-द्वेष उत्पन्न ही नहीं होता। तब व्यवहार से कहा जाता है कि इसने राग-द्वेष को छोड़ा है। मुनि को अपना आश्रय ही वर्तता है; इसलिए वीतरागी मुनि नग्न ही होते हैं।

प्रश्न 12- क्या मुनि को नग्न देखने से विकार उत्पन्न होता है ?

उत्तर - बिल्कुल नहीं। जैसे, छोटा बच्चा है, नग्न है। यदि वह राजमहल में चला जावे, तो रानियाँ उसे प्यार करती है और बच्चे में नग्न देखने में किसी को भी विकार उत्पन्न नहीं होता। यदि जवान विषयासक्त पुरुष महल में चला जावे, तो उसका सिर काट दिया जाता है; उसी प्रकार मुनि को स्वयं को विकार उत्पन्न नहीं होता; इतना ही नहीं, बल्कि वीतरागी मुनि को देखकर किसी को भी विकार उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि मुनि की नग्नता निर्दोषता का सूचक है; इसलिए वीतरागी मुनि नग्न ही होते हैं।

प्रश्न 13- वीतरागी साधु को भूमिकानुसार कैसा-कैसा राग, हेयबुद्धि होता है, स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर - साधु को अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान सम्बन्धी क्रोधादि के अभावरूप शुद्धि तो निरन्तर वर्तती है; जो शुद्धि है, वह वीतरागरूप है, उसे सकलचारित्र कहते हैं। छठवें गुणस्थान में आने पर हेयबुद्धि से अट्ठाईस मूलगुणों का पालन, बाईस परीषहों का

सहन, बारह प्रकार के तप, कदाचित अध्ययनादिक बाह्य धर्मक्रियाओं में प्रवर्तते हैं, कदाचित आहार-विहारादि क्रियाएँ होती हैं। उनकी दृष्टि तो एकमात्र अपने त्रिकाली भगवान पर होती हैं; अप्रमत्तदशा और प्रमत्तदशा पर भी उनकी दृष्टि नहीं है। वन खण्डादि में वास करते हैं; उद्दिष्ट आहारादिक का ग्रहण उनके नहीं होता है। मुनिपद है, वह यथाजातरूप सदृश है। जैसा, जन्म होते हुए था, वैसा नग्न है। पीछी-कमण्डल के अलावा उनके पास तिलतुषमात्र भी परिग्रह नहीं होता। ऐसे जैनमुनि को तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप शुद्धि के साथ राग, हेयबुद्धि से होता है, वे उसे करते नहीं हैं।

प्रश्न 14- क्या भावलिङ्गी मुनि को छठवें गुणस्थान में उद्दिष्ट आहारादि का विकल्प भी नहीं आता? - यह बात दृष्टान्तपूर्वक समझाईए।

उत्तर - (1) रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता ने जङ्गल में अपने हाथ से बने मिट्टी के बर्तनों में आहार बनाया। दूसरी तरफ मुनि आहार के निमित्त नियम लेकर चलते हैं कि राजकुमार हों; जङ्गल में हों; अपने हाथ से मिट्टी के बर्तन बनाए हों और स्वयं आहार बनाया हो तो हम आहार लेंगे। आहार बनाने के बाद रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता आहार के निमित्त विचारते हैं। आकाशमार्ग से मुनि को आते देखकर हे स्वामी! तिष्ठो-तिष्ठो! हमने मिट्टी के बर्तनों में स्वयं आहार बनाया है। देखो! ऐसा सहज ही स्वतः निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध होता है।

(2) एक मुनि दो महीनों के उपवास के बाद आहार के निमित्त नियम लेकर निकले कि केले का साग हो, इसमें नमक, मिर्चादि न हो तो हम आहार लें। दूसरी तरफ एक गरीब श्राविका एक बाग में गयी, वहाँ के माली ने कहा अम्मा! ले, यह केले का गुच्छा है। श्राविका ने घर पर आकर केले का साग बनाया। बनने के बाद

सामने से मुनिराज आते देखे, तो पड़गाने को खड़ी हो गयी। हे स्वामी! तिष्ठो-तिष्ठो! मैंने केले का साग बनाया है, न नमक है, न मिर्च है देखो, आहार हो गया। श्रावक अपने निमित्त शुद्ध आहार बनावे, तब मुनियों के आने का योग हो तो सहजरूप से स्वयं स्वत: निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध बन जाता है; बनाना नहीं पड़ता है।

मुनि, आहार के निमित्त पधारे और उन्हें यह संशय हो जावे कि इस श्रावक ने हमारे लिए आहार बनाया है तो वह आहार नहीं लेंगे, वापस चले जावेंगे क्योंकि मुनि के उद्दिष्ट आहार का त्याग है। यदि उद्दिष्ट आहार लेने का विकल्प आ जावे तो वह मुनि ही नहीं है।

प्रश्न 15- भावलिङ्गी मुनि को कैसा भाव आ जावे तो मुनिपना नहीं रहेगा?

उत्तर - (1) भावलिङ्गी मुनि को अष्ट द्रव्य से पूजन का भाव आ जावे तो मुनिपना नहीं रहेगा।

(2) एक मुनि रास्ते में जा रहे थे। रास्ते में प्यास से मरते हुए आदमी को देखा। देखकर मुनि ने विचारा 'मैं इसको पानी दे देता, तो यह बच जाता, लेकिन भगवान की आज्ञा नहीं है' - ऐसा भाव मुनि को आने पर जिनवाणी में आया है कि वह मुनि नहीं है, गुलाममार्गी है क्योंकि मुनि स्वयं इस प्रकार पानी लेते नहीं, तब देने का विचार भी भावलिङ्गी मुनि को नहीं आता है, लेकिन श्रावक को पानी देने का भाव न आवे तो वह श्रावक नहीं है।

(3) दो मुनि हैं, एक ध्यान में बैठे हैं, दूसरे आहार के निमित्त जा रहे हैं। सामने से एक भयंकर सिंह ध्यानस्थ मुनि पर हमला करता है। आहार के निमित्त जानेवाले मुनि में इतनी ताकत है कि उस सिंह का कान पकड़ कर बैठा दें, तो भी भावलिङ्गी मुनि को उन्हें बचाने का भाव नहीं आवेगा। यदि बचाने का भाव आ जावे तो मुनिपना नष्ट हो जावेगा।

(4) मुनि के पास पीछी-कमण्डल के अलावा कुछ नहीं होता है। शास्त्र भी किसी श्रावक ने दिया तो पढ़कर वहीं छोड़ देते हैं। मुनि को किसी ने शास्त्र दिया, वह शास्त्र, मुनि ने पढ़ा भी नहीं है; – ऐसे समय में कोई श्रावक उनसे माँगे तो भावलिङ्गी मुनि तुरन्त दे देंगे। यदि मना कर दें या देने का भाव न आवे तो मुनिपना नष्ट हो जावेगा।

(5) पीछी-कमण्डल के अलावा तिलतुषमात्र भी परिग्रह, मुनि नहीं रखते हैं; यदि रखें तो निगोद जाता है।

प्रश्न 16– श्रीब्रह्मविलास, पृष्ठ 278 में ऐसा क्या कहा है कि – 'भरतक्षेत्र पञ्चम समय, साधु परिग्रह वंत, कोटि सात अरू अर्ध सब, नरकहिं जाय परन्त'॥28॥

उत्तर – मुनि नाम रखाकर ग्रन्थमाला चलावे; मन्दिर बनवाने का तथा मन्दिरों को प्रतिष्ठा कराने का कार्य; चेला-चेलियों से अपने को बड़ा माने; हीटर लगावे; घड़ी, चश्मा आदि अपने पास रक्खे; शहरों में रहे; श्रावकों को बैल की तरह हाँके; दातार की स्तुति करके दानादि ग्रहण करे; वस्त्रों में आसक्त हो; परिग्रह ग्रहण करनेवाला हो; याचनासहित हो; अध:कर्म दोषों में रत हो; यन्त्र-मन्त्र तन्त्रादि करते हों; गृहस्थों के बालकों को प्रसन्न करना, समाचार कहना, मन्त्र -औषधि ज्योतिषादि कार्य बतलाना तथा किया-कराया-अनुमोदित भोजन लेना आदि कार्यों में रत रहते हों तथा शुभभावों से मोक्षमार्ग और मोक्ष होता है; निमित्त से उपादान में कार्य होता है; व्यवहार के कथन को सच्चा कथन मानने और अनुमोदना करनेवाले हों – ऐसे भरतक्षेत्र से पञ्चम काल में साढ़े सात करोड़ मुनि, नरक जावेंगे – ऐसा ब्रह्मविलास का तात्पर्य है क्योंकि शास्त्रों में कृत-कारित -अनुमोदना का एक सा फल कहा है।

प्रश्न 17– जैसा ब्रह्म विलास में कहा है – ऐसा क्या कहीं और आचार्यों ने भी कहा है?

**उत्तर – 'धरये पञ्चमकाला, जिनवर लिङ्ग धार सव्वेसि।
साढ़े सात करोड़म्, जाइये निगोद मज्झमी।'**

मारोठ से प्रकाशित शुद्ध श्रावकधर्मप्रकाश, पृष्ठ 358 में यह श्लोक संकलित है।

प्रश्न 18– क्या आजकल सच्चे मुनि-क्षुल्लक देखने में नहीं आते हैं?

उत्तर – हाँ भाई! पञ्चम काल में अभी भावलिङ्गी मुनिश्वर –अर्जिका, क्षुल्लक का समागम देखने में नहीं आता है।

प्रश्न 19– पञ्चम काल में अभी भावलिङ्गी मुनि आदि का समागम देखने में नहीं आता है – ऐसा कहाँ लिखा है?

उत्तर – श्रीरत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक 117 के अर्थ में लिखा है कि 'और इस पञ्चम काल में वीतरागी भावलिङ्गी साधु ही कोई विरला देशान्तर में तिष्ठै है, तिनका पावना होय नाहीं। पात्र का लाभ होना चतुर्थ काल में ही बड़े भाग्य ते होय था। परन्तु इस क्षेत्र में पात्र तो बहुत थे। अब इस दु:खम काल में यथावत धर्म के धारक पात्र कही नहीं देखने में आवें। धर्मरहित अज्ञानी लोभी बहुत विचरै हैं, सो अपात्र हैं। इस काल में धर्म पाय करिकै गृहस्थ जिनधर्म के धारक श्रद्धानी कोई कहीं-कहीं पाइए हैं। जे वीतराग धर्म कूँ श्रवण करि, कुधर्म की आराधना दूर ही तै त्याग करि, नित्य ही अहिंसा धर्म के धरनेवाले, जिन वचनामृत पान करनेवाले, शीलवान सन्तोषी तपस्वी ही पात्र हैं। अन्य भेषधारी बहुत विचरै हैं, जिनमें मुनि –श्रावकधर्म का, सत्य सम्यग्दर्शनादिक का ज्ञान ही नाहीं, ते कैसे पात्रपना पावै? मिथ्यादर्शन के भावकरि आत्मज्ञानरहित लोभी भये,

जगत में धनादिकनि का, मिष्ट आहारदान का इच्छुक भये, बहुत विचरै हैं, ते अपात्र हैं। तातैं पात्रदान होना अति दुर्लभ है। यहाँ ऐसा विशेष जानना, जो कलिकाल में भावलिङ्गी मुनीश्वर तथा अर्जिका, क्षुल्लक का समागम तो है ही नाहीं।'

प्रश्न 20- पीछी-कमण्डल के अलावा तिलतुषमात्र भी परिग्रह रखे तो वह निगोद जाता है - ऐसा कहीं आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है?

उत्तर - श्रीसूत्रपाहुड, श्लोक 18 में कहा है कि -

जय जाय रूव सरियो तिलतुसमित्तणं गहदि अत्थेसु।
जह लेह अप्प-बहुयं, तोत्तो पुण जाइ णिग्गोयं॥17॥

अर्थात्, मुनिपद है, वह यथाजातरूप सदृश है; जैसा जन्म होते हुए था, वैसा नग्न है। सो वह मुनि, अर्थ यानि धन-वस्त्रादिक वस्तुओं में तिल के तुषमात्र भी ग्रहण नहीं करता। यदि कदाचित् अल्प व बहुत वस्तु ग्रहण करे तो उससे निगोद जाता है।

प्रश्न 21- श्रीसूत्रपाहुड़, गाथा 18 का भावार्थ क्या है?

उत्तर - गृहस्थपने में बहुत परिग्रह रखकर कुछ प्रमाण करे, तो भी स्वर्ग-मोक्ष का अधिकारी होता है और मुनिपने से किञ्चित् परिग्रह अङ्गीकार करने पर भी निगोदगामी होता है; इसलिए ऊँचा नाम रखाकर नीची प्रवृत्ति युक्त नहीं है। देखो, हुण्डावसर्पिणीकाल में यह कलिकाल चल रहा है। इसके दोष से जिनमत में मुनि का स्वरूप तो ऐसा है, जहाँ बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का लगाव नहीं है; केवल अपने आत्मा का आपरूप अनुभव करते हुए, शुभाशुभभावों से उदासीन रहते हैं और अब विषय-कषायसक्त जीव, मुनिपद धारण करते हैं; वहाँ सर्व सावद्य के त्यागी होकर पञ्च महाव्रतादिक अङ्गीकार करते हैं; भोजनादि में लोलुपी रहते हैं; अपनी पद्धति

बढ़ाने के उद्यमी होते हैं व कितने ही धनादि भी रखते हैं, हिंसादिक करते हैं व नाना आरम्भ करते हैं परन्तु अल्प परिग्रह रखने का फल निगोद कहा हैं, तब ऐसे पापों का फल तो अनन्त संसार होगा ही होगा। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 179]*

प्रश्न 22– जो मुनि ऐसा करते हैं, क्या उन्हें मुनि नहीं मानना चाहिए ?

उत्तर – लोगों की अज्ञानता देखो, कोई एक छोटी सी प्रतिज्ञा भङ्ग करे, उसे तो पापी कहते हैं और बड़ी प्रतिज्ञा भङ्ग करते देखकर भी उन्हें गुरु मानते हैं, उनका मुनिवत्, सम्मानादि करते हैं। सो शास्त्र में कृत–कारित–अनुमोदना का एक फल कहा है; इसलिए वे सब निगोद के पात्र हैं। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 179]*

प्रश्न 23– मुनिपद लेने का क्रम क्या है ?

उत्तर – पहले तत्त्वज्ञान हो, पश्चात् उदासीन (शुद्ध) परिणाम होते हैं, परीषहादि सहने की शक्ति होती है, तब वह स्वयमेव मुनि होना चाहता है और तब श्रीगुरु मुनिधर्म अङ्गीकार कराते हैं।
[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 179]

प्रश्न 24– वर्तमान में कैसी विपरीतता है ?

उत्तर – तत्त्वज्ञानरहित विषय–कषायसक्त जीवों को माया से व लोभ दिखाकर मुनिपद देना, अन्यथा प्रवृत्ति कराना, सो बड़ा अन्याय है। सो हाय हाय! यह जगत, राजा से रहित है, कोई अन्य पूछनेवाला नहीं है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 179 तथा 181]*

प्रश्न 25– जैन शास्त्रों में वर्तमान में केवली का तो अभाव कहा है, मुनि का तो अभाव नहीं कहा है ?

उत्तर – ऐसा तो कहा नहीं है कि इन देशों में सद्भाव रहेगा परन्तु भरतक्षेत्र में कहते हैं, सो भरतक्षेत्र तो बहुत बड़ा है; कहीं

सद्भाव होगा; इसलिए अभाव नहीं कहा है। यदि जहाँ तुम रहते हो, उसी क्षेत्र में सद्भाव मानोगे; तो जहाँ ऐसे भी गुरु नहीं मिलेंगे, वहाँ जावोगे, तब किसको गुरु मानोगे? जिस प्रकार हंसों का सद्भाव वर्तमान में कहा है, परन्तु हंस दिखायी नहीं देते तो और पक्षियों को हंस नहीं माना जाता है; उसी प्रकार वर्तमान में मुनियों का सद्भाव कहा है परन्तु मुनि दिखायी नहीं देते, तो औरों को तो मुनि माना नहीं जा सकता। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 184 से]*

प्रश्न 26– अब श्रावक भी तो जैसे सम्भव है, वैसे नहीं हैं; इसलिए जैसे श्रावक, वैसे मुनि?

उत्तर – श्रावक संज्ञा तो शास्त्र में सर्व गृहस्थ जैनियों को है। श्रेणिक भी असंयमी था, उसे उत्तरपुराण में श्रावकोत्सव कहा है। बारह सभाओं में श्रावक कहे, वहाँ सर्व व्रतधारी नहीं थे। यदि सर्व व्रतधारी होते तो असंयत मनुष्यों की अलग संख्या कही जाती, सो कही नहीं है; इसलिए गृहस्थ जैन, श्रावक नाम प्राप्त करता है और मुनि संज्ञा तो निर्ग्रन्थ के सिवाय कहीं नहीं कही है। श्रावक के आठ मूलगुण कहे हैं; इसलिए मद्य, माँस, मधु, पाँच उदम्बरादि फलों का भक्षण श्रावकों के नहीं; इसलिए किसी प्रकार से श्रावकपना तो सम्भावित भी है परन्तु मुनि के अट्ठाईस मूलगुण हैं, सो वेषियों के दिखायी ही नहीं देते है; इसलिए मुनिपना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। *[श्रीमोक्षमार्गप्राकशक, पृष्ठ 186]*

प्रश्न 27– जिनलिङ्गी होकर अन्यथा प्रवर्ते तो क्या होगा?

उत्तर – अदिनाथजी के साथ चार हजार राजा, दीक्षा लेकर पुनः भ्रष्ट हुए, तब उनसे देव कहने लगे — 'जिनलिङ्गी होकर अन्यथा प्रवतोगे तो हम दण्ड देंगे। जिनलिङ्ग छोड़कर जो तुम्हारी इच्छा हो, सो तुम जानो', इसलिए जिनलिङ्गी कहलाकर अन्यथा प्रवर्ते तो वे

दण्डयोग्य हैं; वन्दनादि योग्य कैसे होंगे ? अब, अधिक क्या कहें, जिनमत में कुवेष धारण करते हैं, वे महापाप करते हैं; अन्य जीव जो उनकी सेवा-सुश्रुषा आदि करते हैं, वे भी पापी होते हैं, क्योंकि पद्मपुराण में लिखा है कि 'श्रेष्ठी धर्मात्मा ने चारण मुनियों को भ्रम से भ्रष्ट जानकर आहार नहीं दिया; अब जो प्रत्यक्ष भ्रष्ट हैं, उन्हें दानादि देना कैसे सम्भव है ? अर्थात्, कभी भी नहीं।'

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 186]

प्रश्न 28– हमारे अन्तरङ्ग में श्रद्धान तो सत्य है परन्तु बाह्य लज्जादि से शिष्टाचार करते हैं, सो फल तो अन्तरङ्ग का होगा ?

उत्तर – श्रीदर्शनपाहुड़, श्लोक 13 में लज्जादि से वन्दनादिक का निषेध बतलाया है। कोई जबरदस्ती मस्तक झुकाकर हाथ जुड़वाये तो यह सम्भव है कि हमारा अन्तरङ्ग नहीं था परन्तु आप ही मानादिक से नमस्कारादि करे, वहाँ अन्तरङ्ग कैसे ना कहें ? जैसे— कोई अन्तरङ्ग में तो माँस को बुरा जाने, परन्तु राजादिक को भला मनवाने को माँस भक्षण करे तो उसे व्रती कैसे माने ? उसी प्रकार अन्तरङ्ग में कुगुरु सेवन को बुरा जाने, परन्तु उनको व लोगों को भला मनवाने के लिए सेवन करे, उसे श्रद्धानी कैसे कहें ? इसलिए बाह्य त्याग करने पर ही अन्तरङ्ग त्याग सम्भव है। इसलिए जो श्रद्धानी जीव है, उन्हें किसी प्रकार से भी कुगुरुओं की सेवा सुश्रुषा आदि करना योग्य नहीं है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 187]*

प्रश्न 29– जिस प्रकार राजादिक को करता है, उसी प्रकार इनको भी करें तो क्या नुकसान है ?

उत्तर – राजादिक, धर्मपद्धति में नहीं हैं; गुरु का सेवन धर्मपद्धति में है। राजादिक का सेवन, लोभादिक से होता है; वहाँ चारित्र -मोहनीय का ही उदय सम्भव है परन्तु गुरु के स्थान पर, कुगुरु का

सेवन किया, वहाँ तत्त्वश्रद्धान के निमित्तकारण गुरु थे, उनसे यह प्रतिकूल हुआ। सो लज्जादिक से जिसने निमित्तकारण में विपरीतता उत्पन्न की, उसके उपादानकार्यभूत तत्त्वश्रद्धान में दृढ़ता कैसे सम्भव है ? इसलिए कुगुरु के सेवन में दर्शनमोह का उदय है। इसलिए पात्र जीवों को मुनि का लक्षण जानकर ही उनको मानना चाहिए।

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 187]

प्रश्न 30- 'मुनि' शब्द किस-किस को लागू पड़ता है ?

उत्तर - 'मुनि' शब्द चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक लागू होता है, अर्थात् चौथे से बारहवें गुणस्थान तक सर्व 'मुनि' नाम से सम्बोधन किये जा सकते हैं।

प्रश्न 31- 'मुनि' का अर्थ असंयत सम्यदृष्टि आदि आपने कहाँ से कर दिया है ?

उत्तर - अरे भाई! (1) श्रीसमयसार कलशटीका में कलश 104 में **'एते तत्र निरताः अमृतं विंदन्ति' (एते)** विद्यमान जो सम्यक्दृष्टि मुनीश्वर **(तत्र)** शुद्धस्वरूप के अनुभव में **(निरताः)** मग्न हैं, वे **(परमं अमृतं)** सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रियसुख को **(बिदन्ती)** आस्वादते हैं।

(2) कलश 152 में **'ततमुनि कर्मणा नो बध्यते' (तत्)** तिस कारण से **(मुनिः)** शुद्धस्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव **(कर्मणा)** ज्ञानावरणादिकर्म से **(ना बध्यते)** नहीं बँधता है।

(3) कलश 186 में **'अनपराधः मुनि न बध्येत' (अनपराधः)** कर्म के उदय के भाव को आत्मा का जानकर नहीं अनुभवता है, ऐसा है जो **(मुनिः)** परद्रव्य से विरक्त समयग्दृष्टि जीव **(न बध्येत)** ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड के द्वारा नहीं बाँधा जाता है।

(4) कलश 190 में **'अतः मुनि परम शुद्धता ब्रजति च अचिरात मुचयते' (अतः)** इस कारण से **(मुनिः)** सम्यग्दृष्टि

जीव **(परम शुद्धता व्रजति)** शुद्धोपयोगपरिणतिरूपी परिणमता हैं। **(च)** ऐसा होता हुआ **(अचिरात्-मूच्यते)** उसी काल कर्मबन्ध से मुक्त होता है।

इन चार कलशों में सम्यग्दृष्टि को 'मुनि' कहा है; अतः चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें तक सब मुनि कहलाते हैं परन्तु सातवें से बारहवें गुणस्थान तक वाले उत्तममुनि; पाँचवें, छठे गुणस्थानी मध्यममुनि, और चौथे गुणस्थानी असंयत सम्यग्दृष्टि, जघन्यमुनि कहलाते हैं।

प्रश्न 32– मुनि, अप्रमत्त और प्रमत्तदशा से गिर जावे तो क्या होता है, जरा दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर – जैसे, सर्कस में दो झूला होते हैं। उन पर एक लड़की कभी इस झूले पर और कभी उस झूले पर तेजी से आती-जाती है। उसके नीचे सर्कसवाले जाली लगाते हैं, जिससे यदि कदाचित् गिर जावे तो चोट न लगे। प्रथम तो वह गिरती ही नहीं है, यदि गिर जावे तो ताल ठोककर फिर तत्काल झूले पर चढ़ जाती है और यदि वह जाली पर पड़ी रहे तो उसे सर्कस से बाहर कर देते हैं; उसी प्रकार भावलिङ्गी मुनीश्वर, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूला झूलते हैं। प्रथम तो गिरते नहीं है और अपने परिपूर्ण स्वभाव का आश्रय बढ़ाकर सिद्धदशा को प्राप्त कर लेते हैं और यदि गिर जावे तो उग्र पुरुषार्थ बढ़ाकर फिर चढ़ जाते हैं। यदि गिर जावे तो कोई पाँचवें, कोई चौथे गुणस्थान में और कोई मिथ्यादृष्टि तक हो जाते हैं।

प्रश्न 33– मुनि गिर जावे तो बहुत से मुनि, सर्वार्थसिद्धि में तैंतीस सागर की आयुपर्यन्त रहते हैं, वह तो ठीक है ना ?

उत्तर – जैसे, एक रिश्वतखोर हैडमास्टर ने एक चौथी कक्षा के लड़के से रिश्वत लेकर उसे सातवीं कक्षा में कर दिया। रिश्वत ना

लेनेवाले स्कूल इन्स्पेक्टर ने उसकी परीक्षा ली तो उसने सातवीं कक्षा का प्रश्न पूछा, वह न बात सका; फिर छठी कक्षा का प्रश्न पूछा, वह न बता सका; फिर पाँचवी कक्षा का प्रश्न पूछा, वह ना बता सका; फिर चौथी कक्षा का प्रश्न पूछा, तो उसने बता दिया। तब इन्स्पेक्टर ने दण्डस्वरूप दस वर्ष तक उसे चौथी कक्षा में रहने का हुक्म दिया। क्या वह लड़का दस वर्ष तक उस कक्षा में रहता हुआ आनन्द मानेगा? कभी नहीं। उसी प्रकार भावलिङ्गी मुनीश्वर सातवें गुणस्थान में आनन्द की लहर का अतीन्द्रिय रस पीते हैं और उनकी आयुष्य पूर्ण होने पर विग्रहगति में चौथा गुणस्थान आ जाता है और फिर सर्वार्थसिद्धि में तैतीस सागर पर्यन्त चौथे गुणस्थान में रहना होता है – क्या वे आनन्द मानते होंगे? कभी नहीं।

प्रश्न 34– सच्चे और झूठे मुनि के स्वरूप को जानने के लिए हम किस शास्त्र को देखें, जिससे सब बात सुगमता से समझ में आ जावे?

उत्तर – श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, छठवें अधिकार में गुरु के वर्णन में आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने बहुत स्पष्ट किया है, वहाँ से अच्छी तरह पढ़कर जान लेवें।

प्रश्न 35– श्री कुन्दकुन्दभगवान ने श्री नियमसार में क्या आदेश दिया है?

उत्तर – श्रीनियमसार में कहा है कि –

जो कर सको तो ध्यानमय प्रतिक्रमण आदिक कीजिये।
यदि शक्ति हो नहि तो अरे श्रद्धान निश्चय कीजिये॥154॥

है जीव नाना, कर्म नाना, लब्धि नाना विधि कही।
अतएव ही निज-पर समय सह वाद परिहर्तव्य है॥156॥

निधि पा...मनुज तत्फल वतन में गुप्त रह ज्यो भोगता।
त्यो छोड़ परजन-संग ज्ञानी ज्ञान निधि को भोगता॥157॥

अर्थात्, यदि किया जा सके तो अहो। ध्यानमय प्रतिक्रमणादि कर; यदि तू शक्ति विहीन हो तो तब तक श्रद्धान ही कर्तव्य है ॥154॥

नाना प्रकार के जीव है; नाना प्रकार का कर्म हैं; नाना प्रकार की लब्धि हैं; इसलिए स्वसमयों तथा परसमयों के साथ (स्वधर्मियों तथा परधर्मियों के साथ) वचन विवाद वर्जनयोग्य है ॥156॥

जैसे, कोई एक (दरिद्र मनुष्य) निधि को पाकर अपने वतन में (गुप्तरूप से) रहकर उसके फल को भोगता है; उसी प्रकार ज्ञानी, परजनों समूह को छोड़कर ज्ञाननिधि को भोगता है ॥157॥

————

9

श्रीसमयसार गाथा 160 का रहस्य

धर्म प्राप्ति के लिये....

प्रश्न 1- श्रीसमयसार, पुण्य-पाप अधिकार की गाथा 160 में, 'तेरा सर्वज्ञ-सर्वदर्शी स्वभाव है' - यह कहने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर -

यह सर्वज्ञानी दर्शि भी, निजकर्म रज आच्छाद से।
संसार प्राप्त न जानता, वो सर्व को सब रीत से।।60।।

अर्थात्, वह आत्मा, स्वभाव से सर्व को देखने-जाननेवाला है, तथापि अपने कर्ममल से लिप्त होता हुआ / व्याप्त होता हुआ, संसार को प्राप्त हुआ, वह सब प्रकार से सर्व को नहीं जानता।

प्रश्न 2- पुण्य-पाप अधिकार में सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की बात क्यों की ?

उत्तर - (1) जब तक जीव को पुण्य-पाप की रुचि रहेगी, तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होगा; और

(2) पर्याय में जब तक पुण्यभाव रहेगा, तब तक सर्वज्ञ -सर्वदर्शी नहीं बन सकता है - यह बताने के लिये पुण्य-पाप अधिकार में सर्वज्ञ-सर्वदर्शी की बात की है।

प्रश्न 3- किस जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी ?

उत्तर - (1) जो जीव मानता है कि दया-दान-पूजा-अणुव्रत -महाव्रतादि विकारीभावों से धर्म की प्राप्ति होती है;

(2) संसार अवस्था में शुभभाव कुछ तो मदद करता ही है;

(3) शुभभाव करते-करते धर्म की प्राप्ति हो जावेगी - आदि मान्यतावाला, अर्थात् पुण्य की रुचिवाला है, उसे कभी भी सम्यग्दर्शन होने का अवकाश नहीं है।

प्रश्न 4- गाथा 160 में से दो बोल कौन से निकलते हैं?

उत्तर - (1) जब तक जीव को परलक्ष्यी ज्ञान और पुण्य की मिठास रहेगी, तब तक उसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की श्रद्धा नहीं हो सकती, अर्थात् जब तक जीव को परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की रुचि, पुण्यभाव, पुण्यकर्म और पुण्य की सामग्री की रुचि रहेगी, तब तक उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी, और

(2) जब तक पर्याय में पुण्य-पाप का भाव रहेगा, तब तक सर्वज्ञ और सर्वदर्शी नहीं बन सकता।

प्रश्न 5- क्या आत्महित साधने के लिए मोक्षमार्ग में पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की किञ्चित्मात्र भी कीमत नहीं है?

उत्तर - वास्तव में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए; श्रेणी माँडने के लिए; सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की किञ्चितमात्र आवश्यकता नहीं है; एकमात्र मैं अखण्ड त्रिकाली परमपारिणामिक-भावरूप हूँ - ऐसे अनुभव और ज्ञान की ही आवश्यकता है।

प्रश्न 6- क्या सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्षी ज्ञान के उघाड़ की किञ्चित जरूरत नहीं है?

उत्तर - नहीं है, विचारो! चार गति के चार जीव हैं।

(1) सातवें नरक का नारकी, जहाँ पर प्रतिकूल संयोग भरा पड़ा है;

(2) नव ग्रैवेयक का मिथ्यादृष्टि देव, जहाँ पर अनुकूल संयोग भरा पड़ा है;

(3) स्वयंभूरमणसमुद्र का मगरमच्छ / तिर्यञ्च, जो जल में पड़ा है;

(4) बड़ा महाराजा / मनुष्य, जो हीरों के सिंहासन पर बैठा है।

इस प्रकार चारों गतियों के जीवों को पुण्य-पाप के संयोगों में बड़ा अन्तर है। नारकी-देव को कुमति आदि तीन ज्ञान का उघाड़ है और मनुष्य-तिर्यञ्च को कुमति आदि दो ज्ञान का उघाड़ है।

चारों गतियों के चारों जीवों को मानो मोटेरूप से आठ बजकर एक मिनट पर सम्यग्दर्शन होना है तो आठ बजे सम्यग्दर्शन के योग्य आत्मसन्मुखतारूप शुभभाव समान होते हैं क्योंकि जब जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, तब करणलब्धि का तीसरा भेद अनिवृत्तिकरण का अभाव होकर ही होती है; इस प्रकार चारों गतियों के जीवों के संयोगों में व ज्ञान के उघाड़ में बड़ा अन्तर होने पर भी, आत्मसन्मुखतारूप परिणाम समान होते हैं; अतः सम्यक्त्व की प्राप्ति में बाह्य संयोग, बाधक-साधक नहीं होते हैं। जीव एकमात्र अपने त्रिकालीस्वभाव का आश्रय ले, तो तुरन्त सम्यगदर्शन की प्राप्ति होती है - ऐसा जानकर संयोग और संयोगीभावों की रुचि का त्याग करके, सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए।

प्रश्न 7- क्या श्रेणी माँडने के लिए भी पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की किञ्चित् जरूरत नहीं है ?

उत्तर - नहीं है। विचारिये! चार भावलिङ्गी मुनि हैं।

(1) एक मुनि को मति-श्रुतज्ञान का अल्प उघाड़ है और मुनि पदवी है;

(2) दूसरे मुनि को मति-श्रुत-अवधिज्ञान का उघाड़ है और उपाध्याय पदवी है;

(3) तीसरे मुनि को मति-श्रुत-मन:पर्ययज्ञान का उघाड़ है और कोई पदवी नहीं है;

(4) चौथे मुनि को मति-श्रुत-अविध-मन:पर्ययज्ञान का उघाड़ है और आचार्य पदवी है।

विचारिये — चारों भावलिङ्गी मुनि हैं; ज्ञान का उघाड़ कम-ज्यादा होने पर भी, यह चारों मुनि एक ही साथ श्रेणी माँडे वो नौवें गुणस्थान में शुद्धि चारों मुनियों को समान ही होती है तो वह ज्ञान का उघाड़ और पदवी क्या कार्यकारी रहा? कुछ भी नहीं। एकमात्र अपने त्रिकाली स्वभाव की एकाग्रता ही श्रेणी के लिए कार्यकारी है।

[अ] जैसे—शिवभूति मुनि को ज्ञान का अल्प उघाड़ होने पर भी, आत्मा में स्थिरता करके अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

[आ] दूसरी तरफ अवधिज्ञान-मन:पर्ययज्ञान में उपयोग हो तो श्रेणी नहीं माँड सकता है। इससे सिद्ध हुआ श्रेणी माँडने में भी परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की, पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री की किञ्चित्मात्र आवश्यकता नहीं है; एकमात्र आत्मा में एकाग्रता की ही आवश्यकता है।

प्रश्न 8- क्या सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए भी पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की किञ्चित्मात्र आवश्यकता नहीं है?

उत्तर - नहीं है - विचारिये! सिद्धशिला 45 लाख योजन की है; उसके नीचे 25 लाख योजन जमीन है और 20 लाख योजन पानी

ही है। भगवान की वाणी में आया है कि सिद्धशिला में कोई जगह सुई की नोंक के बराबर भी खाली नहीं है, जहाँ पर अनन्त सिद्ध विराजमान न हों।

यहाँ शङ्का होती है कि जहाँ पर जमीन है, वहाँ पर तो अनन्त सिद्ध समश्रेणी से लोकाग्र में विराजमान हैं, यह बात समझ में आती है परन्तु जहाँ अनादि-अनन्त पानी है, वहाँ पर भी अनन्त सिद्ध विराजमान हैं, यह बात समझ में नहीं आती क्योंकि जीव, मोक्ष में जाता है, वह समश्रेणी से ही जाता है; जहाँ पानी ही पानी है, वहाँ से मोक्ष कैसे होगा?

समाधान इस प्रकार है - कोई पूर्व भव का बैरी देव, भावलिङ्गी मुनि को उठाकर, जैसे धोबी कपड़े पछाड़ता है, वैसे उठाकर समुद्र में पछाड़े, वे वहाँ पर ही केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में चले जाते हैं।

देखो! बाहर का संयोग कैसा है! इसलिए सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए भी पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री और परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की जरूरत नहीं है।

हे भव्य! तू अनादि-अनन्त भगवानरूप शक्ति का पिण्ड है। उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शनादि, श्रेणी और सिद्धदशा की प्राप्ति होती है; परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ से, पुण्यभाव, पुण्यकर्म और पुण्य की पदवी से नहीं। ऐसा जानकर एक बार अपनी ओर दृष्टि करे तो तुझे पता चलेगा; किसी से भी पूछना नहीं पड़ेगा।

प्रश्न 9- फिर अपने हित के लिए क्या करें?

उत्तर - अपने कल्याण के लिए पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की रुचि छोड़कर, अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय ले तो तभी आत्मा में धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता हो जाएगी।

10

श्रीप्रवचनसार 93 वीं गाथा का रहस्य

दिव्यध्वनि का सार

प्रश्न 1– 'अर्थ' का मतलब क्या है?

उत्तर – (1) अर्थ, अर्थात् प्रयोजन। दु:ख का अभाव और सुख की प्राप्ति – यह ही प्रत्येक जीव का प्रयोजन है; और कुछ नहीं है।

(2) प्रकृष्टरूप से अपनी आत्मा में जुड़ान करना, उसका नाम प्रयोजन है।

प्रश्न 2– अपनी आत्मा में प्रकृष्टरूप से जुड़ान करने से क्या होता है?

उत्तर – अपनी आत्मा में प्रकृष्टरूप से जुड़ान करने से अनादि काल से जो समय-समय भावमरण हो रहा था, उसका अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर, क्रमश: मोक्ष होता है।

प्रश्न 3– अर्थ का दूसरा अर्थ क्या है?

उत्तर – श्रीप्रवचनसार, गाथा 93 में लिखा है कि–

'अत्थो खलु दव्वमओ, दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहिं पुणों पज्जाया, पज्जयमूढ़ा परसमया।।93।।

है अर्थ द्रव्य स्वरूप, गुणात्मक कहा है द्रव्य को।
अरू द्रव्य-गुणों से पर्यायों, पर्ययमूढ़ परसमय है।।93।।

अर्थात्, अर्थ, द्रव्यस्वरूप है; द्रव्यों को गुणरूप कहा गया है;

द्रव्य और गुणों से पर्यायें होती हैं; पर्यायमूढ़जीव परसमय है। देखो! यहाँ अर्थ को, द्रव्यस्वरूप है – ऐसा कहा है।

प्रश्न 4– क्या द्रव्य ही अर्थ है ?

उत्तर – श्रीप्रवचनसार, गाथा 87 में द्रव्य–गुण और पर्याय – तीनों को अर्थ नाम से कहा है।

प्रश्न 5– श्री प्रवचनसार में द्रव्य को अर्थ क्यों कहा है ?

उत्तर – द्रव्य, अपने गुणों और पर्यायों को प्राप्त होते हैं; इसलिए द्रव्य को अर्थ कहा है।

प्रश्न 6– यदि द्रव्य, अपने गुणों और पर्यायों को प्राप्त न करे, अर्थात् दूसरों को प्राप्त करे तो क्या होगा ?

उत्तर – अनर्थ हो जावेगा, क्योंकि कोई भी द्रव्य, अपने गुण –पर्यायों को छोड़कर नहीं जाता है परन्तु उल्टी मान्यता के कारण अभिप्राय में अनर्थ हो जावेगा।

प्रश्न 7– श्री प्रवचनसार में गुण को अर्थ क्यों कहा है ?

उत्तर – गुण, जो अपने आश्रयभूत द्रव्य और पर्यायों को प्राप्त होते हैं; इसलिए गुण को अर्थ कहा है।

प्रश्न 8– यदि गुण अपने आश्रयभूत द्रव्य और पर्याय को प्राप्त न हो और गुण, दूसरे द्रव्यों और पर्यायों को प्राप्त हो तो क्या होगा ?

उत्तर – वास्तव में गुण सदैव अपने आश्रयभूत द्रव्य और पर्यायों को ही प्राप्त होते हैं; अन्य को नहीं, परन्तु कोई ऐसा कहे कि गुण, दूसरे द्रव्य और पर्यायों को प्राप्त होते हैं तो उसकी मान्यता में अनर्थ हो जावेगा। वह चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद की सैर करेगा।

प्रश्न 9- श्री प्रवचनसार में पर्याय को अर्थ क्यों कहा है ?

उत्तर - पर्याय, द्रव्य-गुण को क्रमपरिणाम से प्राप्त करती है; इसलिए पर्याय को अर्थ कहा है।

प्रश्न 10- यदि पर्याय, द्रव्य-गुण को क्रमपरिणाम से प्राप्त न करे तो क्या होगा ?

उत्तर - वास्तव में पर्याय, द्रव्य-गुणों को क्रमपरिणाम से ही प्राप्त करती है; अन्य को नहीं परन्तु कोई उल्टा कहे, तो उसकी मान्यता में अनर्थ हो जावेगा।

प्रश्न 11- द्रव्य-गुण-पर्याय को 'अर्थ' कहा, इससे हमको क्या लाभ है ?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य, अपने-अपने गुण-पर्यायों में ही वर्तता था, वर्त रहा है, और वर्तता रहेगा — ऐसा जाने-माने तो तुरन्त मोह का अभाव होकर, सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर, क्रम से मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

प्रश्न 12- प्रत्येक द्रव्य, अपने-अपने गुण-पर्यायों में ही भूत-भविष्य-वर्तमान में वर्त रहा है, वर्तेगा और वर्तता रहा है - यह सिद्धान्त शास्त्रों में कहाँ-कहाँ आया है ?

उत्तर - (1) श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52 में लिखा है कि 'अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमें हैं, कोई किसी को परिणमाया परिणमता नाहीं, और परिणमाने का भाव, निगोद का कारण है।'

(2) श्रीकार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा 219 में लिखा है कि 'समस्त द्रव्य अपने-अपने परिणामरूप द्रव्य-क्षेत्र-काल सामग्री को प्राप्त करके, स्वयं ही भावरूप परिणमित होते हैं, उन्हें कोई रोक नहीं सकता है।'

(3) 'तेहिं पुणों पज्जाया' श्रीप्रवचनसार, गाथा 93 में द्रव्य और गुणों से पर्यायें होती हैं।

(4) लोक में सर्वत्र जो जितने पदार्थ हैं, वे सब निश्चय को प्राप्त होने से सुन्दरता को प्राप्त होते हैं - वे सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को चुम्बन करते हैं - स्पर्श करते हैं, तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते। अत्यन्त निकट एकक्षेत्रावगाहरूप से तिष्ट रहे हैं, तथापि सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते हैं; पररूप परिणमन न करने से अनन्त व्यक्तिता नष्ट नहीं होती; इसलिए वे टंकोत्कीर्ण की भाँति स्थित रहते हैं और समस्त विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य - दोनों की हेतुता से वे विश्व का सदा उपकार करते हैं, अर्थात् टिकाये रखते हैं। *[श्रीसमयसार, गाथा 3 की टीका से]*

(5) वस्तु की मालिक वस्तु है, जो मालिक है, वही कर्ता है।

फिर मालिक के मालिक बनकर क्यों नीति न्याय गवाँते हो।

(6) श्रीसमयसार, गाथा 103 तथा 372 महासिद्धान्त की गाथा हैं, इसमें भी वही लिखा है तथा श्रीसमयसार, कलश 200 तथा 201 देखो।

(7) जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु, अपने-अपने में होती है, - ऐसा पूजा में भी आया है।

(8) अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्वगुण बताता है कि वस्तु, ध्रौव्य रहती हुई, अपना-अपना प्रयोजनभूत कार्य करती हुई, निरन्तर बदलती रहती है।

(9) भगवान उमास्वामी ने 'सत्द्रव्यलक्षणम्; उत्पाद-व्यय -ध्रौव्ययुक्तं सत्' - यह महासिद्धान्त बताया है।

प्रश्न 13– जो जिनेन्द्रकथित इस वस्तुस्वरूप को नहीं मानता, उसे भगवान ने क्या-क्या कहा है ?

उत्तर – (1) श्रीसमयसार, कलश 55 वें में 'महामोह अज्ञान-अन्धकार है; उसका सुलटना दुर्निवार है' तथा मिथ्यादृष्टि कहा है।

(2) श्रीप्रवचनसार में 'पद-पद पर धोखा खाता है' – ऐसा कहा है।

(3) श्रीपुरुषार्थसिद्ध्युपाय में 'तस्य देशना नास्ति' कहा है।

प्रश्न 14– जो पर्याय उत्पन्न होती है, तब किसको याद रखे तो संसार का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति हो ?

उत्तर – श्रीप्रवचनसार का 'तेहि पुणों पज्जाया', अर्थात् द्रव्य और गुणों से पर्यायें होती हैं; पर से नहीं – ऐसा जाने तो संसार का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति हो।

प्रश्न 15– (1) समयसार से ज्ञान हुआ। (2) दर्शनमोहनीय के क्षय से क्षायिकसम्यक्त्व हुआ। (3) उसने गाली दी तो गुस्सा आया। (4) जीव विकार करे तो नया कर्मबन्ध होता है। (5) दिव्यध्वनि से ज्ञान होता है। (6) ज्ञेयों के जानने से ज्ञान की प्राप्ति होती है – आदि कथनों में 'तेहिं पुणों पज्जाया' का सच्चा ज्ञान कब होवे ?

उत्तर – जैसे, **'समयसार से ज्ञान हुआ'** 'तेहिं पुणों पज्जाया' से पता चला कि ज्ञान, आत्मा के ज्ञानगुण से आया; समयसार से नहीं। ऐसा जानने से ज्ञान, सुख, सम्यग्दर्शनादि पर से आते हैं – ऐसी खोटी बुद्धि का अभाव हो तो 'तेहिं पुणो पज्जाया' को जाना। शेष प्रश्नों के उत्तर इसी के अनुसार समझना चाहिए।

प्रश्न 16– द्रव्य-गुण तो शुद्ध है, फिर पर्याय में अशुद्धि कहाँ से आयी ?

उत्तर – द्रव्य-गुण तो अनादि-अनन्त शुद्ध हैं; उस पर लक्ष्य नहीं करने से पर्याय में अशुद्धि उत्पन्न होती है और अपने द्रव्य-गुणों के अभेद पिण्ड पर लक्ष्य करे तो शुद्धपर्याय प्रगट होती है; पर से या द्रव्यकर्मों से (कर्मों के अभाव से) उत्पन्न नहीं होती है।

प्रश्न 17– 'पज्जयमूढ़ा हि पर समया', अर्थात् पर्यायमूढ़, पर समय है, इससे क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – जब आदिनाथ भगवान ने दीक्षा ली तो मारीच ने भी ली थी। उसने भगवान का विरोध किया, ऐसा जानकर अज्ञानी, द्वेष करता है। वही मारीच, महावीर से पूर्व दशवें भव में भयंकर क्रूर शेर बना, जिसको देखकर जङ्गल के जीव थर्राते थे। उसकी क्रूरता देखकर अज्ञानी को द्वेष होता है। शेर पर्याय में सम्यग्दर्शन हुआ तो अज्ञानी को उसके प्रति राग आता है। चौबीसवाँ तीर्थङ्कर होने पर पूज्य कहलाया तो अज्ञानी को शुभराग आता है।

मारीच को देखकर और शेर पर्याय में द्वेष तथा शेर पर्याय में सम्यग्दर्शन होने पर राग, महावीर होने पर अतिराग किया; इसलिए मिथ्यादृष्टि को पर्यायदृष्टि होने से राग-द्वेष ही उत्पन्न होता है। मारीच से लेकर महावीरपर्यन्त सलंगपने देखो तो मारीच, द्वेष के योग्य नहीं है; शेर द्वेष और राग करने योग्य नहीं है – ऐसा जाने तो राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होगा। ज्ञानी को सदैव स्वभावदृष्टि ही होती है; इसलिए राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्रश्न 18– द्रव्यदृष्टि, सो सम्यग्दृष्टि और पर्यायदृष्टि, सो मिथ्यादृष्टि का दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर – (1) एक कुत्ता है, उसे कोढ़ हो रहा है। उसमें बहुत दुर्गन्ध आ रही है; अज्ञानी उस पर द्वेष करता है। कुत्ता मरकर मन्दकषाय के कारण रानी बनी, उसको देखकर अज्ञानी, राग करता

है। रानी ने जवानी के नशे में मदिरापान किया और मरकर नरक में गयी; अज्ञानी द्वेष करता है। अज्ञानी, मात्र इस जीव की अवस्था को लक्ष्य में लेता है तो राग-द्वेष होता है। यदि सर्व अवस्थाओं में 'यह का वह जीव है' - ऐसा माने तो किसी के प्रति द्वेष और किसी के प्रति राग नहीं होगा; मात्र वे सब ज्ञान का ज्ञेय बनेंगे। यदि भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों अवस्थाओं में नित्यता का विचार करे तो राग और द्वेष उत्पन्न नहीं होगा, बल्कि शान्ति की प्राप्ति होगी।

(2) एक राजा था। उसका एक प्रधान बड़ा ज्ञानी था। राजा ने एक बार प्रधानसहित सबको भोजन पर आमन्त्रित किया। राजा ने सबसे पूछा - रसोई कैसी है? सबने कहा, महाराज! बहुत उत्तम, स्वादिष्ट है। राजा ने प्रधान से पूछा, 'प्रधानजी! रसोई कैसी है?' प्रधान ने कहा, 'जैसी होती है, वैसी है।'

एक बार प्रधानसहित राजा, घोड़े पर सवार होकर कहीं जा रहे थे। रास्ते में गन्दे नाले का पानी सड़ने के कारण बहुत दुर्गन्ध आ रही थी, निकलना भी कठिन था। राजा ने कहा, प्रधानजी! बड़ी दुर्गन्ध आ रही है परन्तु प्रधान ने कुछ उत्तर नहीं दिया। प्रधान ने विचारा - राजा बार-बार पूछता है, इसे बोधपाठ देना चाहिए। प्रधान ने गन्दे नाले का दुर्गन्धित पानी लाकर, उसमे निर्मली डालकर साफ करके, उसमें केशर आदि मिलाकर सुगन्धित बना दिया और सबसे कह दिया कि - राजा पानी माँगे तो कोई मत देना, मैं ही दूँगा। खाना खाने के बीच में राजा ने पानी माँगा, तब प्रधानजी स्वयं लाये। राजा, सुगन्धित पानी पीकर दङ्ग रह गया और राजा ने विचारा कि प्रधान इतना स्वादिष्ट भोजन और सुगन्धित पानी पीता है; इसलिए प्रधान ने मेरी रसोई को अच्छा नहीं बताया था।

राजा ने पूछा - प्रधानजी! इतना स्वच्छ और सुगन्धित पानी

कहाँ से लाए हो? प्रधान ने जवाब दिया – महाराज! उस सड़े गन्दे नाले का पानी, जिसमें उस दिन दुर्गन्ध आ रही थी, यह पानी मँगवाया था। बाद में उसको स्वच्छ और सुगन्धित बनाया है। पानी की भूत अवस्था, वर्तमानरूप सुगन्धित अवस्था तथा भविष्य की पेशाबरूप अवस्था का लक्ष्य छोड़कर, मात्र पुद्गल की नित्यता का विचार करे तो जीव में वीतरागता आये बिना नहीं रह सकती।

अतः मारीच, शेर, नन्दराजा, महावीर को अवस्था से देखने पर अज्ञानी को राग-द्वेष उत्पन्न होता है और वही का वही आत्मा है – ऐसी नित्यता को देखे तो वीतरागता की प्राप्ति तुरन्त हो जाती है।

अणुमात्र भी रागादि का सद्भाव है जिस जीव को।
वो सर्व आगम धर भले ही, जानता नहिं आत्मा को॥201॥

नहिं जानता जहं आत्मा को, अनआत्म भी नहीं जानता।
वो क्यों हि होय सुदृष्टि जो, जीव अजीव को नहिं जानता॥202॥

तात्पर्य यह है कि मिथ्यादृष्टि, मात्र पर्याय को ही देखता है और दुःखी होता है। यदि दुःख का अभाव करना हो तो स्वभाव को देखो तो शान्ति आवेगी। इसलिए 'पज्जयमूढ़ाहि परसमया' ऐसा श्रीप्रवचनसार में कहा है। स्वभावदृष्टि, सो सम्यग्दृष्टि है; इसलिए अपने स्वभाव का आश्रय लेना प्रत्येक पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न 19– सुखी होने का, ज्ञानी और परमात्मा बनने का उपाय, श्रीसमयसार 50 वें कलश में क्या बताया है?

उत्तर – यह 50 वें कलश का रहस्य समझ जावे तो जीव और पुद्गल में कर्ता-कर्मभाव है – ऐसी खोटी बुद्धि का अभाव होते ही सुखीपने का और ज्ञानीपने का अनुभव होता है और जैसे-जैसे अपने में लीन होता जाता है, वैसे-वैसे परमात्मा बनता जाता है।

प्रश्न 20- इस कलश में क्या कहा है ?

उत्तर -

ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरिणतिं पुद्गलश्चाप्यजानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमंतः कलयितुमसहौ नित्यमत्यंतभेदात्।
अज्ञानात्कर्तृकर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न यावत्
विज्ञानार्चिश्चकास्ति क्रकचवददयं भेदमुत्पाद्य सद्यः ॥50॥

अर्थात्, ज्ञानी तो अपनी और पर की परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है और पुद्गलद्रव्य अपनी तथा पर की परिणति को न जानता हुआ प्रवर्तता है; इस प्रकार उनमें सदा अत्यन्त भेद होने से (दोनों भिन्न द्रव्य होने से), वे दोनों परस्पर अन्तरङ्ग में व्याप्य -व्यापकभाव को प्राप्त होने में असमर्थ हैं। जीव-पुद्गल के कर्ताकर्मभाव है, ऐसी भ्रमबुद्धि अज्ञान के कारण वहाँ तक भासित होती है कि जहाँ तक (भेदज्ञान करनेवाली) विज्ञानज्योति करवत की भाँति निर्दयता से (उग्रता से) जीव-पुद्गल का तत्काल भेद उत्पन्न करके प्रकाशित नहीं होती।

प्रश्न 21- इस कलश के बोलों में क्या घटित होता है ?

उत्तर - यह हमारा लड़का है, मैं इसका पालन-पोषण करता हूँ किन्तु मेरी आज्ञा का जरा भी पालन नहीं करता - तो देखो श्री अमृतचन्द्राचार्य का यह सिद्धान्त कि 'ज्ञानी तो अपनी और पर की परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है' - यह याद आते ही शान्ति आ जावेगी क्योंकि 'सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं-स्पर्श करते हैं, तथापि वह द्रव्य, परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते।'

तात्पर्य यह है कि संसार में जाति अपेक्षा छह द्रव्य हैं; उनमें अनन्त गुण और पर्यायें हैं; पर्याय प्रति समय बदलती रहती है; कोई

समय ऐसा नहीं, जिस समय किसी भी द्रव्य की कोई पर्याय न बदलती हो। जब कायम रहते हुए, पर्याय का निरन्तर बदलना स्वाभाविक है तो मैं किसी में कुछ कर सकता हूँ या मेरा कोई करे; इस प्रश्न के लिए अवकाश ही नहीं रहता। निगोद से लगाकर, सिद्धभगवान तक सबने ज्ञान ही किया है, ज्ञान ही करेंगे किन्तु मात्र मिथ्यादृष्टि की मान्यता में फेर है। मात्र ज्ञान के अलावा जीव, पर में कुछ हेर-फेर नहीं कर सकता है - ऐसा यह महासिद्धान्त 'ज्ञानी तो अपनी ओर पर की परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है।' उसको यथार्थतया समझकर अन्तर में परिणमन करे तो अपूर्व शान्ति मिलेगी।

प्रश्न 22- 'ज्ञानी तो अपनी और पर की परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है' इस वाक्य में से कितने बोल निकलते हैं ?

उत्तर - पाँच बोल निकलते हैं। (1) ज्ञानी; (2) अपनी परिणति एकदेश; (3) अपनी परिणति पूर्ण; (4) पर; (5) परपरिणति।

प्रश्न 23- ज्ञानी आदि पाँच बोलों पर (1) नौ पदार्थ, (2) पाँच भाव, (3) चार काल, (4) देव-गुरु-धर्म, और (5) संयोगादि पाँच बोल लगाकर बताओ ?

उत्तर - (1) ज्ञानी= (1) जीवतत्त्व, (2) पारिणामिकभाव, (3) अनादि-अनन्त, (4) परम सुखदायक, (5) धर्मस्वरूप आत्मा, और स्वभाव त्रिकाली है।

(2) अपनी परिणति एकदेश = (1) संवर-निर्जरातत्त्व, (2) औपशमिक, क्षायोपशमिक, सम्यग्दर्शन की अपेक्षा क्षायिकभाव, (3) सादि-सान्त, (4) एकदेश सुखदायक, (5) गुरु और स्वभाव के साधन हैं।

(3) अपनी परिणति पूर्ण = (1) मोक्षतत्त्व, (2) क्षायिकभाव, (3) सादि-अनन्त काल, (4) पूर्ण सुखदायक, (5) देव और सिद्धत्व है।

(4) पर = (1) अजीवतत्त्व, (2) पाँच भावों में से कोई भाव नहीं, (3) अनादि-अनन्त, (4) न सुखदायक, न दु:खदायक, (5) देव-गुरु-धर्म में से कोई नहीं और संयोग है।

(5) पर परिणति = (1) आस्रव-बंध-पुण्य-पापतत्त्व, (2) औदयिकभाव, (3) अनादि सान्त, (4) दु:खदायक, (5) देव-गुरु-धर्म में से कोई नहीं और संयोगीभाव है।

प्रश्न 24- 'पुद्गल तो अपनी और पर की परिणति को न जानता हुआ प्रवर्तता है' इस वाक्य में से कितने बोल निकलते हैं ?

उत्तर - इसमें से भी पाँच बोल निकलते हैं — (1) पुद्गल; (2) अपनी परिणति; (3) पर; (4) परपरिणति एकदेश; (5) पर परिणति पूर्ण।

प्रश्न 25- पुद्गलादि पाँच बोलों में सात तत्त्व लगाकर समझाइये ?

उत्तर - (1) पुद्गल = (1) अजीवतत्त्व, (2) जीवरूप पाँच भाव में से कोई भाव नहीं, (3) अनादि-अनन्त, (4) न सुखदायक, न दु:खदायक, और (5) संयोग है।

(2) अपनी परिणति = (1) आस्रव-बन्धतत्त्व एक, (2) औदयिकभाव, (3) अनादि-सान्त, (4) दु:खदायक, और (5) संयोगीभाव है।

(3) पर = (1) जीवतत्त्व, (2) पारिणामिकभाव, (3) अनादि-अनन्त, (4) परम सुखदायक, और (5) स्वभाव त्रिकाली।

(4) पर परिणति एकदेश = (1) संवर-निर्जरातत्त्व, (2) औपशमिकधर्म का क्षायोपशमिक और सम्यग्दर्शन की अपेक्षा क्षायिकभाव, (3) सादि-सान्त, (4) एकदेश सुखदायक, और (5) स्वभाव के साधन हैं।

(5) पर परिणति पूर्ण = (1) मोक्षतत्त्व, (2) क्षायिकभाव, (3) सादि-अनन्त, (4) परम सुखदायक, और (5) सिद्धत्व है।

प्रश्न 26- श्रीसमयसार 50 वें कलश से क्या सार ग्रहण करना चाहिए ?

उत्तर - (1) कोई हमारी निन्दा करता है या प्रशंसा करता है;

(2) कोई गाली देता है, कोई मिठाई देता है;

(3) कोई गर्दन काटता है, कोई स्तुति करता है;

(4) घर में माल आता है या चोरी हो जाती है;

(5) शरीर ठीक रहता है या भयानक बीमारी पैदा हो जाती है - इत्यादि जितने भी प्रश्न उपस्थित हों तो भगवान अमृतचन्दाचार्य का सिद्धान्त 'ज्ञानी तो अपनी और पर की परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है' - ऐसा माने तो शान्ति आ जावेगी।

तीर्थङ्कर-गणधरादि एक ही बात बतलाते हैं क्योंकि अनन्त ज्ञानियों का एक मत होता है और एक अज्ञानी के अनन्त मत होते हैं। समस्त ज्ञानियों का एक मत है कि 'सत् द्रव्य लक्षणम' 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यं युक्तं सत्।' 'अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमै हैं, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नाहीं' और दूसरों को परिणमाने का भाव, निगोद का कारण है। छहढाला में कहा है कि 'पुद्गल-नभ-धर्म-अधर्म-काल, इनतें न्यारी है जीव चाल' 'रागादि प्रगट ये दु:ख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन' इत्यादि।

हे आत्मा! तू जीव है; तेरा किसी भी परद्रव्य से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। पुण्यभाव से तू जो अपना भला होना मानता है, वह जहर है – यह सबसे बड़ा मिथ्यात्व है; इसलिए पुण्यभाव से भी दृष्टि उठा और अपने ज्ञाता–दृष्टा स्वभाव को जान।

प्रश्न 27– हमारे जीवन में कोई अनुकूल या प्रतिकूल संयोग आवे तो क्या करें?

उत्तर – (1) वास्तव में कोई संयोग अनुकूल–प्रतिकूल है ही नहीं; अपनी मिथ्या मान्यता ही प्रतिकूल है।

(2) तुम्हारे जीवन में कैसा ही अनुकूल–प्रतिकूल संयोग हो, उस समय तुम, अरहन्त और सिद्ध जो कार्य करते हैं, वही कार्य करो, अर्थात् ज्ञाता–दृष्टा बनो तो जीवन में शान्ति आ जावेगी। यही बात 50 वें कलश में है।

प्रश्न 28– ज्ञानी के कितने अर्थ है और उसका शास्त्राधार क्या है?

उत्तर – तीन अर्थ हैं – जहाँ जैसा हो, वहाँ वैसा जानना। वैसे विशेषरूप से दूसरे नम्बर की बात शास्त्रों में आती है।

(1) 'जिसमें ज्ञान हो, वह ज्ञानी' – इस अपेक्षा निगोद से लेकर सिद्धशिला तक सब जीव, ज्ञानी।

(2) 'सम्यग्ज्ञानी, सो ज्ञानी; मिथ्याज्ञानी, सो अज्ञानी।' – इस अपेक्षा तीसरे गुणस्थान तक अज्ञानी और चौथे गुणस्थान से ऊपर के सब, ज्ञानी हैं।

(3) 'सम्पूर्ण ज्ञानी, सो ज्ञानी; अपूर्ण ज्ञानवाले अज्ञानी' – इस अपेक्षा चार ज्ञानधारी गणधर भी अज्ञानी हैं; मात्र अरहन्त–सिद्ध ज्ञानी हैं।

ये भेद सभी शास्त्रों में आये हैं। मुख्यरूप में श्रीसमयसार, गाथा 177-178 के भावार्थ में तथा गाथा 320 के भावार्थ में इन ज्ञानी के तीन प्रकारों का वर्णन किया है।

प्रश्न 29- श्रीसमयसार 50 वें कलश में दो बोल क्या बताते हैं ?

उत्तर - (1) ज्ञानी तो अपनी और पर की परिणति जानता हुआ प्रवर्तता है। (2) पुद्गल, अपनी और पर की परिणति न जानता हुआ प्रवर्तता है।

प्रश्न 30- इन दो बोलों में क्या बात आ जाती है ?

उत्तर - भेदविज्ञान की सम्पूर्ण बात आ जाती है।

————

11

सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का उपाय

प्रश्न 1- श्रीसमयसार, गाथा 38 में सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का क्या उपाय बताया है ?

उत्तर -

मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञान दृग हूँ यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणु मात्र नहीं अरे॥38॥

अर्थात्, दर्शन ज्ञान-चारित्ररूप परिणत आत्मा यह जानता है कि मैं निश्चय से एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञानमय हूँ, सदा अरूपी हूँ; किञ्चितमात्र भी परद्रव्य, अर्थात् परमाणुमात्र भी मेरा नहीं - यह निश्चय है।

प्रश्न 2- इस गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर - (1) निगोद से लगाकर, द्रव्यलिङ्गी मुनि तक अनादि काल से एक-एक समय करके अपनी भ्रमात्मक बुद्धि के कारण क्रोध, मान, माया, लोभ, पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, देह, चार गतियों में, आठ द्रव्यकर्मों में, नोकर्म में (परवस्तुओं में), धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक, लोकप्रमाण असंख्यात काल आदि द्रव्यों में तथा अपनी आत्मा को छोड़कर अन्य आत्माओं में अपनेपने की खोटी बुद्धि से पागल हो रहे हैं। यह मैं ही हूँ, मैं इनका कर्ता हूँ, ये मेरे काम हैं, मैं हूँ सो ये ही हैं, ये हैं सो मैं हूँ आदि भूत-भविष्य-वर्तमान विकल्पों में पागल होने से अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था।

(2) तब धर्मी (ज्ञानी) ने कहा, हे भव्य! नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म से तेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है; तू क्यों व्यर्थ में पागल बना हुआ है। तू तो एक शुद्ध-दर्शन-ज्ञानमयी-सदा अरूपी भगवान आत्मा है - ऐसा सुनकर अपने स्वभाव की ओर दृष्टि दी तो इसे ऐसा अनुभव हुआ 'मैं चैतन्यमात्र ज्योतिस्वरूप आत्मा हूँ, यह मेरे स्वसंवेदन से ही प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन -ज्ञानमयी हूँ, सदा अरूपी हूँ - यह स्वसंवेदन अनुभवी ज्ञानी ही जानते हैं;' अज्ञानियों को इनका पता नहीं है। जो जीव ऐसा अनुभव करता है, उसी जीव ने प्रसन्नचित्त से भगवान आत्मा की बात सुनी है, वह नियम से मोक्ष को प्राप्त होता है। इसकी महिमा ज्ञानी ही जानते हैं, अज्ञानी नहीं जानते। यह 38 वीं गाथा का तात्पर्य है।

प्रश्न 3- क्या करें तो अनादि काल का पागलपन समाप्त हो?

उत्तर - (1) मेरी आत्मा को छोड़कर बाकी अनन्त आत्माएँ हैं; अनन्तानन्त पुद्गल हैं; धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोक-प्रमाण असंख्यात कालद्रव्य हैं; इनसे तो मेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न था, न है और न होगा।

(2) पर्याय में जो शुभाशुभ विकारीभाव हैं, वह एक समय के हैं। शुभाशुभभावों में एकत्वबुद्धि, संसार है, वह एक समय का ही है; मैं स्वयं अनादि-अनन्त हूँ - ऐसा जाने तो उसी समय पागलपन मिट जाता है और तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो जाती है। फिर जैसे-जैसे अपने स्वभाव में एकाग्रता करता है, क्रमशः परिपूर्णता की प्राप्ति कर स्वयं ज्ञानघनरूप अमृत का पिण्ड बन जाता है।

प्रश्न 4- श्रीसमयसार की 73वीं गाथा में धर्म की प्राप्ति का क्या उपाय बताया है?

उत्तर –

मैं एक शुद्ध ममत्वहीन, रु ज्ञान दर्शन पूर्ण हूँ।
इसमें रहूँ स्थित लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूँ ॥73॥

भावार्थ – (1) 'मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ; ममतारहित हूँ; ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ; ऐसा अभेद स्वभाव की ओर दृष्टि करे तो तुरन्त संसार का अभाव और धर्म की प्राप्ति होती है।' यह ही एकमात्र उपाय क्रोधादि के क्षय का है; अन्य उपाय नहीं है।

(2) श्रीसमयसार, कर्ता-कर्म अधिकार की 69-70 गाथा में कहा है कि अभेद अनन्त गुणों का आत्मा के साथ तादाम्यसिद्धसम्बन्ध है, उसकी ओर दृष्टि करे तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होती है। दया-दान-पूजा-यात्रा-महाव्रत-अणुव्रतादि का संयोगसिद्ध-सम्बन्ध है, इनसे अपनापना माने तो पर्याय में मिथ्यादर्शन-ज्ञान -चारित्र की दृढ़ता होती है।

(3) शुभभाव, जो संसार का कारण है, उसको अज्ञानी, दिगम्बर-धर्म धारण करने पर भी, मोक्ष का कारण मानता है। श्रीकुन्दकुन्द आचार्य ने गाथा 72-74 में शुभभावों को अपवित्र, घिनावना, मल -मैलरूप, जड़स्वभावी, अनित्य, अशरण, अध्रुव, वर्तमान में दु:खदायी और भविष्य में भी दु:खदायी कहा है – ऐसा जाने-माने और मैं 'एक शुद्ध-ममत्वहीन-ज्ञानदर्शन पूर्ण हूँ' – ऐसे स्वभाव का आश्रय ले, तो धर्म की प्राप्ति होती है। यह धर्म की प्राप्ति का उपाय, गाथा 73 में बताया है।

प्रश्न 5– श्रीप्रवचनसार, गाथा 192 में धर्म की प्राप्ति का क्या उपाय बताया है?

उत्तर –

ए रीत दर्शन ज्ञान है, इन्द्रिय-अतीत महार्थ है।
मानूँ हूँ-आलम्बन रहित, शुद्ध जीव निश्चल ध्रुव है ॥192॥

भावार्थ - (1-2) ज्ञान-दर्शन से तन्मयी; परपदार्थों से अतन्मयी हूँ। (3) अतीन्द्रिय महापदार्थ; इन्द्रियात्मक सब परपदार्थ हैं। (4) अचल = चलायमान सर्वज्ञेयों पर्यायों से भिन्न हूँ, क्योंकि वह चलरूप हैं। (5) निरालम्ब = ज्ञेयरूप सब परद्रव्यों से भिन्न हूँ।

प्रश्न 6- श्रीप्रवचनसार, गाथा 192 का रहस्य क्या है?

उत्तर - आचार्य भगवान कहते हैं कि मैं आत्मा को '(1) दर्शनस्वरूप, (2) ज्ञानस्वरूप, (3) अतीन्द्रिय महापदार्थ, (4) अचल, (5) निरालम्ब मानता हूँ-जानता हूँ; इसलिए आत्मा एक है; एक है तो शुद्ध है; शुद्ध है तो ध्रुव है; ध्रुव है तो एकमात्र वह ही प्राप्त करने योग्य है। लक्ष्मी, शरीर, संयोगों में सुख-दुःख की कल्पना, शत्रु-मित्रपना, यह मूर्खता है। अज्ञानी, लक्ष्मी आदि की प्राप्ति में लगा रहता है, यह अनन्त संसार का कारण है। तू स्वयं को भूलकर पागल हो रहा है। एक बार अपने भगवान आत्मा को देख! तुझे तुरन्त शान्ति की प्राप्ति होगी। इसलिए हे भव्य! एक बार जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा मानकर, अपने स्वभाव का आश्रय ले तो जो भगावन ने जाना है, वैसा ही तू जानेगा और ऐसा अपूर्व आनन्द प्रगट होगा, जिसका वर्णन नहीं हो सकता है।'

प्रश्न 7- आत्मा त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा तो हम जानते हैं, फिर हमें शान्ति क्यों नहीं है?

उत्तर - बिल्कुल नहीं जानते, क्योंकि अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना आत्मा त्रिकाल शुद्ध है-यह जानना तोते जैसा है। देखो! श्रीसमयसार की छठवीं गाथा में भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने 'वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ शुद्ध कहलाता है' - ऐसा बताया है।

वास्तव में अनुभव होने पर ही, मैं संसार मे अकेला था और

मोक्ष मैं भी अकेला हूँ – ऐसा पता चलता है; इसलिए पात्र जीवों को ज्ञानी गुरुओं के सत्सङ्ग में रहकर, सत्य बात का निर्णय करके, अपना आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति करना चाहिए।

प्रश्न 8– ज्ञानों के उपदेश से सावधान हुआ–ऐसा आपने कहा तो क्या द्रव्यलिङ्गी मुनि के उपदेश से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है ?

उत्तर – वास्तव में धर्म की प्राप्ति, मात्र आत्मा के आश्रय से ही होती है; धर्मी–अधर्मी के आश्रय से कभी नहीं, परन्तु जैसे–किसी को हीरे–जवाहरात का कार्य सीखना है तो वह जौहरी के पास सीखता है और काम सीख लेने पर इसकी कृपा से सीखा – ऐसा उपचार से कहा जाता है; उसी प्रकार जिसे धर्म की प्राप्ति करनी हो, उसे जिसे धर्म की प्राप्ति हुई हो, उसी से सीखना चाहिए। जब स्वयं अनुभव हो जाता है, तब उपचार से–इनसे हुआ, ऐसा बोलने में आता है। द्रव्यलिङ्गी साधु कभी भी धर्म में निमित्त नहीं हो सकता है। श्रीप्रवचनसार, गाथा 271 में द्रव्यलिङ्गी मुनि को संसारतत्त्व कहा है और वह धर्म प्राप्ति में निमित्त बने, ऐसा कभी नहीं होता है। धर्म की प्राप्ति में निमित्त, ज्ञानी गुरु ही होते हैं; अज्ञानी नहीं हो सकते – ऐसा श्रीनियमसार, गाथा 53 में भी कहा है।

प्रश्न 9– जब धर्म की प्राप्ति आत्मा के आश्रय से ही होती है, तब धर्मी गुरु, निमित्त होता है – ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर – वास्तव में कार्य उस समय पर्याय की योग्यता से ही होता है परन्तु उस समय वहाँ कौन निमित्त है – ऐसा ज्ञान कराया है, क्योंकि जहाँ उपादान होता है, वहाँ निमित्त अवश्य ही होता है – ऐसा वस्तुस्वभाव है। जितने भी निमित्त हैं, वे सब धर्मद्रव्य के समान उदासीन ही हैं।

प्रश्न 10- जब उपादान में कार्य होता है, तब निमित्त होता ही है - ऐसा कहाँ लिखा है ?

उत्तर - (1) श्रीप्रवचनसार, गाथा 95 में बताया है कि 'जो उचित बहिरंग साधनों की सन्निधि के सद्भाव में अनेक अवस्थाएँ करता है' - यहाँ तात्पर्य इतना ही है कि जहाँ कार्य हो, वहाँ उचित निमित्त होता ही है; न हो - ऐसा नहीं होता है।

(2) **'उपादान निज गुण जहाँ, निमित्त पर होय।**
भेदज्ञान प्रमाण विधि, बिरला बूझै कायै॥'

(पण्डित बनारसीदास कृत दोहा)

(3) जहाँ सच्चे कारणरूप उद्यम करे, वहाँ अन्य निमित्तकारण होते ही हैं - ऐसा वस्तुस्वभाव है।

प्रश्न 11- श्रीसमयसार, गाथा 2 में जीव की सिद्धि कितने बोलों से की है ?

उत्तर - जीव कैसा है ? - उसकी सिद्धि सात बोलों से की है।

(1) जीव, उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत् है।

(2) जीव, चैतन्यस्वरूप है।

(3) जीव, अपने अनन्त धर्मों में रहता है।

(4) जीव, गुण-पर्यायवन्त है।

(5) जीव, स्व-पर प्रकाशक है।

(6) जीव, अन्य द्रव्यों से भिन्न असाधारण चेतनागुणरूप है।

(7) जीव, सदा अपने स्वरूप में टंकोत्कीर्ण रहता है - ऐसा विशेषोंवाला जो जीवपदार्थ है, उसे ही समय कहा है।

प्रश्न 12- श्रीसमयसार की दूसरी गाथा में स्वसमय किसे कहा है ?

उत्तर – जब जीव का स्वरूप पहचानकर, स्व-पर का भेदज्ञान करे, तब जीव, पर से भिन्न अपने दर्शन-ज्ञानस्वभाव में निश्चल परिणतिरूप होता हुआ, अपने में स्थित होता है, उसे स्वसमय कहा है।

प्रश्न 13– श्रीप्रवचनसार, गाथा 11 में क्या बताया है?

उत्तर – कषायरहित शुद्धोपयोग, धर्म है। जो जीव, रागरहित पूर्ण शुद्धोपयोगरूप परिणमें, वह जीव मोक्षसुख को प्राप्त करता है और धर्मपरिणतिवाला वह ही जीव, जो शुभरागसहित हो तो स्वर्गसुख को प्राप्त करता है; मोक्ष को प्राप्त नहीं करता है; इसलिए शुभराग, हेय है और शुद्धोपयोग ही प्रगट करनेयोग्य उपादेय है।

———

12

धर्म प्राप्ति के लिए जीव की पात्रता

प्रश्न 1- भगवान की वाणी सुनने की पात्रता कब कही जा सकती है?

उत्तर - (1) वृत्ति को अखण्ड करके, (2) पूजादि की चाहना नहीं करके, (3) जिस संसार का दुःख लगा हो, (4) जिनवचन की परीक्षा करके उसमें लगा रहता है, वह भगवान की वाणी सुनने योग्य है और उसे इसी भव में सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जावेगी।

(१) 'करी वृत्ति अखण्ड सन्मुख, मूल मारग साँभलो जिन नो रे'

अपनी आत्मा के सन्मुख अखण्डवृत्ति किये बिना, वीतरागी मूलमार्ग सुनने के लिए योग्य नहीं हो सकता है।

(अ) जैसे-एक आदमी ने बादाम में से तेल निकालना शुरु किया; जब तेल निकलने का समय आया, तो जरा चाय पी आएँ... फिर आकर तेल निकालने लगा। जब फिर तेल निकलने का समय आया, तो जरा पेशाब कर आऊँ.... इस प्रकार उसे कभी भी तेल की प्राप्ति नहीं होगी; उसी प्रकार शास्त्र सुनते हुए अन्य सांसारिक कार्य के सम्बन्ध में विचार आवे तो वह भगवान की वाणी सुनने के योग्य नहीं है।

(आ) एक बार श्रीमद् राजचन्द्रजी का प्रवचन बहुत आदमी सुन रहे थे। वहाँ पर एक आदमी बीड़ी पीकर आया, बीड़ी पीने के

बाद गन्ध तो आती है। उसके बैठते ही दूसरे बीड़ी पीनेवाले को बीड़ी पीने की तलब लगी, वह उठकर तुरन्त बाहर गया और बीड़ी पीकर वापस आकर बैठ गया। उस समय एक पैसे की तीन बीड़ी आती थी, एक बीड़ी का मूल्य एक पाई होता था। तब श्रीमद् ने कहा अरे भाई! जो आत्मा की कीमत एक पाई से भी कम मानते हैं, वे भगवान की वाणी सुनने के योग्य नहीं हैं। इसलिए पहले नम्बर की लायकात 'वृत्ति को अखण्ड सन्मुख करके वीतराग का मूलमार्ग सुनना चाहिए।'

(2) नोय पूजादिनी जो कामना रे, मूल मारग साँभलो जिन नो रे॥

जो जीव ऐसा मानकर शास्त्र सुनते हैं कि मेरी पूजा प्रतिष्ठा हो; पुण्य का बन्ध हो; अथवा सांसारिक वासनापूर्ति की इच्छा करता हो, वह वीतरागी मूलमार्ग सुनने के योग्य नहीं है। वक्ता कहे, आइये सेठजी! तो वह अपनी प्रशंसा सुनेगा किन्तु वीतरागता की बात नहीं सुन सकेगा। वीतरागता की रुचिवाले, जूते रखने की जगह में बैठकर भी वीतरागी वाणी सुनने से पीछे नहीं हटते। जो मान-कीर्ति के चक्कर में हैं, वे भगवान की वाणी सुनने के योग्य नहीं हैं।

(3) नो य व्हालुं अन्तर भव दुःख, मूल मारग साँभलो, जिन नो रे॥

अन्तर में कोई भी भव का दुःख कडुवा लगे, अर्थात् अच्छा न लगे। जिसे मनुष्यभव, देवभव अच्छा लगता है, वह वीतरागी वाणी सुनने के लायक नहीं है।

प्रश्न 2- चारों गति के विषय में श्रीमोक्षपाहुड़, गाथा 16 में क्या कहा है?

उत्तर - चारों गति का भाव, दुर्गति है '**पर दव्वादो दुग्गइ,**

सदव्वादो हु सुगई' अर्थात्, स्वद्रव्य में परिणति, सो सुगति है; परद्रव्य में परिणति, सो दुर्गति है। जिस भाव से तीर्थङ्करनामकर्म का बन्ध होता है, वह भाव भी दुर्गति है और जिस भाव से शुद्धोपयोगरूप परिणमन हो, वह सुगति है। इसलिए जिसे संसार का दु:ख अच्छा नहीं लगता हो, वह ही भगवान की वाणी सुनने के लायक है।

(4) करी जो जो वचन की तुलना रे, जो जो शोधी ने जिन सिद्धान्त, मूल मारग साँभलो जिन नो रे॥

यह जीव, संसार में बड़ी होशियारी से काम लेता है। जैसे-हर व्यापारी अपने माल को अच्छा ही बताता है लेकिन खरीददार बिना परीक्षा किये माल को नहीं खरीदता। अरे भाई! जहाँ आत्मा का सर्वस्व अर्पण कर देना है, वहाँ जो उपदेश मिलता है, वह हमारे कल्याण के लिए है या नहीं? - उसकी परीक्षा नहीं करते, वे वीतरागी मूल मार्ग सुनने के लायक नहीं हैं; इसलिए जो उपदेश मिलता है, उसकी जैनसिद्धान्त के साथ तुलना करे और जो जैनसिद्धान्त के विरुद्ध हो, वह जिनवचन नहीं है - ऐसा जानकर, पात्र जीवों को जिनमार्ग का लाभ लेना चाहिए।

प्रश्न 3- जब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति न हो, तब तक क्या करे तो सम्यक्त्व की प्राप्ति हो?

उत्तर- (1) जब तक सच्चा तत्त्वश्रद्धान न हो;

(2) यह इसी प्रकार है - ऐसी प्रतीतिसहित जीवादि तत्त्वों का स्वरूप आपको भासित न हो;

(3) जैसे - द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म में एकत्वबुद्धि है, वैसे केवल आत्मा में अहंबुद्धि न आवे;

(4) हित-अहितरूप अपने भावों को न पहिचाने, तब तक सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि है; यह जीव थोड़े ही काल में

सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा। ...क्योंकि तत्त्व विचाररहित देवादि की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, व्रतादि पाले, तपश्चरणादि करे, उसको सम्यक्त्व होने का अधिकार नहीं है और तत्त्वविचारवाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है।

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 260]

प्रश्न 4- सुख पाने के लिए पाँच बातों का विचार क्या है?

उत्तर - श्रीमद् राजचन्दजी ने पाँच बातें बतायी हैं—

(1) अल्पायु; (2) अनियतप्रवृत्ति; (3) असीम बलवान असत्सङ्ग; (4) पूर्व का प्राय: करके अनाराधकत्व; (5) बलवीर्य की हीनता।

प्रश्न 5- अल्पायु से क्या तात्पर्य है?

उत्तर - हे आत्मन्! शरीर का सम्बन्ध, अल्प समय का देखने में आता है। औसत आयु 65 वर्ष की है लेकिन तुझे पीढ़ियों की चिन्ता है। क्या यह तेरे लिए ठीक है? सबकी चिन्ता करता है, किन्तु क्या यह तेरे साथ जावेगा? विचार तो कर।

प्रश्न 6- अनियतप्रवृत्ति से क्या तात्पर्य है?

उत्तर - हे आत्मन्! विचार, साढ़े तीन हाथ तुझे जमीन चाहिए, लेकिन बड़े-बड़े महलों की चिन्ता है। आधे सेर अनाज की जरुरत है, लेकिन चिन्ता लाखों की है और उसके लिए तू रात-दिन प्रवृत्ति करता है, क्या यह योग्य है? विचार तो कर।

प्रश्न 7- असीम बलवान असत्सङ्ग से क्या तात्पर्य है?

उत्तर - हे जीव! विचार, जहाँ देखो, काम-भोग-बन्ध की बातें सुनने को मिलती है। आगे चलो तो पुण्य करो, दान करो, उपवास करो, प्रतिमा लो भला हो जावेगा, यह सब बातें सुनने को

मिलती हैं। अध्यात्म की बात तो सुनने को मिलती ही नहीं है। हे आत्मा! अनादि-अनन्त किसी से तेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है; प्रत्येक वस्तु कायम रहते हुए परिणमन करना उसका स्वभाव है। तेरा कल्याण भी तेरे से और बुरा भी तेरे से है। ऐसी बातें सुनने को मिलती ही नहीं; इसलिए असीम बलवान असत्सङ्ग कहा है। त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव जो सत् है, उसका सङ्ग छोड़कर, मात्र क्षणिकभाव का तू सङ्ग करता है, इससे तेरा हित नहीं होगा। विचार तो कर!

प्रश्न 8- पूर्व का प्राय: करके अनाराधकपना क्या है?

उत्तर - हे आत्मा! तूने अनादि काल से अपनी आत्मा की अनाराधना की है। तू इस समय अनाराधकपने को मिटाकर, आराधकपना प्रगट कर सकता है क्योंकि पञ्चम काल में जो जीव उत्पन्न होते हैं, सब मिथ्यादृष्टि होते हैं किन्तु वे वर्तमान में पुरुषार्थ से मिथ्यादर्शन को समाप्त करके, सम्यग्दर्शन प्रगट कर सकते हैं। इसलिए हे भव्य! तू अपनी आत्मा की आराधना कर और अनादि काल का अनाराधकपना मिटा दे तो तुझे सुख की प्राप्ति हो।

प्रश्न 9- बलवीर्य की हीनता से क्या तात्पर्य है?

उत्तर - यह जीव अपनी मूर्खतावश अपनी वीर्य को संसार के कार्यों में जोड़ता है, जबकि उनमें तेरा वीर्य जोड़ना व्यर्थ है। वास्तव में जो जीव, अपना वीर्य, आत्मकार्य में नहीं जोड़ता है, वह नपुंसक है जिसको पुण्य की तथा पुण्यफल की भावना है, वह नपुसंक है। स्वरूप की रचना करना, वह वीर्य है।

प्रश्न 10- अब क्या करें कल्याण का अवकाश है?

उत्तर - (1) यह अवसर चूकना योग्य नहीं है। अब सब प्रकार से अवसर आया है; ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है। ज्ञानी

गुरु दयालु होकर मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं, उसमें भव्य जीवों को प्रवृत्ति करनी चाहिए।

(2) यदि इस अवसर में भी तत्त्वनिर्णय करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमाद से काल गँवाये; मन्दरागादि सहित विषय–कषायों के कार्यों में ही प्रवर्ते तो अवसर चला जाएगा और संसार में ही भ्रमण होगा।

(3) यह जीव, सच्चे देव, गुरु और शास्त्र का भी निमित्त बन जावे, तो भी वहाँ उनके निश्चय उपदेश का तो श्रद्धान नहीं करता, परन्तु व्यवहार श्रद्धा से अतत्त्वश्रद्धानी ही बना रहता है। याद रखो– यदि तुम पुरुषार्थ करो तो स्वरूप को प्राप्त कर सकते हो और यदि समय व्यर्थ खो दिया तो अवसर चला जावेगा।

प्रश्न 11– जीव को धर्म प्राप्ति का पात्र कब कहा जा सकता है?

उत्तर – (1) जगत में जो–जो बातें और वस्तुएँ महिमावान गिनी जाती हैं – ऐसा शोभायमान गृह आदि आरम्भ, अर्थात् कषायों की प्रवृत्तियों में चतुर;

(2) अलङ्कारादि परिग्रह, अर्थात् कषायों के साथ एकत्वबुद्धि;

(3) लोकदृष्टि का विचक्षणपना (चतुराई);

(4) लोकमान्य धर्म श्रद्धावानपना, अर्थात् लोग जिसे धर्म कहे, उसकी श्रद्धा। –

जब तक जीव इन चारों को लबालब भरा प्रत्यक्ष जहर का प्याला नहीं माने, तब तक आत्मा का किञ्चितमात्र भी कल्याण नहीं हो सकता है, अर्थात् जीव को धर्म–प्राप्ति का पात्र भी नहीं कहा जा सकता है।

प्रश्न 12– 'शोभायमान गृह आदि आरम्भ' को स्पष्ट कीजिए?

उत्तर - शोभायमान गृह आदि आरम्भ, अर्थात् कषायों की प्रवृत्तियों को आरम्भ कहते हैं, अर्थात् कुछ करना, कराना आदि प्रवृत्ति का नाम आरम्भ है। बड़े-बड़े कारखाना चलाना, बड़ी-बड़ी दुकान चलाना, यह तो अल्प आरम्भ है। 'करुँ-करुँ' यह कषाय की प्रवृत्ति, यह सबसे महान आरम्भ है। जिस प्रकार कोई हलाहल जहर को पी ले, वह बच नहीं सकता; उसी प्रकार जो अनादि काल से शुभभाव की प्रवृत्ति को अच्छा माने, उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता, क्योंकि यह मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व, सात व्यसनों से भी महा भयंकर पाप है; इसलिए जब तक शुभभाव अच्छा, अशुभभाव बुरा - यह मान्यता रहती है, तब तक जीव, धर्म प्राप्त करने का पात्र नहीं कहा जा सकता है।

प्रश्न 13- 'अलंकारादि परिग्रह' को स्पष्ट कीजिए?

उत्तर - अलंकारादि परिग्रह, अर्थात् कषायों के साथ एकत्वबुद्धि। लोक में कपड़ा, धन-गहना, मोटरगाड़ी आदि को परिग्रह कहा जाता है, किन्तु वास्तव में 'इच्छा ही परिग्रह है।' समस्त प्रकार से ग्रहण किया जावे - ऐसा दया-पूजा का भाव, हितकारी या मददगार है, यह कषायों के साथ एकत्वबुद्धि है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि, दया, दान, पूजा, शास्त्र पढ़ने के भाव को हितकारी मानते हैं। जब तक उसे प्रत्यक्ष जहर का प्याला न जाने, तब तक आत्मकल्याण नहीं हो सकता, क्योंकि शुभभाव भी आस्रव -बन्धरूप, दुःखरूप, अपवित्र, जड़स्वभावी हैं। जो शुभभाव को अच्छा मानता है, उसका संसार भ्रमण बढ़ता है और वह दुःख भोगता है। ऐसा जीव, धर्म प्राप्त करने का पात्र भी नहीं कहा जा सकता है।

प्रश्न 14- 'लोकदृष्टि का विचक्षणपना' को स्पष्ट कीजिए?

उत्तर – लोकदृष्टि का विचक्षणपना, अर्थात् लौकिक चतुराई। आत्मदृष्टि का नहीं, ज्ञानदृष्टि का नहीं, परन्तु लोकदृष्टि में जो चतुर है, उस चतुरपने को जो प्रत्यक्ष हलाहल जहर का प्याला न माने, तब तक वह धर्म प्राप्त करने का पात्र नहीं कहला सकता है।

(अ) जैसे – एक आदमी पचास रुपया लेकर अफ्रीका गया, दस साल बाद घर आया और पचास लाख रुपया कमाकर लाया, उसे संसार चतुर कहता है, किन्तु जब तक संसार की चतुराई को हलाहल जहर का प्याला न जाने, तब तक धर्म पाने का पात्र नहीं है।

(आ) जैसे – कुछ चोर, चारी करने जा रहे थे। रास्ते में कोई एक बढ़ई मिला। उसने कहा, मुझे भी अपने साथ मिला लो। जब चोरी करने गये, तब बढ़ई ने सोचा कि मैं ऐसा कार्य करूँ, जिससे यहाँ का मालिक मुझे याद रखे। उसने आरी से दरवाजे के कंगूरे काटने शुरु किये। बाद में अन्दर जाने के लिए अपना पैर अन्दर रखा तो अन्दर से मालिक ने उसके पैर खीचें और बाहर से चोरों ने खीचें। विचारो, जैसे–बढ़ई को संसार की चतुराई, अपने आपको दु:ख दे गयी; उसी प्रकार शुभभाव के साथ एकत्व की चतुराई, अनन्त संसार का कारण है। मैं जानता हूँ, समझता हूँ – यह शास्त्र–अभिविनेश, आत्मकल्याण में महाविघ्न करनेवाला है।

प्रश्न 15– गुरु की वाणी सुनकर कहे, यह तो मैं जानता हूँ, वह क्या है ?

उत्तर – गणधरदेव, चार ज्ञान के धारी, जो एक अन्तर्मूहर्त में बारह अङ्ग की रचना करते हैं, वे भी केवली के ज्ञान के सामने अपने ज्ञान को कुछ भी नहीं गिनते। भगवान की वाणी, चौबीस घण्टों में चार बार खिरती है। एक बार छह घड़ी तक दिव्यदेशना भव्य प्राणियों के निमित्त होती है। इस प्रकार चौबीस घण्टों में साढ़े नौ

घण्टों से ज्यादा समय वाणी खिरती है। उसमें गणधर की हाजरी अवश्य होती है। हम कहें, हमने समझ लिया - ऐसा जब तक परलक्ष्यी ज्ञान का शास्त्रीय अभिनिवेश रहता है, तब तक वह धर्म प्राप्त करने का पात्र नहीं कहा जा सकता है।

(इ) मैं लोगों के काम बड़ी होशियारी से पार उतार देता हूँ - जिसकी ऐसी बुद्धि रहे, वह धर्म पाने का पात्र नहीं कहा जा सकता है।

प्रश्न 16- 'लोकमान्य धर्म श्रद्धावानपना' को स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर - लोकमान्य धर्म श्रद्धावानपना, अर्थात् लोग जिसे धर्म कहें। जैसे यह सात प्रतिमाधारी है; यह ग्यारह प्रतिमाधारी है; यह अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करता है; यह महीनों का उपवास करता है; यह दिन में तीन बार सामायिक करता है; यह करोड़ों रुपयों का दान करता है; यह बड़ा दयालु है; यह अपने पास एक वस्त्र भी नहीं रखता है; संसार की दृष्टि में यह महात्मा बन जाता है। जीव जब तक दृष्टि में इन सब शुभभावों को हलाहल जहर का प्याला न जाने, तब तक वह धर्म पाने का पात्र नहीं कहला सकता है।

प्रश्न 17- जिन बातों से हम धर्म मानते आ रहे हैं, आपने तो उन सब बातों का निषेध कर दिया। अब हम क्या करें ?

उत्तर- लोक में अनादि काल से मिथ्यादृष्टि जीव, परलक्ष्यी ज्ञान और पुण्य की मिठास में ही अपना कल्याण होना मानते हैं; इसीलिए वे एक-एक समय करके अनादि से संसार के पात्र हो रहे हैं। उनके कल्याण के निमित्त कहा है कि, जब तक जीव को परलक्ष्यी ज्ञान और पुण्य की मिठास में दृष्टि रहेगी, तब तक धर्म पाने का अधिकार नहीं है। इन चारों में से किसी भी प्रकार की जरा भी मिठास रहेगी, तब तक उसके मिथ्यात्व का नाश नहीं होगा।

चाहे वह द्रव्यलिङ्गी मुनि कहलावे, तो भी वह संसार का ही पात्र बना रहेगा; इसलिए कहा जाता है कि जब तक परलक्ष्यी ज्ञान और पुण्य की मिठास रहेगी, तब तक उसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की श्रद्धा नहीं हो सकती और जब तक पर्याय में शुभभाव रहेगा, तब तक पर्याय में सर्वज्ञ-सर्वदर्शी नहीं बन सकता।

प्रश्न 18- परलक्ष्यी ज्ञान और पुण्य की मिठास से बचने का कुछ उपाय है?

उत्तर- हाँ है; परलक्ष्यी ज्ञान और शुभभावों की रुचि छोड़कर, एकमात्र अपने वीतराग-सर्वज्ञ-स्वभावी आत्मा की ही रुचि करना; उसका ही ज्ञान करना, और उसी में लीनता करना, यह एकमात्र उपाय है।

प्रश्न 19- वर्तमान में सर्वज्ञदेव विराजमान नहीं हैं, सच्चे गुरु भी दृष्टि में नहीं आते - ऐसी दशा में किसकी सीख और किसकी आज्ञा माने?

उत्तर - भाई! वर्तमान में अरहन्त भगवान साक्षात् विराजमान नहीं है; सच्चे भावलिङ्गी मुनि भी प्रायः करके दृष्टि में नहीं आते हैं - यह बात ठीक है परन्तु अनादि से जो देव की आज्ञा है, गुरु की आज्ञा है, उसको ही बतानेवाले सम्यग्दृष्टि जीव हैं। उन्होंने (सम्यग्दृष्टी जीवों ने) वर्तमान में पात्र जीवों को भगवान अरहन्त का विरह भुला दिया है और पञ्चम काल को चौथा काल बनाया है - ऐसे स्वानुभवी महान सम्यग्दृष्टि जीव हैं। वर्तमान में जो आज्ञा देव की है, वही ज्ञानी बता रहे हैं; इसलिए निमित्तरूप से पात्र जीवों की आज्ञा, सीख और विश्वास सम्यग्दृष्टियों का करना है।

वास्तव में वर्तमान में साक्षात् सरस्वती की मूर्ति सम्यग्दृष्टि ही दृष्टिगोचर होते हैं; इसलिए ज्ञानियों की सीख, आज्ञा और विश्वास

करके, अपने आत्मा का कल्याण कर लेना ही पात्र जीव का धर्म है।

प्रश्न 20- अध्यात्म शैली में श्रीमद्‌राजयन्द्रजी ने मङ्गलरूप पाठ में सात दिनों को कैसे-कैसे उतारा है ?

उत्तर - श्रीमद् राजचन्द्रजी ने 16 वर्ष की उम्र में मोक्षमाला ग्रन्थ में 108 पाठ लिखे हैं। उसमें अन्तिम पाठ मङ्गलरूप है। उसमें यह सात वार उतारे हैं।

तपोपध्याने रविरूप, थाय, वो साधकर— सोम रही सुहाय।
महान वे-मङ्गल पंक्ति पामे, आवे पिछे वे बुध के प्रणामे ॥1 ॥
निर्गन्थ ज्ञाता-गुरु सिद्धि दाता, या तो स्वयं-शुक्र प्रपूर्ण ख्याता।
त्रियोग वहाँ केवल-मन्द पामे, स्वरूप सिद्धे, विचरी विरामे ॥2 ॥

अर्थ - (1) **रविवार**— 'तपोध्याने रविरूप थाय', अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मुनिपने के द्वारा निश्चयसम्यग्दर्शनपूर्वक, निज शुद्धात्मतत्त्व के उग्र आलम्बन के बल द्वारा स्वरूप विश्रान्त निस्तरङ्ग चैतन्य में प्रतापवन्त रहना, शुभाशुभ इच्छा का स्वयं उत्पन्न नहीं होना, वह इच्छानिरोध तप है, वही सच्चा तप है। धर्मध्यानमयी तपरूप मुनिपने के द्वारा यह जीव, चैतन्यप्रकाशमय रविरूप होता है।

(2) **सोमवार** - (चन्द्र को सोम कहते हैं) वो साधकर 'सोम रही सुहाय', अर्थात् मुनिपना को साधकर, चन्द्रसमान शान्तस्वरूप में सुशोभित रहते हैं।

(3) **मङ्गलवार** - 'महान वे - मङ्गल पंक्ति पामे', अर्थात पुण्य-पापरूपी मलरहित और पवित्रतासहित महान् उत्तम मङ्गल की पंक्ति को प्राप्त होता है।

(4) **बुधवार** - 'आवे पिछे व बुध के प्रणामे', अर्थात् वह बुधजन / ज्ञानियों द्वारा वन्दनीय होते हैं।

(5) **गुरुवार** – 'निर्ग्रन्थ ज्ञाता गुरु सिद्ध दाता', अर्थात् ऐसे गुरु निर्ग्रन्थ हैं, स्व–पर के ज्ञाता हैं और वह ही सिद्धि के दाता हैं।

(6) **शुक्रवार** – 'या तो स्वयं शुक्र प्रपूर्ण ख्याता', अर्थात् वह स्वयं परिपूर्ण वीर्य प्रगट करके प्रसिद्ध होते हैं। (13 वाँ गुणस्थान है।)

(7) **शनिवार** – 'त्रियोग वहाँ केवल मन्द पामे', अर्थात यहाँ चौदहवां गुणस्थान लेना है, यहाँ त्रियोग केवल मन्द का अभाव होता है। मन्द कहो, शनी कहो, एक ही बात है।

फल – 'स्वरूप सिद्ध विचरी विरामे', अर्थात् उसके बाद जीव अल्प काल में सिद्ध परमात्मा हो जाते हैं और सादि–अनन्त काल तक लोकग्रस्थित निज अक्षय अनन्त सुख में विश्रान्ति पाते हैं।

प्रश्न 21– आप कहते हो संसार में सुख नहीं है, हम तो लोगों को सुखी देखते हैं ?

उत्तर – संसार में दुःख ही है, सुख नहीं है, क्योंकि विचारो— कोई पुण्यशाली जीव है, उसके विषय में विचारते हैं —

(1) सुबह क्यों उठता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(2) शौच क्यों जाता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(3) हाथ क्यों धोता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(4) स्नान क्यों करता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(5) कपड़े क्यों पहनता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(6) मन्दिर क्यों जाता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(7) मोटर में क्यों बैठता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(8) रोटी क्यों खाता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(9) पानी क्यों पीता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(10) दुकान पर क्यों जाता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(11) रुपया क्यों इकट्ठा करता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(12) आराम क्यों करता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(13) शास्त्र क्यों पढ़ता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(14) दवाई क्यों खाता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(15) भोग क्यों करता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

(16) सफर क्यों करता है ? **उत्तर** – दुःखी है, इसलिए।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव, संसार में दुःखी ही है।

प्रश्न 22– हमें धर्म की प्राप्ति क्यों नहीं होती है ?

उत्तर – जिसका (आत्मा के आश्रय का) नम्बर रखना चाहिए सबसे पहले; उसका नम्बर रखता है आखरी में; इसलिए धर्म की प्राप्ति नहीं होती है। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने किसी से पूछा, तुम धर्म क्यों नहीं करते ? उसने कहा कि समय नहीं मिलता है, हम क्या करें ?

श्रीमद् ने पूछा – (1) सोने का समय मिलता है ? हाँ, मिलता है। (2) घूमने का समय मिलता है ? हाँ मिलता है। (3) रोटी खाने, पानी पीने का समय मिलता है ? हाँ मिलता है। (4) अखबार पढ़ने का समय मिलता है ? हाँ, मिलता है। (5) बही देखने का समय मिलता है ? हाँ, मिलता है। (6) दुकानदारी का समय मिलता है, हाँ, मिलता है।

अरे भाई ! तेरी ऐसी मान्यता है कि उपरोक्त कार्य किये बिना मैं दुःखी हो जाऊँगा; अतः इन सबके लिए समय निकालता है। यह तो दृष्टान्त है; उसी प्रकार यदि तेरी समझ में आ जावे कि आत्मधर्म किए बिना मुझको अनन्त काल तक दुःख भोगना पड़ेगा तो 'धर्म करने के लिए मुझे समय नहीं मिलता' – ऐसी बहानेबाजी कभी नहीं करोगे। तात्पर्य यह है कि धर्म करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए।

13

वीतरागता-विज्ञानता के विविध प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1- क्या जीव मेहनत करता है, तभी रुपये-पैसे आदि का सम्बन्ध होता है?

उत्तर - वर्तमान में जीव, मेहनत करता है, उसके साथ संयोग आदि का सम्बन्ध नहीं है। 'सर्व जीवों के जीवन-मरण, सुख -दु:ख, अपने कर्म के निमित्त से होता है।' जहाँ एक जीव, अन्य जीव के इन कार्यों का कर्ता हो, वही मिथ्याध्यवसाय, बन्ध का कारण है; अत: संयोग आदि में वर्तमान चतुराई कोई कार्यकारी नहीं है।

प्रश्न 2- संयोग आदि के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 168 में क्या बताया है?

उत्तर - 'अज्ञानी मनुष्यों में ऐसी कहावत है कि इस जीव ने, इस जीव को मारा; इस जीव ने, इस जीव को जिलाया; इस जीव ने, इस जीव को सुखी किया; इस जीव ने इस जीव को दु:खी किया - ऐसी कहावत है। ऐसी प्रतीति जिस जीव को होवे, वह जीव, मिथ्यादृष्टि है - ऐसा नि:सन्देह जानियेगा, धोखा कुछ नहीं। ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि क्यों है? जिस जीव ने अपने विशुद्ध अथवा संक्लेषरूप परिणाम के द्वारा पहले ही बाँधा है जो आयुकर्म अथवा साताकर्म अथवा असाताकर्म; उस कर्म के उदय से उस जीव को मरण अथवा जीवन अथवा दु:ख अथवा सुख होता है - ऐसा निश्चय है परन्तु इसके विपरीत, मैं दूसरों का अथवा दूसरे मेरा

जीवन-मरण, सुखी-दु:खी करते हैं - आदि विपरीतमान्यता होने के कारण, ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है।'

प्रश्न 3- संयोग आदि के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 169 में क्या लिखा है ?

उत्तर - 'मैं देव, मैं मनुष्य, मैं तिर्यञ्च, मैं नारकी, मैं सुखी, मैं दु:खी - ऐसी कर्मजनित पर्यायों में है आत्मबुद्धिरूप जो मग्नपना, उसके द्वारा कर्म के उदय से जितनी क्रिया होती है, उसे मैं करता हूँ, मैंने किया है, ऐसा करुँगा - ऐसे अज्ञान को लिए हुए मानते हैं, वे जीव कैसे हैं ? आत्माघाती हैं।'

प्रश्न 4- संयोगादि के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 170 में क्या लिखा है ?

उत्तर - 'इस मिथ्यादृष्टि जीव के मिथ्यात्वरूप है जो ऐसा परिणाम, कि इस जीव ने इस जीव को मारा, इस जीव ने इस जीव को जिलाया - ऐसा भाव, ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध का कारण होता है। ऐसा भाव, कर्मबन्ध का कारण क्यों है ? ऐसा भाव, मिथ्यात्वभावरूप होने से कर्मबन्ध का कारण है।'

प्रश्न 5- संयोगादि के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 171 में क्या लिखा है ?

उत्तर - 'मिथ्यादृष्टि जीव अपने को जिसरूप नहीं आस्वादता - ऐसी परद्रव्य की पर्याय व अपना शुभाशुभविकल्प त्रैलोक्य में है ही नहीं। यह परिणाम कैसे हैं ? झूठा है, क्योंकि मारने को कहता है, जिलाने को कहता है, तथापि जीवों का मरना-जीना अपने-अपने कर्म के उदय के हाथ है; इसके परिणामों के आधीन नहीं है। यह अपने अज्ञानपन को लिए हुए ऐसे अनेक झूठे विकल्प करता है।

प्रश्न 6- संयोगादि के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 172 में क्या लिखा है?

उत्तर - जिस मिथ्यात्वरूप परिणाम के कारण जीवद्रव्य, आपको मैं देव, मैं मनुष्य, मैं क्रोधी, मैं मानी, मैं दुःखी, मैं सुखी, इत्यादि नानारूप अनुभवता है। आत्मा कैसा है? कर्म के उदय से हुई समस्त पर्यायों से यद्यपि भिन्न है - ऐसा है। अज्ञानी, कर्म के उदयरूप पर्यायों का आपरूप अनुभवता है।

प्रश्न 7- संयोगादि के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 173 में क्या लिखा है?

उत्तर - मैं मारुँ, मैं जिलाऊँ, मैं दुःखी करुँ, मैं सुखी करुँ, मैं देव, मैं मनुष्य, इत्यादि है जो मिथ्यात्वरूप असंख्यात लोकमात्र परिणाम, वे समस्त हेय हैं। परमेश्वर केवलज्ञान विराजमान, उन्होंने ऐसा कहा है।

प्रश्न 8- संयोगादि के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 174 में क्या लिखा है?

उत्तर - अहो स्वामिन! अशुद्ध चेतनारूप हैं राग-द्वेष-मोह इत्यादि असंख्यात लोकमात्र विभावपरिणाम, वे ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध के कारण हैं - ऐसा कहा, सुना, जाना, माना। कैसे हैं वे भाव? शुद्ध ज्ञानचेतनामात्र है जो ज्योतिस्वरूप जीव, वस्तु उससे बाहर है।

प्रश्न 9- संयोगादि के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 178 में क्या लिखा है?

उत्तर - 'शुद्धस्वरूप उपादेय है; अन्य समस्त परद्रव्य हेय है'

प्रश्न 10- संयोगादि के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 167 में क्या लिखा है?

उत्तर - परद्रव्य सामग्री में है जो अभिलाषा, वह केवल मिथ्यात्वरूप परिणाम है - ऐसा गणधरदेव ने कहा है।

प्रश्न 11- संयोगादि के सम्बन्ध में लौकिक दृष्टान्त देकर समझाइये।

उत्तर - [अ] वर्तमान में एक कसाई, हजार गायों को मारता है। उसके बदले में उसे दो हजार रुपया मिलता है। गायों को मारने का भाव, पापभाव है। क्या पापभाव से रुपयों की प्राप्ति का संयोग सम्बन्ध हो सकता है? कभी भी नहीं।

[आ] डाक्टर एक मेंढ़क चीरता है, उससे ज्ञान का उघाड़ देखा जाता है। यदि सौ मेंढक चीरे जावें, तो बहुत ज्ञान का उघाड़ होना चाहिए? मेढ़क चीरने का भाव पापभाव है। क्या पापभाव से ज्ञान का उघाड़ हो सकता है? कभी भी नहीं।

[इ] एक जीव, सुबह से शाम तक मेहनत करता है, फिर भी एक पैसा नहीं मिलता और कोई मेहनत नहीं करे तो भी लाखों रुपया मिलता है - ऐसा देखने में आता है।

इसलिए रुपया कमाने में वर्तमान चतुराई कार्यकारी नहीं है, वह तो पूर्व में पुण्य-पापभाव किया था, उसका फलस्वरूप संयोग देखने में आता है।

प्रश्न 12- जीव की चतुराई किसमें है?

उत्तर - वास्तव में जीव का कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। वह संयोग आदि में कुछ फेरफार करे - ऐसा है ही नहीं। ऐसा जानकर, अपने त्रिकालीस्वभाव का आश्रय लेकर, ज्ञाता-दृष्टा बनना और स्वभाव की एकाग्रता करके धर्म की वृद्धि, और पूर्णता करना ही जीव की चतुराई है।

प्रश्न 13- क्या बाह्यसंयोग के अनुसार, सुख-दुःख या राग-द्वेष का माप है?

उत्तर - नहीं है (1) एक के पास सौ रुपया है, उसने एक हजार की इच्छा की, उसके पास एक हजार हो गया तो वह अपने को सुखी मानता है और दूसरे के पास एक लाख रुपया है, उसका एक हजार खो गया तो वह अपने को दुःखी मानता है। विचारो! एक के पास 99 गुना अधिक रुपया है, वह अपने को दुःखी मानता है और एक हजारवाला अपने को सुखी मानता है। इससे सिद्ध होता है कि बाहर के संयोग अनुसार सुख-दुःख का माप नहीं है।

(2) एक को 99 डिग्री बुखार है, वह ज्यादा दुःखी दिखायी देता है और दूसरे को 105 डिग्री बुखार है, वह शान्त दिखायी देता है। विचारो! यदि बाह्य संयोग अनुसार सुख-दुःख होता तो 105 डिग्रीवाला विशेष दुःखी होना चाहिए था, सो नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि बाह्यसंयोग के अनुसार राग-द्वेष का माप नहीं है; पर में एकत्वबुद्धि ही एकमात्र दुःख का कारण है।

प्रश्न 14- क्या बाह्य राग-द्वेष के अनुसार, ज्ञानी-अज्ञानी का माप है?

उत्तर - नहीं है, क्योंकि (1) एक द्रव्यलिङ्गी मुनि है, उसको कषाय बहुत मन्द है, उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं, फिर भी वह अज्ञानी है; और

(2) दूसरा, ज्ञानी चक्रवर्ती है जो 96 हजार स्त्रियों के वृन्द में बैठा हो; कभी लड़ाई भी लड़ता हो; तीर पर तीर चलाता हो; उसे बाह्य में तीव्र कषाय देखने में आती है और बाह्य संयोग भी बहुत देखने में आता हो, फिर भी वह ज्ञानी है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि बाह्य राग-द्वेष अनुसार ज्ञानी-अज्ञानी का माप नहीं है। इसमें से

दो बोल निकलते हैं—(1) बाह्यसंयोग अनुसार, राग-द्वेष का माप नहीं है। (2) बाह्य राग-द्वेष अनुसार, ज्ञानी-अज्ञानी का माप नहीं है।

क्योंकि श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, अध्याय दूसरा, पृष्ठ 40 में लिखा है कि 'परम कृष्णलेश्यारूप तीव्रकषाय हो, वहाँ भी और शुक्ललेश्यारूप मन्दकषाय हो वहाँ भी निरन्तर चारों ही कषायों का उदय रहता है, क्योंकि तीव्र-मन्द की अपेक्षा, अनन्तानुबन्धी आदि भेद नहीं है।

प्रश्न 15- शास्त्राभ्यास किसलिए और कैसे करना चाहिए ?

उत्तर - एक कारीगर ने तीन पुतलियाँ बनायी। तीनों देखने में एक सी लगती थीं। वह उनको बेचने के लिए राजा के दरबार में पहुँचा। राजा ने मन्त्री से तीनों का मूल्य लगाने के लिए कहा लेकिन मन्त्री की समझ में नहीं आया। आठ दिन बाद तीनों पुतलियों की कीमत बताने की मन्त्री ने अनुमति माँगी। उनकी कीमत बताने के लिए आज सातवाँ दिन समाप्त होने को है परन्तु मन्त्री को कुछ समझ में नहीं आया। मन्त्री ने एक सलाई एक पुतली के कान में डाली, वह आर-पार निकल गयी। दूसरी पुतली के कान में डाली, वह मुँह से निकल गयी और तीसरी पुतली के कान में डाली, तो अन्दर समा गयी। मन्त्री बड़ा प्रसन्न हुआ।

राजदरबार में आकर मन्त्री ने तीसरी पुतली की कीमत एक लाख रुपया लगायी, बाकी दो पुतलियों की एक फूटी कौड़ी भी नहीं। मन्त्री से यह बात स्पष्ट करने को कहा कि जबकि तीनों पुतलियाँ एक सी हैं तो दो की कीमत कुछ नहीं और तीसरी की एक लाख रुपया क्यों है ? मन्त्री ने कहा, नम्बर एक पुतली से जो कुछ कहा जावे तो यह तभी दूसरे कान से निकाल देती है; नम्बर दो पुतली जो कुछ भी सुनती है, वह दूसरों को सुना देती है; नम्बर तीन

पुतली जो कुछ भी सुनती है, वह अपने में पचा लेती है; उसी प्रकार (1) जो जीव, शास्त्र पढ़ता है या सुनता है; इधर सुना, उधर निकाल दिया या पता ही नहीं, क्या सुना या क्या पढ़ा; यह व्यर्थ है।

(2) जो जीव, शास्त्र इसलिए पढ़ता है या सुनता है, कि मैं सुनकर दूसरों को बताऊँ तो लोग मेरा मान-आदर करें; यह भी व्यर्थ है।

(3) जो जीव, शास्त्राभ्यास अपने कल्याण के लिए करता है या सुनता है, अपने जीवन में घटित करता है, वह ही धन्य है। जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा का वैसा निर्णय करने से मन्दकषाय हो जाती है और विशेष पुरुषार्थ करे तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है; इसलिए शास्त्राभ्यास हमेशा अपने कल्याण के निमित्त ही कार्यकारी है।

प्रश्न 16- जैनधर्म का सेवन किसलिए है और किसलिए नहीं है ?

उत्तर - जैनधर्म का सेवन तो संसार नाश के लिए किया जाता है परन्तु जो जीव, शास्त्र पढ़कर-सुनाकर; पूजा करके; सिद्धचक्र आदि का पाठ करके रुपया-पैसा लेते हैं, वह तो पापी भी हैं और मिथ्यादृष्टि तो हैं ही। इसलिए पात्र जीव, हिंसादि से आजीविकादि के अर्थ व्यापारादि करता है तो करे, परन्तु पूजा आदि कार्यों में तो आजीविकादि प्रयोजन विचारना योग्य नहीं है। जो जीव, रुपया -पैसा लेकर आजीविका आदि के अर्थ, धर्म की बातें करते हैं, वे पापी है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 219]*

प्रश्न 17- वर्तमान में ज्ञानी जीव तो मिलते नहीं, तब रुपया-पैसा देकर हम शास्त्र-अभ्यास करे तो क्या नुकसान है ?

उत्तर - श्रद्धानादिक गुणों के धारी वक्ताओं के मुख से ही

शास्त्र सुनना। इस प्रकार के गुणों के धारक मुनि अथवा श्रावक -सम्यग्दृष्टि, उनके मुख से तो शास्त्र सुनना योग्य है और पद्धतिबुद्धि से अथवा शास्त्र सुनने के लोभ से श्रद्धानादिक गुणों से रहित, पापी पुरुषों के मुख से शास्त्र सुनना उचित नहीं है क्योंकि जिसको शास्त्र बाँचकर आजीविका आदि लौकिक कार्य साधने की इच्छा हो, वह आशावान यथार्थ उपदेश नहीं दे सकता; इसलिए मिथ्यादृष्टि चाहे वह कोई क्यों ना हो, उससे उपदेश आदि नहीं सुनना चाहिए। जैसे – लौकिक में जिसको जो कार्य आता हो, वही उस कार्य को सुचारु रूप से कर सकता है, दूसरा नहीं; उसी प्रकार सच्चे गुरुगम बिना, शास्त्रों का अभ्यास अनर्थकारी है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 17]*

प्रश्न 18– अनादि काल की भूल कैसे मिटे ?

उत्तर – जहाँ भूल है, वहाँ भूल को देखना, यही भूल को मिटाने का एकमात्र उपाय है। (1) जैसे – मुँह पर दाग है और सामने दर्पण है। यदि दाग को मिटाने के लिए हम दर्पण को रगड़ें तो क्या मुँह का दाग दूर हो जावेगा ? कभी भी नहीं; उसी प्रकार गलती तो अपनी पर्याय में है, उसे दूर करने के लिए दूसरों का दोष देखें तो क्या कभी गलती दूर होगी ? कभी भी दूर नहीं होगी।

(2) जैसे – सामने दर्पण है। यदि हमारा मुँह टेढ़ा है तो दर्पण में टेढ़ा दिखायी देगा, उसमें दर्पण का कोई दोष नहीं; यदि हम मुँह को टेढ़ा नहीं देखना चाहते तो उसका उपाय मुँह को सीधा करना है; उसी प्रकार दोष तो अपने में है, देखते हैं कर्म का या परद्रव्य का। यदि हम अपने में दोष नहीं देखना चाहते तो अपने स्वभाव का आश्रय लें।

(3) जैसे – एक स्त्री, जल भरने गयी। रास्ते में पीतल का कलशा गिर गया और उसमें खड्डा पड़ गया। यदि उस खड्डे को

ऊपर उठाने के लिए ऊपर से हथौड़ा मारे तो वह ऊपर नहीं आवेगा, बल्कि बढ़ता चला जावेगा। उसे ठीक करने का उपाय मात्र अन्दर से चोट मारे तो ठीक हो सकता है; उसी प्रकार अज्ञानी जीव, सुख -शान्ति-ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए बाह्यसामग्री, विकार की ओर दृष्टि करते हैं तो उन्हें सुख-शान्ति-ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। जिसमें से सुख-शान्ति-ज्ञान आता है, यदि उसमें दृष्टि दें, तो ही उसकी प्राप्ति हो सकती है।

(4) आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि 'तत्त्वनिर्णय न करने में किसी कर्म का दोष नहीं, तेरा ही दोष है और जो अपना दोष कर्मादिक को लगाता है तो तू स्वयं महन्त होना चाहता है, सो जिन-आज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है।' *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 312]*

(5) जैसे - कोई अपने हाथ में पत्थर लेकर अपना सिर फोड़ ले तो पत्थर का क्या दोष ? उसी प्रकार जीव अपने रागादिक भावों से पुद्गल को कर्मरूप परिणमित करके अपना बुरा करे तो कर्म का क्या दोष है ? *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 90]*

(6) श्रीसमयसार, कलश 220 तथा 221 में लिखा है कि जीव का ही दोष है; कर्मादि का नहीं। जो पर का दोष देखते हैं, वह मोह नदी को कभी भी पार नहीं कर सकते हैं। इसलिए हे भव्य! अपनी पर्याय में दोष अपने अपराध से है, दूसरे के कारण नहीं - ऐसा जानकर, अपने स्वभाव का आश्रय ले तो दोषरहित स्वभाव दृष्टि में आवे, धर्म की प्राप्ति हो, तब अनादि की भूल मिटे।

प्रश्न 19- जबकि 'ज्ञान से ज्ञान होता है' तब वाणी सुनो, सत्समागम करो - ऐसा उपदेश क्यों देते हैं ?

उत्तर - भगवान के गणधर चार ज्ञानधारी होते हैं और गणधर

की उपस्थिति, भगवान की देशना के समय अवश्य ही होती है। भगवान की दिव्यदेशना एक दिन में चार बार होती है। एक बार दिव्यदेशना छह घड़ी होती है; इस प्रकार एक दिन में नौ घण्टे से ज्यादा तो दिव्यदेशना धर्म वजीर गणधर भी श्रवण करते हैं। धर्मवजीर गणधर अन्तर्मुहूर्त में बारह अङ्ग की रचना करते हैं – इतने ज्ञान के धनी होने पर भी भगवान की वाणी सुनते हैं, तब अल्पज्ञानी या अज्ञानी के लिए उसका निषेध कैसे हो सकता है ? कभी नहीं। परन्तु जो जीव स्वच्छन्दी हैं, पूरी बात का विचार नहीं करते, वे ही ऐसा कहते हैं कि 'जब ज्ञान से ज्ञान होता है, तब वाणी, सत्समागम की क्या आवश्यकता है ?' लेकिन याद रखना चाहिए – जब तक जीव, विकाररहित नहीं होता, तब तक अल्पज्ञानी को वाणी सुनने का और सत्समागम करने का भाव आता ही है। तब जो अज्ञानी है, उनको तो निरन्तर सत्समागमादि होना ही चाहिए। उपदेश तो हमेशा आगे बढ़ने का ही दिया जाता है। जब तक केवलज्ञान न हो, तब तक ज्ञानी भी वाणी श्रवण करते हैं। जो अपनी आत्मा में पूर्ण स्थिरता करके अरहन्त-सिद्ध बन जाते हैं, उनकी बात; तथा जो श्रेणी आरूढ़ होते हैं, उनकी बात यहाँ पर नहीं है।

प्रश्न 20- हमने तो भगवान की वाणी अनन्त बार सुनी है परन्तु भगवान की वाणी के सामने गुरु की वाणी की क्या कीमत है ?

उत्तर – अज्ञानी कहता है कि मैंने अनेकों बार भगवान की दिव्यवाणी को सुना है, अब गुरु की वाणी का मेरे ऊपर क्या असर होना है ?

(1) देखो भाई ! जैसे एक राजा था। उसके पास बहादुर लड़ाका एक ऊँट था। दूसरे राजा ने उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी। वहाँ की

जमीन रेतीली थी, वहाँ पर घमासान लड़ाई हुई। उस बहादुर लड़ाके ऊँट ने बड़ी बहादुरी दिखायी। ऊँट की बहादुरी के कारण दूसरा राजा परास्त हो गया। राजा, ऊँट की बहादुरी से बड़ा प्रसन्न हुआ। राजा ने उसको इनाम के बदले में एक ऐलान निकाल दिया कि 'ऊँट अपनी इच्छानुसार जिस किसी के भी खेत में जाकर चर सकता है, उसे कोई मारे नहीं, यदि मारेगा तो दण्ड का भागी होगा।' एक बार वह ऊँट हरे भरे बड़े खेत में चला गया और चरने लगा। वहाँ के मालिक ने ढोल टाँग रखा था, ताकि उसके बजाने पर जानवर भाग जावें और खेत खराब ना करें। मालिक ने कई जानवरों के साथ ऊँट को खेत में चरते हुए देखकर, ढोल बजाना शुरु किया। आवाज सुनकर और सब जानवर तो डर कर गये, ऊँट चरता ही रहा। मालिक जोर-जोर से ढोल बजाता हुआ, ऊँट के नजदीक आया। तब ऊँट ने कहा कि मैंने बड़ी-बड़ी लड़ाईयाँ लड़ी हैं और बड़ी -बड़ी तोप, बन्दूकों की गर्जना सुनी है। मैं तेरे ढोलरूप पीपनी की आवाज सुनकर नहीं भाग सकता।

उसी प्रकार (अ) यहाँ पर मिथ्यात्वरूप ऊँट है, (आ) बन्दूक -तोपों की गर्जनारूप भगवान की दिव्यध्वनि हैं, (इ) ढोलरूप पीपनी की आवाजरूप गुरु की अमृतमयी वाणी है। मिथ्यात्वरूप ऊँट कहता है, कि मैंने अनन्त बार समवसरण में तोपों-गोलों की आवाजरूप भगवान की दिव्यध्वनि सुनी है; अब यह तेरी ढोलरूप पीपनी की आवाजरूप गुरु की वाणी मेरे लिए कुछ भी नहीं है।

(2) ऐसे ही व्यवहाराभासी के नशे में निश्चय-व्यवहार के अर्थ को न जाननेवाले अज्ञानीजन बकते हैं कि हमने भी शास्त्र पढ़े हैं, हम भी समयसार पढ़ते हैं, गोम्मटसार के अभ्यासी हैं, इनके सामने गुरु की वाणी कुछ नहीं है।

(3) वास्तव में जब तक जीव पर मिथ्यात्वरूपी भूत चढ़ा रहता है, तब तक उसे भगवान की दिव्यदेशनारूप गुरु की वाणी का बहुमान आता ही नहीं। पात्र जीव को, जब तक वह पूर्ण नहीं हो जाता, तब तक अपने से बड़ों के प्रति आदर का भाव आता ही है। उनकी वाणी, सत्समागम और अपूर्ण शुद्धपर्याय का ऐसा ही कोई निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है। शुद्धि के साथ जो अशुद्धि है, उस अशुद्धि का और वाणी का निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है; शुद्धि का नहीं। इसका प्रगट रहस्य का अनुभव, सम्यग्दर्शन होने पर ही होता है।

प्रश्न 21- चौथे-पाँचवे-छठवें गुणस्थान में ज्ञानियों की कैसा-कैसा राग आता है ?

उत्तर - (1) चौथे गुणस्थान में निश्चयसम्यग्दर्शन प्रगट होता है, तब सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति आदर का भाव आता है; कुदेव-कुगुरु के प्रति नहीं आता है।

(2) पाँचवें गुणस्थान में बारह अणुव्रतादि का शुभभाव तथा छठवें गुणस्थान में अट्ठाईस मूलगुण पालन का विकल्प आता है। इस भूमिका में ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध होता है।

प्रश्न 22- चन्दन क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर - जैसे - चन्दन को घिसो तो वह सुगन्ध देता है; चन्दन पर कुल्हाड़ी मारो तो वह कुल्हाड़ी को भी सुगन्धित बना देता है; चन्दन को जलाओ, तब भी वह अपनी सुगन्ध को नहीं छोड़ता है; उसी प्रकार हे आत्मा! जब तुम्हें चन्दन के समान कोई घिसता नहीं, काटता नहीं और जलाता नहीं, तब तुम अपने ज्ञाता-दृष्टास्वभाव को क्यों छोड़ते हो! देखो! चन्दन पर कैसी-कैसी मुसीबत आने पर भी वह अपना सुगन्धी का स्वभाव नहीं छोड़ता; उसी प्रकार हे आत्मा! तू अपने ज्ञायकस्वभाव को साथ रखे तो संसार की कितनी

ही प्रतिकूलता क्यों न हो, तुझे दु:खी नहीं कर सकतीं। चन्दन पर जैसी-जैसी मुसीबतें आती हैं, वैसी तेरे साथ नहीं; इसलिए तू अपने ज्ञायकस्वभाव को पहिचाने तो 'चन्दन' को जाना कहलायेगा।

प्रश्न 23- गन्ना क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर - जैसे - गन्ने को कोल्हू में पेलकर रस निकालते हैं; रस को खूब औटा करके गुड़ बनता है - यह हमेशा मीठा ही लगता है; उसी प्रकार हे आत्मा! जब तुम्हें गन्ने के समान कोई पेलता नहीं, औटाता नहीं, तब तुम व्यर्थ में क्यों आकुलित होते हो ? इसलिए हे आत्मन! तुम त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लो, तो हमेशा गन्ने के समान मीठा (अतीन्द्रिय) ही स्वाद आयेगा और चारों गतियों का भवभ्रमण मिट जायेगा। गन्ना हमें यह शिक्षा देता है कि जिस प्रकार मैं अपने मीठेपने के स्वभाव को कितनी ही प्रतिकूलता आने पर भी नहीं छोड़ता, तब तुम भी अपने ज्ञाता-दृष्टास्वभाव को कितनी ही प्रतिकूलता आने पर भी मत छोड़ो।

प्रश्न 24- सोना क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर - जैसे - सोने को गलाओ तो वह मैल को छोड़ देता है; उसी प्रकार हे आत्मा! तुम्हें कोई सोने के समान गलाता नहीं, तपाता नहीं है, तो फिर तुम क्यों आकुलित होते हो ? सोना, सुनार से कहना है कि -

हे हेमकार, पर दु:ख विचारमूढ़,
किं माँ मुहु:क्षिपसि वार शतानि वन्हौ।
दग्धे पुनर्मयि भवन्ति गुणातिरेको,
लाभः परं खलु मुखे तव भस्म पातः॥

हे सुनार! तुम मुझे बार-बार अग्नि में क्यों तपाते हो ? तुम मुझे चाहे कितनी ही बार अग्नि में तपाओ, उससे मेरे तो शुद्धि की वृद्धि

ही होती है लेकिन तुझे मुँह में राख के अलावा कुछ भी लाभ नहीं मिलेगा।

सोने से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हे आत्मा! जिस प्रकार सोने पर मुसीबतें आने पर भी, वह शुद्ध ही होता जाता है; उसी प्रकार सांसारिक प्रतिकूलता आने पर तुम भी, अपने स्वभाव की दृष्टि करोगे तो तुम्हें शुद्धोपयोग की ही प्राप्ति होगी।

प्रश्न 25- 'बावना चन्दन' क्या शिक्षा देता है?

उत्तर - जैसे - गरम उबलते हुए तेल में यदि नारियल डाला जाए तो उसके तत्काल ही टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और जलकर खाक हो जाता है लेकिन जब उबलते हुए तेल में जरा-सा बावना चन्दन डाल दिया जाये तो गर्म तेल उसी समय ठण्डा हो जाता है; उसी प्रकार हे आत्मा! यदि तू अपने बावना चन्दनरूप त्रिकालीस्वभाव का आश्रय ले तो क्षणभर में अनन्त संसार का ताप समाप्त हो जाता है। यह जीव, अनादि काल से एक-एक समय करके संसारताप से दु:खी होकर जल रहा है, इसको एक स्वभाव ही संसार से पार होने में महामन्त्र है। बावना चन्दन यह शिक्षा देता है कि मैं जरा-सा, इतने उबलते तेल को शीतल बना देता हूँ, तब हे आत्मा! क्या तुम अनादि काल के ताप को क्षणभर में शान्त नहीं कर सकते? यदि यह आत्मा एक क्षण के लिए अपने स्वभाव का आश्रय ले तो तुरन्त अनादि का जन्म-मरण समाप्त हो जावे। कहा है -

क्षणभर निज रस को पी चेतन, मिथ्या मल को धो देता है।
काषायिकभाव विनष्ट किए, निज आनन्द अमृत पीता है॥

प्रश्न 26- लकड़ी क्या शिक्षा देती है?

उत्तर - एक मनुष्य, लकड़ी को देखकर कहने लगा कि 'हे लकड़ी! क्या तुझे पता है - तेरा तिरने का स्वभाव है, परन्तु तू लोहे

का साथ करेगी तो डूब जावेगी?' इस पर लकड़ी बोली, अरे मनुष्य! हम तिरे या डूबे, उसमें हमको कोई भी दु:ख-सुख नहीं; इसलिए तू हमारी चिन्ता किसलिए करता है? तेरा तिरने का स्वभाव है, उसका क्या तुझे पता है? तेरा तिरने का स्वभाव होने पर भी, पर का सङ्ग करके संसारसमुद्र में क्यों डूब रहा है? क्यों दु:खी हो रहा है? इसलिए तू हमारी चिन्ता छोड़कर, अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव को पर से पृथक जानकर, उसी की भावना कर, जिससे तू संसारसमुद्र से पार होकर सिद्ध परमात्मा बन जाएगा। लकड़ी हमें शिक्षा देती है कि जैसे-लकड़ी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती; उसी प्रकार हमें अपने ज्ञाता-दृष्टास्वभाव को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए।

प्रश्न 27- 'लकड़ी का छोटा टुकड़ा' क्या शिक्षा देता है?

उत्तर - जैसे - नदी, नहर, समुद्र में लकड़ी का टुकड़ा पड़ा हो, वहाँ कैसी भी बड़ी तरङ्गें उठ रही हों परन्तु लकड़ी का टुकड़ा कभी भी डूबता ही नहीं; उसी प्रकार जो जीव अपने त्रिकालीस्वभाव का आश्रय लेता है; संसार में कितनी ही प्रतिकूलता क्यों ना हो, उसे डिगा नहीं सकती, वह हर समय कुन्दन ही रहेगा। लकड़ी का छोटा-सा टुकड़ा हमें शिक्षा देता है कि जिस प्रकार मुझ पर लाखों तूफान आने पर भी मैं अपने तिरने का स्वभाव नहीं छोड़ता; उसी प्रकार हे आत्मा! तुम्हें अपने ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लेकर प्रतिकूल संयोगों और विकारीभावों के होने पर भी कभी स्वभाव में से विचलित नहीं होना चाहिए।

प्रश्न 28- 'चीनी के नारियल' से क्या शिक्षा मिलती है?

उत्तर - जैसा नारियल होता हैं, वैसा ही चीनी का नारियल होता है, और आप उसे खावें तो उसमें मिठास ही मिठास आती है; वैसे ही आत्मा तो सम्पूर्ण अमृत की पूरी नारियली जैसा ही है, उसके

अनुभव करने से अमरत्व की ही प्राप्ति होती है। चीनी का नारियल हमें यह शिक्षा देता है कि जैसे मैं सब तरफ से मीठा ही हूँ; उसी प्रकार हे आत्मा! तू भी हर समय ज्ञायकस्वभावी ही रहा है और रहेगा।

प्रश्न 29- 'चन्दन के इच्छुक पुरुष' से क्या शिक्षा मिलती है?

उत्तर - जैसे - चन्दन का इच्छुक पुरुष जब चन्दन लेने जंगल में जाता है तो वह अपने साथ गरुड़ या मोर ले जाता है। मोर या गरुड़ की हुंकार सुनते ही चन्दन पर लिपटे हुए अजगर और साँप भाग जाते हैं। यदि चन्दन का इच्छुक पुरुष, गरुड़ या मोर को साथ में न ले जावे, तो वह चन्दन को प्राप्त नहीं कर सकता; उसी प्रकार अनादि काल से मिथ्यात्वरूपी अजगर, और राग-द्वेषरूपी साँप, चन्दन के समान शीतल आत्मा के ऊपर लिपटे हुए है; यदि यह जीव अपने ज्ञायकस्वभाव की टंकार मारे, तो मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूपी अजगर और साँप सब स्वयं भाग जाते हैं।

चन्दन के इच्छुक पुरुष के दृष्टान्त से यह शिक्षा मिलती है कि जैसे - चन्दन का इच्छुक पुरुष, अपने पास गरुड़ या मोर को रखता है तो वह चन्दन को प्राप्त कर लेता है; उसी प्रकार मोक्ष का इच्छुक पुरुष, अपने साथ अपने ज्ञायकस्वभावी आत्मा को रखे, तो मिथ्यात्व -राग-द्वेष कभी भी पास नहीं आ सकते।

प्रश्न 30- 'कीचड़ में पड़ा सोना' क्या शिक्षा देता है?

उत्तर - जैसे-कीचड़ में सोना पड़ा हो, उसे कभी जङ्ग नहीं लगती; उसी प्रकार जो जीव, अपने ज्ञायकस्वभावी आत्मा का अनुभव करले तो संसार की कोई भी ताकत उसे संसार की चारों गतिरूप कीचड़ में नहीं फंसा सकती। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि जिस प्रकार कीचड़ में पड़े सोने को जङ्ग नहीं लगती; उसी

प्रकार जिसे अपने स्वभाव का अनुभव हो गया है, वह सम्यग्दृष्टि हो, गृहस्थ हो; उसे मिथ्यात्वरूपी भूत कभी नहीं डसता।

प्रश्न 31- अग्नि हमें क्या शिक्षा देती है?

उत्तर - जैसे-अग्नि में जो कुछ डालो, वह स्वाहा हो जाता है। अग्नि किसी अल्प-बहुत मूल्यवान वस्तु का ख्याल नहीं करती और जलने योग्य को जला ही देती है; उसी प्रकार हे आत्मा! तेरा कार्य ज्ञान है; तू क्यों व्यर्थ में पर का करूँ-करूँ की मान्यता में पागल हो रहा है। अग्नि हमको यह शिक्षा देती है कि जिस प्रकार मैं अपने जलाने के स्वभाव को नहीं छोड़ती; उसी प्रकार हे भव्य आत्मा! तुझे भी अपने ज्ञान-कार्य को नही छोड़ना चाहिए।

प्रश्न 32- 'साँप और नेवला' हमें क्या शिक्षा देता है?

उत्तर - साँप और नेवला एक दूसरे के दुश्मन होते हैं। जब नेवला, साँप के साथ लड़ाई करता है तो जङ्गल में एक नीलबेल नाम की जड़ी-बूटी होती है, उसी के पास रहकर नेवला, साँप के साथ लड़ाई करता है क्योंकि यदि लड़ाई में साँप काट ले, तो उस नील-बेल बूटी को सूँघ लेने से उसका विष दूर हो जाता है, तब हर हालत में नेवला, साँप को मार देता है; उसी प्रकार यह सारा संसार, सर्परूप है और पुरुषार्थ करनेवाला जीव, नेवला के समान है। संसार—जो अपने ज्ञायकस्वभाव को नहीं जानता है और संयोग और राग-द्वेष में उलझा रहता है, इस बुद्धि का नाम संसार है।

संसार, सर्प के समान है। उसकी जब पुरुषार्थ करनेवाले जीव के साथ लड़ाई चलती है तो यह जीव अपने त्रिकाली अविनाशी आत्मा में एकत्वबुद्धि करता है, तो अनादि काल की संसारबुद्धि दूर हो जाती है। कहा है कि -

सर्प रूप संसार है, नौल रूप नर जान।
सन्त बूटी संयोग तें, होत अहिं विषहाण॥

यह संसार, सर्परूप है और नौलारूपी पुरुषार्थ करनेवाला जीव है। जब यह जीव, संसार के विषय-भोगों की अनुकूलता और प्रतिकूलता में जलता है, तब उसकी सन्तरूपी जड़ी-बूटी से, सर्परूप जो मिथ्यात्व है, उसका नाश हो जाता है। यह जीव अनादि काल से दु:खी हो रहा है, उसका कारण केवल यही है कि इसे सन्तरूपी बूटी नहीं मिली। सन्तरूपी बूटी, जो अपना स्वभाव ही है, वह चारों गतियों में भ्रमण नहीं करने देती है; इसका पता न होने से दु:खी है। जिसे अपनी सन्तरूपी बूटी (ज्ञायकस्वभावी) का अनुभव-ज्ञान होता है, वह कभी भी आकुलित नहीं होता है। साँप और नेवला के दृष्टान्त से यह शिक्षा मिलती है कि जो अपने ज्ञायकस्वभावरूप बूटी का आश्रय लेता है, उसे संसार में कभी भी परिभ्रमण नहीं करना पड़ता है क्योंकि आत्मा संयोग, संयोगीभावों से, और भेदरूप व्यवहार से भिन्न है।

प्रश्न 33- जो जीव अपने ज्ञायकस्वभावरूप सन्त बूटी का आश्रय लेता है तो उसे क्या प्रगट होता है और किसका अभाव होता है?

उत्तर - (1) चारों गतियों से विलक्षण पञ्चम गति मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(2) पञ्च परमेष्ठियों में उसका नाम आता है।

(3) पञ्चम परमपारिणामिकभाव का महत्व आ जाता है।

(4) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पाँच परावर्तनरूप संसार का अभाव हो जाता है।

(5) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग - पाँच कर्म बन्धन के कारण हैं, उनका अभाव हो जाता है।

प्रश्न 34- कर्म के उदय का क्या अर्थ है?

उत्तर - उदय का अर्थ प्रगट है। जो कर्म, सत्ता में पड़ा था, वह

उदय में आया, अर्थात् जो उदय में आता है, वह यह प्रगट करता है कि मैं जा रहा हूँ। कर्म बड़ा सज्जन है, वह कहता है कि मैं जा रहा हूँ, तुम आगे ऐसी ओंधाई मत करना, जो मुझे आना पड़े किन्तु अज्ञानी जीव, कर्म के उदय में रागभाव करके अपना जीवन खोते रहते हैं। जैसे हमारे घर पर कोई मेहमान आवे, हम उसकी पूछताछ न करें तो वह जल्दी ही चला जाता है। वास्तव में जब जीव पागलपन करता है तो उस समय कर्म का उदय निमित्त है। निमित्त, विकार नहीं कराता है परन्तु जीव, विकार करे तो वहाँ कौन उपस्थित है, उसका ज्ञान कराता है।

प्रश्न 35- गोम्मटसार आदि शास्त्रों में लिखा है कि ज्ञानावरणीयकर्म का उदय, ज्ञान को नहीं होने देता है; कर्म के उदय से जीव, भ्रमण करता है - क्या यह असत्य लिखा है?

उत्तर - शास्त्रों में जो लिखा है, वह तो सत्य है लेकिन उस कथन का क्या तात्पर्य है? - वह अज्ञानी नहीं जानता है—

देखो भाई! कोई वकील का कार्य करता है तो उसमें दूसरा कोई आदमी दखल नहीं देता है; कोई डाक्टर, डाक्टरी करता है तो उसमें अन्य कोई दखल नहीं देता है; कहने का तात्पर्य यह है कि जो जिस व्यापार को करता है-जानता है, उसमें दूसरे व्यापारवाला दखल नहीं देता है लेकिन लोकोत्तरमार्ग में भी हम ऐसा करें कि जो आगम का अनुभवी ज्ञाता हो, उससे प्रथम धर्मश्रवण करें, निर्णय करें तो हम किसी भी शास्त्र को पढ़ें, तो दृष्टि ठीक होने से वीतरागता ही प्रगट हो। मिथ्यादृष्टि जीव, लोकोत्तरमार्ग में अपनी बुद्धि लगाते हैं परन्तु उसका रहस्य न जानने से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है कि दिगम्बर जैन अनुयायी, निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास करता है, भगवान की आज्ञा मानता है, तब भी

मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता है। जिनागम में जो निश्चय -व्यवहाररूप वर्णन है, उसका पता न होने से वह संसार का पात्र बना रहता है।

जिसको अभी यह भी मालूम नहीं कि मैं कौन हूँ? मेरा क्या कार्य है? कहाँ से मैं आया हूँ और पढ़ लिया गोम्मटसार। कहता है कि कर्म के कारण, जीव चक्कर काटता है; यह जिनागम के अर्थ का अनर्थ करता है। इसलिए हे भाई! जैसे-लौकिककार्य में, जिसका अपने को पता नहीं, उसमें हम दखल नहीं देते हैं और जिसको उसका पता है, उसकी बात मानते हैं; उसी प्रकार लोकोत्तरमार्ग में भी धर्मगुरु से विनयपूर्वक निश्चय-व्यवहार का रहस्य जानकर, अपनी आत्मा का आश्रय ले तो भला हो।

प्रश्न 36- रागादि को पुद्गल का क्यों कहा है?

उत्तर - (1) जैसे-लड़का माँ का है परन्तु विवाह होने पर बहू का कहलाता है; उसी प्रकार रागादिक, पुद्गल के निमित्त से होते हैं; इसलिए रागादि को पुद्गल कहा है।

(2) जिसमें मिलना और बिछुड़ना हो, उसे पुद्गल कहते हैं; उसी प्रकार रागादिक आकर चले जाते हैं; इसलिए रागादि को पुद्गल कहा है।

(3) रागादि, आत्मा के स्वभाव में विघ्नकारक है; अतः रागादि को आत्मस्वभाव से विपरीत होने से पुद्गल कहा है।

(4) जाने, वह चेतन और न जाने, वह अचेतन। रागादि अपने को भी नहीं जानता, पर को भी नहीं जानता; इसलिए रागादि को अचेतन होने से पुद्गल कहा है।

(5) जो निकल जाता है, वह अपना नहीं; रागादि, आत्मा से निकल जाते हैं; इसलिए रागादि को पुद्गल कहा है।

याद रहे — रागादि, अज्ञानी जीव की पर्याय में होते हैं; यदि वह स्वभाव का आश्रय लेकर उनको दूर करे तो रागादि, पुद्गल के हैं - ऐसा उसका कहना सार्थक है।

प्रश्न 37- आपने रागादि को पुद्गल कहा; क्या रागादि में स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण पाया जाता है?

उत्तर - नहीं; रागादि में स्पर्शादि नहीं है परन्तु वे जड़ हैं। वास्तव में रागादि न जीव के हैं और न पुद्गल के हैं। एक कहावत है कि रागादि, जीव के पास गये, तुम हमें अपने में मिला लो; जीव ने कहा, क्या तुम्हारे में चेतनपना है? वे वहाँ से भाग गये। फिर रागादि, पुद्गल पास गये - तुम हमें अपने में मिलाओ, तब पुद्गल ने कहा, क्या तुम्हारे में स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण हैं? तो वह वहाँ से भी भाग गये, अर्थात् त्रिशंकु की तरह रागादि बीच में लटकते रहते हैं।

प्रश्न 38- परवस्तु से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है और आत्मा, परवस्तु के ग्रहण-त्याग से रहित है - तो आत्मा, रागादिक का ग्रहण तो न करे, किन्तु छोड़ तो सकता है?

उत्तर - बिल्कुल नहीं — (1) जैसे- जिस समय लड़का उत्पन्न हुआ, क्या उसी समय वह मर सकता है? नहीं; उसी प्रकार जिस समय रागादि उत्पन्न हुए, उसी समय उनका अभाव नहीं हो सकता है। भूतकाल का राग है ही नहीं, वह तो समाप्त हो गया है; भविष्यकाल का राग आया ही नहीं है, उसको क्या छोड़े? अत: आत्मा, भूत-भविष्य-वर्तमान के राग का त्याग नहीं कर सकता है।

(2) अज्ञानी कहता है जब राग आवेगा, तब मैं उसका अभाव कर दूँगा, किन्तु वह राग छद्मस्थ के ज्ञान में असंख्यात समय के बाद आता है, तब जो राग वह छोड़ना चाहता है, वह तो असंख्यातबार स्वयं बदल गया होगा, अर्थात् उस राग का तो व्यय हो गया, तो किसको छोड़ेगा?

(3) अज्ञानी कहता है कि जब राग की पर्याय उत्पन्न होगी, मैं उसका अभाव कर दूँगा - किन्तु जब एक राग की पर्याय पकड़ में आवेगी, तब उसे केवलज्ञान होना चाहिए और केवलज्ञान होने से पहले बारहवें गुणस्थान में रागादि का सर्वथा अभाव हो जाता है; अतः राग का त्याग करना नहीं पड़ता है।

प्रश्न 39- शास्त्रों में लिखा है कि रागादिक का त्याग करो तो क्या यह असत्य लिखा है ?

उत्तर - नहीं, असत्य नहीं लिखा है; वह निमित्त की अपेक्षा कथन किया है। जैसे-किसी को बुखार आया, डाक्टर ने दवाई दी तो वह उतर गया। वास्तव में बुखार आया ही नहीं, उसको बुखार उतर गया - ऐसा बोलने में आता है; उसी प्रकार जीव ने अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लिया, तो राग-द्वेष उत्पन्न ही नहीं हुआ तो राग -द्वेष को दूर किया - ऐसा व्यवहार से कथन किया जाता है क्योंकि स्वभाव का आश्रय लेना, अशुद्धपर्याय का व्यय और शुद्धपर्याय की उत्पत्ति का एक ही समय है।

प्रश्न 40- साकार-निराकार का किस-किस अर्थ में प्रयोग होता है ?

उत्तर - दो अर्थों में - (1) दर्शनोपयोग को निराकारउपयोग कहते हैं क्योंकि दर्शन, पदार्थों को अभेदरूप से देखता है।

(2) ज्ञानोपयोग को साकारउपयोग कहते हैं क्योंकि ज्ञान, पदार्थों को भिन्न-भिन्न जानता है।

(1) इन्द्रियगम्य न होने से आत्मा को निराकार कहते हैं,

(2) प्रदेशत्वगुण के कारण आत्मा को साकार कहते हैं।

प्रश्न 41- सविकल्प और निर्विकल्प का प्रयोग किस -किस अर्थ में होता है ?

उत्तर – दो अर्थों में – (1) बुद्धिपूर्वक राग अवस्था को सविकल्प अवस्था कहते हैं।

(2) अबद्धिपूर्वक रागसहित, किन्तु बुद्धिपूर्वक रागरहित अवस्था को निर्विकल्प अवस्था कहते हैं।

(1) ज्ञान में पदार्थ, भिन्न-भिन्न जाना जाते हैं; इसलिए ज्ञान को सविकल्प कहते हैं।

(2) दर्शन में पदार्थ, अभेदरूप से देखे जाते हैं; इसलिए दर्शन को निर्विकल्प कहा जाता है।

प्रश्न 42– सामान्य और विशेष का प्रयोग किस-किस अर्थ में होता है ?

उत्तर – चार अर्थों में – (1) दर्शन को सामान्य कहते हैं (दर्शनोपयोग)।

(2) ज्ञान को विशेष कहते है (ज्ञानोपयोग)।

(A) संक्षेप में (थोड़े) बोलने के अर्थ में सामान्य कहते हैं, जैसे भाई! थोड़े में वर्णन करो।

(B) विस्तारपूर्वक अर्थ में कथन करने को विशेष कहते हैं।

(i) द्रव्य को सामान्य कहते हैं, (ii) गुण को विशेष कहते हैं। जब गुण को सामान्य कहे तो (iii) पर्याय को विशेष कहते हैं।

प्रश्न 43– भेद-अभेद का प्रयोग किस-किस अर्थ में होता है ?

उत्तर – दो अर्थों में – (1) एक वस्तु का, दूसरी वस्तु से भेद करके जानना, उसे भेद कहते हैं।

(2) भेद डाले बिना देखना, वह अभेद है।

(1) गुण-पर्याय को भेद कहते हैं।

(2) द्रव्य को अभेद कहते हैं।

प्रश्न 44– अज्ञानी को राग-द्वेष क्यों उत्पन्न होता है ?

उत्तर – (1) संसार के पदार्थों का अपने भाव अनुसार परिणमन होने पर, राग उत्पन्न होता है।

(2) संसार के पदार्थों का अपने भाव के अनुसार न परिणमन होने पर, द्वेष उत्पन्न होता है

प्रश्न 45– अज्ञानी के राग-द्वेष का अभाव कैसे हो ?

उत्तर – जिनेन्द्रकथित विश्वव्यवस्था को मानने से या निमित्तरूप से सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को मानने से ही राग-द्वेष का अभाव हो सकता है।

प्रश्न 46– हुण्डावसर्पिणी काल में अछेरा क्या-क्या है ?

उत्तर – (1) तीर्थङ्कर के पुत्री का होना।

(2) चक्रवर्ती का पराजित होना।

(3) तिरेसठ शलाका पुरुषों की जगह, साठ की संख्या का होना।

प्रश्न 47– स्मरण, विस्मरण और मरण से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – (1) जिनका करना चाहिए निरन्तर स्मरण, उनका करता है विस्मरण; इसलिए नहीं मिटता है भयंकर भावमरण।

(2) जिनका करना चाहिए निरन्तर विस्मरण, उनका करता स्मरण, इसलिए नहीं मिटता है भयंकर भावमरण।

प्रश्न 48– जिओ और जीने दो का क्या धर्म है ?

उत्तर – (1) अपने चैतन्यप्राण से सदा काल जीवे, वह जिओ से तात्पर्य है।

(2) अन्य जीव भी सदा काल अपने चैतन्यप्राणों से जीवें, यह जीने दो से तात्पर्य है।

प्रश्न 49– दृष्टिवन्त को भव और भव का भाव क्यों नहीं है?

उत्तर – जैसे, स्वभाव में भव नहीं है और भव का भाव नहीं है; उसी प्रकार दृष्टिवन्त को भव नहीं है और भव का भाव नहीं है।

प्रश्न 50– जीव को लोकाग्र जाने में एक समय से ज्यादा समय लगे तो क्या हानि है?

उत्तर – जब जीव, सम्पूर्ण शुद्ध हो जाता है, तब उसमें सम्पूर्ण शक्ति प्रगट हो जाती है। यदि लोकाग्र जाने में एक समय से ज्यादा लगे तो जीव की पूर्ण शक्ति प्रगट नहीं हुई – ऐसा कहा जा सकता है किन्तु पर्याय में पूर्ण शक्ति प्रगट हो गयी है; इसलिए लोकाग्र जाने में एक समय ही लगता है।

प्रश्न 51– छेद और छेदोपस्थापना किसे कहते हैं?

उत्तर – अपने स्वरूप की रमणता से हटकर, श्रद्धासहित, प्रमाद के वश होना, उसे छेद कहते हैं। उस प्रमाद को हटाकर, अपने स्वरूप में आना, उसे छेदोपस्थापना कहते हैं। जैसे – सातवें गुणस्थानवाले मुनि, जब छठवें गुणस्थान में आते हैं, उन्हें अट्ठाईस मूलगुण पालने का भाव आता है, उसका नाम भी छेद है और उस वृत्ति को तोड़कर सातवें गुणस्थान में आना, छेदोपस्थापना है।

प्रश्न 52– हिंसा और महान हिंसा क्या है?

उत्तर – (1) रागादि की उत्पत्ति होना, हिंसा है।

(2) रागादि भावों में धर्म मानना, महान हिंसा है।

प्रश्न 53– अहिंसा और अहिंसा की सच्ची समझ क्या है?

उत्तर – (1) रागादिक की अनुत्पत्ति, वह अहिंसा है।

(2) रागादिक में धर्म नहीं मानना, वह अहिंसा की सच्ची समझ है।

प्रश्न 54- संसार का अभाव और मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो ?

उत्तर - परिवर्तनशील संसार में, अपरिवर्तनशील अपने ज्ञानस्वभाव का आश्रय ले तो अपरिवर्तनशील मोक्ष की प्राप्ति हो।

प्रश्न 55- सामान्य के आश्रय से क्या होता है और विशेष के आश्रय से क्या होता है ?

उत्तर - अपने सामान्यस्वभाव का आश्रय लेने से, अपने विशेष में संवरा-निर्जरा और मोक्ष की प्राप्ति होती है और अपने विशेष का आश्रय ले तो अपने विशेष में आस्रव-बन्ध की वृद्धि होकर, निगोद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ५६- 'मुझे दुःख मिटाकर, सुख प्राप्त करना है' - इस वाक्य पर सात तत्त्व लगाकर बताओ ?

उत्तर - मुझे=जीव; दुःख=आस्रव-बन्ध; मिटाकर, संवर-निर्जरा-मोक्ष=सुख प्राप्त करना है।

प्रश्न 57- 'समझा तो समाया' से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - जो अपने में समा जाता है, वह समझा और समझनेवाले को बाहरी प्रसिद्धि की आवश्यकता नहीं होती है।

प्रश्न 58- मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर - पर्याय का लक्ष्य करनेवाले छद्मस्थ जीव को पर्यायी का (द्रव्य का) लक्ष्य न होना, वह मिथ्यात्व है।

प्रश्न 59- क्या पर्याय का ज्ञान करना, मिथ्यात्व है ?

उत्तर - पर्याय का ज्ञान करना, वह मिथ्यात्व नहीं है परन्तु पर्याय का आश्रय मानना, यह मिथ्यात्व है।

प्रश्न 60- आप्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - वीतराग-सर्वज्ञ और हितोपदेशी को आप्त कहते हैं।

प्रश्न 61- जो वीतराग हो, वह सर्वज्ञ है या नहीं ?

उत्तर - ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थान में वीतराग है; सर्वज्ञ नहीं है।

प्रश्न 62- सर्वज्ञ हो, वह वीतराग है या नहीं ?

उत्तर - नियम से है क्योंकि, तेरहवें गुणस्थान सर्वज्ञ है, और वह बारहवें गुणस्थान में वीतराग हो ही जाता है।

प्रश्न 63- पूर्ण आप्तपना नियम से किसके होता है ?

उत्तर - तीर्थङ्कर के ही होता है, क्योंकि उनकी दिव्यध्वनि नियम से खिरती है।

प्रश्न 64- तीर्थङ्करपद का बन्ध, तीर्थङ्कर के लिए कार्यकारी है या भव्य जीवों के लिए कार्यकारी है ?

उत्तर - तीर्थङ्करपद का बन्ध जिस जीव को प्राप्त होता है, उसका फायदा न तो स्वयं तीर्थङ्कर होनेवाले को है और न भव्य जीवों के पार होने के लिए है, क्योंकि तीर्थङ्करप्रकृति, विशिष्ट पुण्य प्रकृति है।

प्रश्न 65- तीर्थङ्करपद का बन्ध तीर्थङ्कर होनेवाले के लिए क्यों कार्यकारी नहीं है ?

उत्तर - (1) जैसे-महावीरस्वामी के जीव को नन्दराजा के भव में तीर्थङ्करनामकर्म का बन्ध हुआ। उससे उनके तीन भव बढ़ गये। यदि वह उस समय विशेष स्थिरता करके अपने पूर्ण लीन हो जाते तो उसी भव से मोक्ष हो जाता।

(2) तीर्थङ्करप्रकृति का उदय, तेरहवें गुणस्थान में आता है - तो विचारो! तीर्थङ्करपद का बन्ध, तीर्थङ्कर के लिए क्या कार्यकारी रहा? कुछ भी नहीं, क्योंकि उनको जो समवसरणादि ऋद्धि की प्राप्ति हुई, वह तो उनके ज्ञान का ज्ञेय बनी।

प्रश्न 66- क्या भव्य जीवों को पार करने के लिए भी तीर्थङ्करपद कार्यकारी नहीं है ?

उत्तर - नहीं है क्योंकि कोई जीव, भगवान के समवसरण में दिव्यध्वनि सुन रहा है, उसका उपयोग दिव्यध्वनि की ओर रहे तो वह धर्म प्राप्त नहीं कर सकता है; इसलिए तीर्थङ्करपद से भी दृष्टि उठावो! एकमात्र अपने स्वभाव का आश्रय लो तो ही धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्रश्न 67- आत्मा में बन्ध का निमित्तकारण कौन नहीं है और कौन है ?

उत्तर - (1) कर्म आठ हैं; इनमें से अघातिकर्म तो बन्ध के कारण नहीं है क्योंकि अघाति के कारण, संयोग मिलता है।

(2) घातिया में से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, और अन्तराय का क्षयोपशम किसी न किसी अंश में सर्व संसारी जीवों को प्रगट है; इन तीनों की हीनादिक अवस्था भी बन्ध का कारण नहीं है। ज्ञान-दर्शन-वीर्य का जितना उघाड़ है, वह भी बन्ध का कारण नहीं है क्योंकि वह स्वभाव का अंश है। यदि स्वभाव, बन्ध का कारण हो तो स्वभाव, त्रिकाल है; अतः बन्ध भी त्रिकाल हो जाएगा; इसलिए जितना उघाड़ है, वह भी बन्ध का कारण नहीं है।

(3) अब रहा मोहनीय; उसमें भी विशेष बन्ध का कारण दर्शनमोहनीय का उदय है और चारित्रमोहनीय के उदय से जो राग-द्वेष होता है, वह भी बन्ध का कारण है; इस प्रकार मात्र मोहनीयकर्म ही बन्ध का निमित्तकारण है।

प्रश्न 68- पाँच भावों में से बन्ध का कारण कौन है ?

उत्तर - पाँच भावों में से मात्र औदयिकभाव ही बन्ध का

कारण है किन्तु सर्व औदयिकभाव भी बन्ध के कारण नहीं हैं, किन्तु मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग - ये चार, बन्ध के कारण है।

[षटखण्डागम, धवला, भाग सात, पृष्ठ 9]

प्रश्न 69- पुद्गलों में बन्ध कैसे होता है और यह क्या बताता है?

उत्तर - पुद्गल में स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण आदि सब पाये जाते हैं। इसमें भी स्पर्श को छोड़कर, बाकी गुणों की पर्यायों के कारण बन्ध होता ही नहीं। स्पर्श गुण की आठ पर्यायें हैं। इन आठ पर्यायों में से मात्र स्निग्ध-रुक्ष इन दो पर्यायों में ही बन्ध होता है। **जैसे - पुद्गल में स्निग्ध-रुक्ष के कारण, बन्ध होता है; वैसे ही जीव में राग-द्वेष के कारण बन्ध होता है।**

प्रश्न 70- यह जीव, स्वर्ण अक्षरों में स्वयं निगोद के टिकट पर हस्ताक्षर कैसे कर रहा है?

उत्तर - इंग्लैण्ड में जिस समय चार्ल्स चौथा राजा था, उस उस समय वहाँ की पार्लियामेण्ट ने चार्ल्स के लिए फाँसी का प्रस्ताव पास किया और चार्ल्स के पास हस्ताक्षर करने के लिए भेज दिया, क्योंकि वहाँ पर उस समय ऐसा ही नियम था, कि पार्लियामेण्ट द्वारा पास होने पर भी, जब तक किंग के हस्ताक्षर नहीं हो जावे, तब तक वह पास नहीं माना जाता था। देखो, उस समय राजा ने अपनी फाँसी पर स्वयं हस्ताक्षर किये; उसी प्रकार अनादि काल से मोहरूपी पागलपन के कारण यह अज्ञानी जीव, क्षण-क्षण में भावमरण कर रहा है। संसार में इसका किसी के साथ सम्बन्ध नहीं है किन्तु यह अज्ञानी जीव जहाँ भी जाता है, वहाँ पर 'यह मेरा, यह तेरा' करता रहता है; किसी पदार्थ को इष्ट मानता है और किसी को अनिष्ट मानता है, जबकि कोई भी इष्ट-अनिष्ट नहीं है। इसी कारण यह जीव, भावमरण करता आ रहा है और निगोद का पात्र बनता रहता है।

प्रश्न 71- राग-द्वेष की उत्पत्ति का क्या कारण है ?

उत्तर - आत्मतत्त्व से छूटकर, परद्रव्य का लक्ष्य करना, वह राग-द्वेष की उत्पत्ति का कारण है और पुद्‌गलकर्म के प्रदेशों में स्थित होना, यह निमित्तकारण है।

हर कार्य के दो कारण होते हैं - (1) उपादानकारण, और (2) निमित्तकारण।

(1) उपादानकारण, अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय न लेना, अर्थात् उससे खिसक जाना है। वास्तव में आत्मस्वभाव से भ्रष्ट होना ही राग-द्वेष की उत्पत्ति का उपादानकारण है। जब उपादानकरण होता है, उस समय निमित्त, मोहनीयकर्म का उदय होता ही है - ऐसा सहज ही निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है।

(2) राग-द्वेष की उत्पत्ति में अनादि काल से एक-एक समय करके निमित्तकारण, मोहनीयकर्म है।

प्रश्न 72- राग-द्वेष के अभाव में उपादान और निमित्तकारण क्या है ?

उत्तर - मोहनीयकर्म का अभाव, निमित्तकारण है और त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय, उपादानकारण है।

प्रश्न 73- साधक जीव को राग-द्वेष की उत्पत्ति में क्या कारण है ?

उत्तर - चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में अपनी-अपनी भूमिका -अनुसार शुद्धपरिणति तो निरन्तर रहती है। श्रद्धागुण की निर्मल पर्याय तो शत-प्रतिशत पूरी-पूरी है, लेकिन साधक को चारित्रगुण की एक समय की पर्याय में दो धाराएँ चलती हैं; एक शुद्ध, दूसरी अशुद्ध। इसकी पहिचान ज्ञानियों को है; अज्ञानियों को नहीं।

शुद्धपरिणतिरूप जितनी स्थिरता होती है, वह तो राग-द्वेष के अभावरूप वर्तती है और जितना वह अपने से खिसक जाता है, वह राग-द्वेष की उत्पत्ति का मूलकारण है।

प्रश्न 74- क्या वैभाविकशक्ति को राग-द्वेष की उत्पत्ति में उपादानकारण कहा जा सकता है?

उत्तर- नहीं! वैभाविकशक्ति, गुण है; यदि वह राग-द्वेष का उपादानकारण हो तो सिद्धों में भी राग-द्वेष होना चाहिए, इसलिए वैभाविकशक्ति तो राग-द्वेष का उपादानकारण नहीं हो सकता है।

प्रश्न 75- फिर राग-द्वेष का वास्तविक उपादानकारण क्या है?

उत्तर- जो राग-द्वेष के अभाव का उपादानकारण है, वास्तव में उसका विपरीत राग-द्वेष की उत्पत्ति का उपादानकारण है। राग-द्वेष के अभाव का उपादानकारण अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेना है; उसी प्रकार राग-द्वेष की उत्पत्ति का उपादानकारण, अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय न करना है।

प्रश्न 76- राग-द्वेष की उत्पत्ति का कारण, स्वभाव का आश्रय न करना है, इसके लिए कोई शास्त्राधार है?

उत्तर - (1) आत्मा में रागादिक उत्पन्न होते हैं, वह अपने ही अशुद्धपरिणाम हैं। निश्चय से विचार किया जाये, जो अन्य द्रव्य, (द्रव्यकर्म) रागादिक का उत्पन्न करनेवाला नहीं है; अन्य द्रव्य उनका निमित्तमात्र है क्योंकि अन्य द्रव्य को, अन्य द्रव्य, गुण-पर्याय उत्पन्न नहीं करते - ऐसा नियम है। जो ऐसा मानते हैं कि परद्रव्य ही मुझे रागादिक उत्पन्न कराते हैं, वे नय विभाग को नहीं समझते हैं; वे मिथ्यादृष्टि हैं। यह रागादिक जीव के सत्व में उत्पन्न होते हैं;

परद्रव्य, निमित्तमात्र है-ऐसा मानना, वह सम्यग्ज्ञान है।

[श्रीसमयसार, गाथा 372 की टीका का भावार्थ]

(2) परमार्थ से आत्मा अपने परिणामस्वरूप ऐसे उस भावकर्म का ही कर्ता है, परमार्थ से पुद्गल अपने परिणामस्वरूप ऐसे उस द्रव्यकर्म का ही कर्ता है परन्तु आत्मा के कर्मस्वरूप भावकर्म का नहीं। *[श्रीप्रवचनसार, गाथा 122 की टीका से]*

प्रश्न 77- सम्पूर्ण सुखी होने का उपाय श्री मोक्षमार्ग-प्रकाशक में क्या बताया है ?

उत्तर - वस्तुस्वरूप को समझने से ही आकुलता मिटेगी; अन्य कोई उपाय नहीं है।

जैसे - कोई मुर्दे को जीवित माने, उसे खिलाना चाहे, पिलाना चाहे और मुर्दा खावे-पीवे नहीं, तो उसकी आकुलता कभी भी दूर नहीं होगी; उससे उल्टा, मुर्दे को मुर्दा माने, जिलाने से जियेगा नहीं, खिलाने से खायेगा नहीं, तभी शान्ति प्राप्त हो सकती है। उसी प्रकार अनादि निधन वस्तुएँ, भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादासहित परिणमित होती है, कोई किसी के अधीन नहीं, कोई किसी के परिणामित कराने से परिणमित नहीं होती है।

मिथ्यादृष्टि सोचता है - मैं जैसा चाहूँ, वैसा पदार्थ परिणमन करें तब ठीक हो - सब मेरे मित्र हों, दुश्मन न हों; सब मेरी प्रशंसा करे, निन्दा न करें; संसार में मैं सबसे बड़ा कहलाऊँ, सब मेरे दास रहें - आदि अगणित इच्छा करके दु:खी होता है। इसलिए उन्हें यथार्थ मानना और परिणमित कराने से अन्यथा परिणमित नहीं होंगे- ऐसा मानना ही दु:ख दूर होने का उपाय है। भ्रमजनित दु:ख दूर करने का उपाय, भ्रम दूर करना ही है। सो भ्रम दूर होने से सम्यक् श्रद्धान होता है, वहीं सत्य उपाय आकुलता मिटाने का है; अन्य नहीं।

प्रश्न 78- कोई निश्चयरत्नत्रय बारहवें गुणस्थान में व कोई आठवें गुणस्थान में और कोई तेरहवें गुणस्थान में बतलाते हैं, क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर - (1) वास्तव में निश्चयरत्नत्रय की शुरुआत चौथे गुणस्थान से ही होती है। चौथे गुणस्थान में कषाय की एक चौकड़ी अभावरूप; पाँचवें में दो चौकड़ी अभावरूप; छठे में तीन चौकड़ी अभावरूप शुद्ध अंश होता है, उतना निश्चयरत्नत्रय होता है, वह क्रम-क्रम से बढ़ता जाता है। जो जीव उल्टा बोलते हैं, उनका कथन मिथ्या है - क्योंकि

'अचिरात्-शीघ्र तद्भवे तृतीय भवादौ वा अवश्य नियमतः समयस्य पदार्थस्य-सिद्धान्तशासनस्य वा सारं परमात्मानं टंकोत्कीर्ण स्वभावं विदंति-लभते, साक्षात परमात्मा भवतीती यावत्।'

देखिये! निश्चयरत्नत्रय से एक भव, दो भाव या तीन भव में निर्वाण को प्राप्त होता है। यदि 8, 12-13 वें गुणस्थान में निश्चयरत्नत्रय हो तो वहाँ दो भव या तीन भव की बात कहाँ रही ? क्योंकि 12-13वाँ गुणस्थान हो, उसको उसी भव से नियम से मोक्ष हो जाता है। *[सर्व विशुद्धि अधिकार, कलश 47, टीका शुभचन्द्राचार्य]*

(2) श्री नियमसार, परमभक्ति अधिकार, गाथा 134 में लिखा है 'जो श्रावक व श्रमण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भक्ति करते हैं, उसको भगवान ने निर्वाण की भक्ति कहा है।'

प्रश्न 79- यह जीव इतना सुनने पर भी क्यों नहीं चेतता है ?

उत्तर - (1) जैसे, कोई आदमी मोटे-मोटे तीन गद्दे ओढ़कर सो रहा है, उसे कितना ही मारो, वह उठता नहीं; उसी प्रकार अनादि काल से यह जीव, मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप तीन गद्दे ओढ़कर

सो रहा है; उसे सद्गुरु कितना ही जगायें, वह उठता ही नहीं है; और

(2) जैसे, कोई पतली चादर ओढ़कर सो रहा है, उसे जरा हिला दो, वह तुरन्त उठ जाता है; उसी प्रकार पात्र जीव को जरा ही कहो कि तू भगवान है, तो फौरन जाग जाता है।

प्रश्न 80- शास्त्रों में (1) स्फटिकमणि, (2) दीपक, और (3) दर्पण की उपमा देने की पीछे आचार्यों का क्या मर्म है ?

उत्तर - (1) जिनवाणी में स्फटिकमणि की उपमा वहाँ देते हैं, जहाँ आत्मा का स्वभाव बतलाना हो।

(2) दीपक की उपमा वहाँ देते हैं, जहाँ आत्मा का स्व -परप्रकाशक स्वभाव बतलाना हो, और

(3) दर्पण की उपमा वहाँ देते हैं, जहाँ जैसा पदार्थों का स्वरूप है, वैसा का वैसा बतलाना हो।

प्रश्न 81- भावक-भाव्य का क्या-क्या अर्थ है ?

उत्तर - (1) श्रीसमयसार, गाथा 32-33 में 'भावक = कर्म का उदय और भाव्य = अस्थिरतासम्बन्धी शुभभाव को बताया है।'

(2) श्रीप्रवचनसार, गाथा 242 में 'भावक=आत्मा और भाव्य= सम्यग्दर्शनादि शुद्धपर्याय को बताया है।'

प्रश्न 82- सोपक्रम और निरुपक्रम आयु से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - (1) सोपक्रम = जिस आयु की पूर्णता में बाह्य के प्रतिकूल संयोग, निमित्तरूप होवे, वह सोपक्रम आयु कहलाती है।

(2) निरुपक्रम = जिस आयु की पूर्णता में बाह्य संयोग, निमित्तरूप न होवे, वह निरुपक्रम आयु कहलाती है।

प्रश्न 83- आप कहते हो (1) कोई आत्मा, शरीर का काम नहीं कर सकता; (2) रोटी खाने का कार्य, पुद्गल का ही है;

आत्मा का नहीं; (3) कर्मों के उपशमादि, कार्माणवर्गणा का ही कार्य है; जीव से उसका सम्बन्ध नहीं है, लेकिन हमें तो उल्टा ही दिखता है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर - (1) जैसे - किसी की आँख में पीलिया रोग हो गया हो तो उसे सब चीजें पीली ही दीखती है; उसी प्रकार अज्ञानियों को सब बातें शास्त्र से विरुद्ध ही दिखायी देती हैं।

(2) जैसे - आप रेल में जाते हैं, वहाँ से बाहर की तरफ देखें, तब पेड़ चलते हुए दीखते हैं। क्या पेड़ चल सकते हैं ? आप कहेंगे नहीं; उसी प्रकार अज्ञानी को, शरीरादि के सब कार्य हम करते हैं - ऐसा दिखता है, लेकिन जैसे आपके ज्ञान में आता है कि पेड़ चलते नहीं है; वैसे ही जिनेन्द्रभगवान की आज्ञा मानकर अपने स्वभाव का आश्रय ले, तो सही बात ध्यान में आ जाएगी।

(3) 'बछरे के अण्डे के समान' आत्मा ने किया - ऐसा अज्ञानी मानता है। अज्ञानी जीव कहता है कि आत्मा, परद्रव्य के कार्य को करता देखा जाता है ना ? अरे भाई! जब आत्मा, परद्रव्य का कुछ कर ही नहीं सकता तो तूने देखा कहाँ से ? खोटी दृष्टि से देखा है कि आत्मा ने यह जड़ की क्रिया की है। यह देखो! हाथ में लकड़ी है। जब यह ऊँची हो गयी, इसमें आत्मा ने क्या किया ? आत्मा ने यह जाना तो सही कि लकड़ी पहले नीची थी, अब ऊँची हो गयी है, परन्तु आत्मा लकड़ी का ऊँचा करने में समर्थ नहीं है। अज्ञानी मानता है कि मैंने लकड़ी ऊँची की है, यह विपरीत मान्यता है। इसलिए याद रखो : (क) एक आत्मा, दूसरी आत्मा का कुछ नहीं कर सकता है। (ख) एक आत्मा, जड़ का कुछ नहीं कर सकता है। (ग) एक पुद्गल, दूसरे पुद्गल का कुछ नहीं कर सकता है। (घ) एक पुद्गल भी, आत्मा का कुछ नहीं कर सकता है - ऐसा मानना सम्यग्ज्ञान है; इससे उल्टा मानना, महानपाप-मिथ्यात्व है।

(4) देखो! अरहन्तभगवान को अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हुई है। वे उसी समय चार अघातिकर्म और औदारिकशरीर का अभाव नहीं कर सकते हैं और उनका भक्त कहे, कि हम कर सकते हैं; कितना आश्चर्य है!

(5) सिद्धभगवान सबको जानते हैं; किसी का कुछ भी नहीं कर सकते हैं - ऐसा जानकर, अपना आश्रय ले तो धर्म की प्राप्ति सम्भव है।

प्रश्न 84- त्रेसठ शलाका पुरुष, सम्यग्दृष्टि होते हैं या मिथ्यादृष्टि ?

उत्तर - त्रेसठ शलाका का बन्ध, सम्यग्दर्शन होने के बाद ही होता है; मिथ्यादृष्टि को इनमें से एक का भी बन्ध नहीं होता है परन्तु-

(1) चौबीस तीर्थङ्कर तो सम्यग्दृष्टि ही होते है और उसी भव से मोक्ष जाते हैं।

(2) चक्रवर्ती कोई मोक्ष जाता है, कोई स्वर्ग जाता है और कोई सम्यक्त्व का अभाव करके, सातवें नरक भी जाता है।

(3) नव बलदेव, सब सम्यग्दृष्टि ही रहते हैं; कोई मोक्ष और कोई स्वर्ग जाता है।

(4) नारायण और प्रतिनारायण का सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है और वे नरक जाते हैं।

प्रश्न 85- पर्याप्ति कितनी हैं और उससे क्या सिद्ध होता है ?

उत्तर - पर्यायाप्ति छह होती हैं - (1) आहार; (2) शरीर; (3) इन्द्रिय; (4) श्वासोच्छवास; (5) भाषा; और (6) मन।

जैसे – संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव, जब-जब जहाँ पर उत्पन्न होते हैं, वहाँ पर इन सब पर्याप्तियों की शुरुआत एक साथ होती है लेकिन पूर्णता क्रम से होती है; उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर, सर्व गुणों में अंशरूप से शुद्धता आ जाती है, परन्तु पूर्णता क्रम से होती है। सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में पूर्ण हो जाता है; चारित्र बारहवें गुणस्थान में तथा ज्ञान, दर्शन वीर्य की पूर्णता तेरहवें गुणस्थान में और योग की पूर्णत चौदहवें गुणस्थान में होती है।

प्रश्न 86– कोई कहे कि सम्यग्दर्शन होते ही पूर्णता होनी चाहिए; नहीं तो हम सम्यग्दर्शन होना ही नहीं मानते – क्या यह कहना ठीक है ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन होते ही पूर्णता हो जावे तो निम्न दोष आते हैं –

(1) सम्यग्दर्शन होते ही सिद्ध हो जाएगा, तो किसी जीव को ज्ञानी के उपदेश का निमित्त नहीं बनेगाा; इसलिए यह मान्यता मिथ्या है।

(2) श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणीपना और अरहन्तपने के अभाव का प्रसङ्ग उपस्थित होवेगा।

(3) गुणस्थानों के अभाव का प्रसङ्ग उपस्थित होवेगा।

(4) शास्त्रों की रचना नहीं होगी, क्योंकि विशेषरूप से श्रावक और भावलिङ्गी मुनियों को शास्त्रादि रचने का विकल्प हेयबुद्धि से आता है; इसलिए सम्यग्दर्शन होते ही पूर्णताा होनी चाहिए, यह बात मिथ्यादृष्टियों की है और उनका कहना असत्यार्थ है।

प्रश्न 87– ध्रुवधाम का धुनरूपी ध्यान, यह धर्म है – इससे क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – एकमात्र अनादि-अनन्त जो परमपारिणामिक ध्रुवधाम

आत्मा है, उसी के आश्रय से धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है; और किसी के आश्रय से नहीं होती है।

(1) जैसे - ऊपर ध्रुवतारा है, उसके चारों तरफ सात तारे चक्कर लगाते रहते हैं परन्तु वह ध्रुवतारा एक ही जगह रहता है, समुद्र में उस ध्रुव तारे के सहारे जहाज भी चलते हैं; उसी प्रकार आत्मा, अनादि-अनन्त ध्रुवधाम है, उसी के आश्रय से धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है; अन्य के आश्रय से नहीं।

(2) जैसे-एक आदमी के हाथ में एक पक्षी था। उसने वृक्ष पर दो पक्षी बैठे देखे; देखकर उसने अपने हाथ का पक्षी छोड़ दिया और उन दोनों को पकड़ने दौड़ा तो वे दोनों भी उड़ गये; उसी प्रकार अनादि काल से अज्ञानी, अपना जो अनादि-अनन्त ध्रुवधाम आत्मा है, उसे छोड़ता है और अध्रुव स्त्री-पुरुष-धनादि, शुभाशुभभावों का आश्रय करता है तो दु:खी होता है; इसलिए हे आत्मा! जो तेरा ध्रुवधामरूपी अनादि-अनन्त आत्मा है, उसका आश्रय ले, और परद्रव्य, विकारी-अविकारी पर्यायों का आश्रय छोड़ तो भला हो।

(3) जैसे - एक मजबूत खूँटे से भैंस बँधी है। भैंस जोर मारती है। लोग कहते हैं भैंस जोरावर है परन्तु जोर है खूँटे का, जो हिलता ही नहीं; उसी प्रकार अज्ञानी लोग, बाहरी क्रिया का, शुभभावों का जोर देखते हैं लेकिन जोर है अपने त्रिकाली ध्रुवधाम का। इसलिए अपने ध्रुवधाम के धुनरूपी ध्यान से धर्म प्रगट करना चाहिए।

(4) एक बार छोटी उम्र में पूज्य गुरुदेवश्री ध्रुव का नाटक देखने गये। नाटक में दिखाया गया कि ध्रुव बच्चा है, वह अपने पिता की गोद में बैठने जा रहा है। उसी समय उसकी दूसरी माँ ने टोका, तू उसका पुत्र है, गोद में कैसे जाता है? वह यह देखकर जङ्गल में चला गया और ऐसा ध्यान लगाया-कि आँख उठाकर ऊपर देखता

ही नहीं था। तब स्वर्ग से दो अप्सराएँ उसे डिगाने आयीं। उन्होंने बड़ा हाव-भाव प्रकट किया, परन्तु ध्रुव ने उनकी तरफ आँख उठाकर देखा ही नहीं। तब उन अप्सराओं ने कहा-ध्रुव! तुम इतनी छोटी उम्र में क्यों ध्यान करते हों? तुम अभी हमारे साथ भोग करो-आनन्द लो, बाद में दीक्षा ले लेना। तब भी ध्रुव ने अपनी नजर ऊँची नहीं की। अप्सराओं ने कहा - हे ध्रुव! जरा एक बार हमारी ओर नजर उठाकर तो देखो। तब ध्रुव ने आँख खोलकर उनसे कहा हे माता! यदि मुझे जन्म लेना पड़े तो मैं तेरी कोख में उत्पन्न होऊँगा। तब वे अप्सराएँ निराश होकर चली गयी; उसी प्रकार यह जीव, अनादि से एक-एक समय करके पर की ओर देखकर पागल हो रहा है। यदि एक बार अपने ध्रुवधाम की ओर दृष्टि करे, तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति होती है।

(5) जैसे-एक आदमी ने एक लाख रुपया दान देने को कहा और बाद में मुकर गया, तो जो मुकर जाता है, उसका कोई विश्वास नहीं करता; उसी प्रकार संसार की सब परवस्तुएँ और शुभभाव फिरनेवाले हैं, जो इनका विश्वास करता है, धोखा खाता है और जो न फिरनेवाला अपना ध्रुवधाम है, उसका आश्रय ले तो धर्म की प्राप्ति होती है।

(6) क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, औपशमिकभाव, अध्रुव हैं; इनके आश्रय से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है और जो अपना परमपारिणामिक त्रिकाली ध्रुवधाम है, उसका आश्रय ले तो धर्म की प्राप्ति होती है।

(7) हे आत्मा ! (1) परवस्तुओं से, (2) विकारीभावों से, (3) अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्यायों से, जो कि सब अध्रुव हैं, इनसे दृष्टि उठा और जो अपना ध्रुवधाम ज्ञायक भगवान है, उसका आश्रय ले,

तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होकर श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणीपना, अरहन्तपना, सिद्धपना की प्राप्ति हो। इसलिए अपने ध्रुवधाम के धुनरूपी ध्यान से ही धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्रश्न 88- सर्वज्ञ हैं, इसकी सिद्धि किस प्रकार हो ?

उत्तर - श्रीपञ्चास्तिकाय, जयसेनाचार्य कृत टीका, गाथा 29 में तथा श्रीवृहद् द्रव्यसंग्रह, गाथा 50 की टीका में सर्वज्ञ की सिद्धि की है।

प्रश्न 89- कोई सर्वज्ञ का निषेध करनेवाला कहता है कि सर्वज्ञ हैं ही नहीं, क्योंकि देखने में नहीं आते, उसे शास्त्र में किस प्रकार समझाया है ?

उत्तर - हे भाई ! यदि तुम कहते हो कि सर्वज्ञ नहीं है तो हम पूछते है कि सर्वज्ञ कहाँ नहीं हैं ? इस क्षेत्र में और इस काल में नहीं हैं अथवा तीनों काल में और तीनों लोकों में नहीं हैं ?

[अ] यदि तुम यह कहते हो कि 'इस क्षेत्र में और इस काल में सर्वज्ञ नहीं हैं' तो हम भी ऐसा ही मानते हैं।

[आ] यदि तुम यह कहते हो कि 'तीनों काल और तीनों लोकों में सर्वज्ञ नहीं हैं' तो हम तुमसे पूछते हैं कि यह तुमने कैसा जाना ? यदि तीनों लोक को और तीनों काल को सर्वज्ञ के बिना तुमने देख-जान लिया तो तुम्हीं सर्वज्ञ हो गए क्योंकि जो तीन लोक और तीन काल को जाने, वही सर्वज्ञ है। इसलिए सर्वज्ञ का निषेध योग्य नहीं है।

प्रश्न 90- श्रीदेवागमस्तोत्र में श्रीसमन्तभद्रस्वामी और श्रीमहावीरस्वामी की क्या वार्ता है ?

उत्तर - (1) भगवानमहावीरस्वामी ने समन्तभद्रस्वामी से पूछा कि तुम मुझे भगवान इसलिए मानते हो, कि मुझे देवता, चक्रवर्ती आदि नमस्कार करते हैं ?

समन्तभद्र ने कहा – नहीं भगवान।

(2) भगवान ने फिर पूछा – चामर, छत्र आदि विभूतियाँ हैं; आकाश में मेरा गमन होता है; इसलिए तुम मुझे भगवान मानते हो?

समन्तभद्र ने कहा – नहीं भगवान! इन कारणों से आप हमारे लिए महान नहीं है। ऐसी बातें तो मायावी इन्दजाली आदि में भी पायी जाती हैं।

(3) भगवान ने कहा – तब फिर तुम मुझे किसलिए भगवान मानते हो?

समन्तभद्र ने कहा – मुझमें पहले बहुत दोष थे और ज्ञान का उघाड़ भी बहुत कम था; अब दोष बहुत कम हो गये हैं और ज्ञान भी बढ़ गया है। जब मेरा दोष कम हुआ तो कोई दोषरहित भी होना चाहिए और मेरा ज्ञान बड़ा तो कोई पूर्ण ज्ञानावाला भी होना चाहिए। सो हे प्रभो! मैं आपको दोषरहित वीतरागरूप और पूर्ण केवलज्ञानी पाता हूँ; इसलिए मैं आपको नमस्कार करना हूँ और आपकी वाणी पूर्वापर विरोधरहित ही होती है। कहा है:

देवागम, नभोयान, चामरादि विभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वपति नो महान॥1॥

दोषावरणयोर्हानिनिः शेषास्त्यतिशायनात।
क्वचिद्यथा स्व हेतुभ्यो, बहिरन्तर्मलक्षयः॥4॥

सामान्य अर्थ – हे भगवान! आप हमारी दृष्टि में मात्र इसलिए महान नहीं हो कि (1) आपके दर्शनार्थ देवगण आते हैं; (2) आपका गमन आकश में होता है, और (3) आप चवर-छत्रादि विभूतियों से विभूषित हो, क्योंकि यह सब तो मायावियों में भी देखे जाते हैं॥1॥

हे भगवान! आपकी महानता तो वीतरागता और सर्वज्ञ के कारण ही है। वीतरागता और सर्वज्ञता असम्भव नहीं है। मोह-राग

-द्वेषादि दोष और ज्ञानावरणादि आवरणों का सम्पूर्ण अभाव सम्भव है, क्योंकि इनकी हानि क्रमशः होती देखी जाती है। जिस प्रकार लोक में अशुद्ध कनक-पाषाणादि में स्व हेतुओं से, अर्थात् अग्नि तापादि से अन्तर्बाह्य मल का अभाव होकर, स्वर्ण की शुद्धता होती देखी जाती है; उसी प्रकार शुद्धोपयोगरूप ध्यानाग्नि के ताप से किसी आत्मा के दोषावरण की हानि होकर, वीतरागता और सर्वज्ञता प्रगट होना सम्भव है ॥4॥

हे भगवान! आपने एक समय में प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताया है और यह सर्वज्ञ की निशानी है।

प्रश्न 91- क्या मिथ्यादृष्टि जीव, भगवान को नहीं पूज सकता है ?

उत्तर - यथार्थतया नहीं पूजा सकता है, क्योंकि मुनिसुब्रतनाथ की स्तुति करते हुए श्री स्वयंभूस्तोत्र, श्लोक 139 में लिखा है-

हे जिन सुर असुर तुम्हें पूजें। मिथ्यात्वी चित्त नहीं तुम्हें पूजें॥

जिस जीव ने अपनी आत्मा का अनुभव किया, उसने ही सर्वज्ञ को माना और जाना, क्योंकि सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की श्रद्धा किये बिना, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की श्रद्धा नहीं होती है; इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर ही भगवान को सत्यरूप से माना, इससे पहले नहीं माना। श्रीप्रवचनसार, गाथा 80 में कहा है कि -

जो जाणदि अरहतं दव्वत्त गुणत्तज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥80॥

जिस जीव ने अपनी वर्तमान पर्याय को अपने त्रिकाली भगवान की ओर सन्मुख किया, उस समय उसका मोह का अभाव हो जाता है, तब अरहन्त भगवान को जाना और माना।

प्रश्न 92- उत्साह, आदर, भावना और फल से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - (1) जिसकी रुचि, उसकी सावधानी;

(2) जिसकी सावधानी, उसकी मुख्यता;

(3) जिसकी मुख्यता, उसकी महिमा;

(4) जिसकी महिमा, उसका आदर;

(5) जिसका आदर, उसका उत्साह;

(6) जिसका उत्साह, उसकी भावना;

(7) जिसकी भावना, उसका फल;

(8) जिसका फल, उसका जीवन में टोटल हर समय आता है।

इससे यह पता लगता है कि जीव कहाँ खड़ा है और कहाँ सावधान है ?

प्रश्न 93- पुद्‌गलकर्म की कौनसी अवस्था, रागादि में निमित्त नहीं है और कौन सी अवस्था निमित्त है ?

उत्तर - (1) कर्म, सत्ता में पड़ा हो, वह रागादि में निमित्त नहीं है।

(2) कर्म की प्रकृति भी रागादि में निमित्त नहीं है।

(3) कर्म के प्रदेश भी रागादि में निमित्त नहीं है।

(4) कर्म की स्थिति भी रागादि में निमित्त नहीं है।

(5) एकमात्र पुराने कर्म का उदय (अनुभाग), रागादि में निमित्त पड़ता है।

प्रश्न 94- संयोगों की पृथकता, विभाव की विपरीतता और स्वभाव की सामर्थ्यता, से तीन बोल कौन से निकलते हैं और इनको जानने से क्या लाभ हैं ?

उत्तर - (1) अनादि काल से आज तक अनन्त शरीर धारण किये, उसमें से एक भी रजकण अपना नहीं हुआ।

(2) अनादि काल से आज तक असंख्यात लोकप्रमाण विभावभाव किया, परन्तु 'वह का वह रहता नहीं।' जो अपने साथ न रहे, वह अपना है ही नहीं।

(3) अखण्ड ज्ञायकस्वभाव की सामर्थ्यता का भान हो तो सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर मोक्ष का पथिक बने। जो अपना कल्याण चाहता है, वह संयोग जो पृथक हैं, उनसे अपना ध्यान हटावे; शुभाशुभ विकारी भावरूप हैं, इनसे भी जीव का कल्याण नहीं होता है; एकमात्र स्वभाव की सामर्थ्यता की ओर दृष्टि करे, तो शान्ति प्राप्त हो।

प्रश्न 95- सर्वज्ञ भगवान के केवलज्ञान का विषय क्या है ?

उत्तर - '**सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।**' अर्थात्, केवलज्ञान का विषय सर्व द्रव्य (गुणोंसहित) और उनकी सर्व पर्यायें हैं-अर्थात्, केवलज्ञान एक साथ सर्व पदार्थों, उनके सर्व गुणों तथा पर्यायों को जानता है। *[श्रीमोक्षशास्त्र, अध्याय 1, सूत्र 29]*

प्रश्न 96- हमारी थोड़ी बुद्धि है, हमें तो ऐसी बात बताओ, जिससे हमारा कल्याण हो जाए ?

उत्तर - देखो भाई! भगवान महावीर के निर्वाणोत्सव पर हम सब लड्डू चढ़ाते हैं। तब आप एक चतुर बाई के पास निर्वाणोत्सव के लड्डू बनवाने गये, तो बाई ने चूल्हें पर कढ़ाई रखी और पानी डाला। आपसे कहा - लाओ चीनी। तब आपने डिब्बा जिसमें चीनी थी, उसको दिया। उसने कढ़ाई में चीनी डालकर डिब्बा तुम्हें पकड़ा दिया। थोड़ी देर में उसमें उफान आया तो बाई ने आपसे दूध माँगा, तो आपने दूध का लोटा पकड़ा दिया। बाई ने दूध डालकर लोटा

वापस कर दिया। तब आपने कहा, बाई जी! तुम तो बहुत होशियार हो, तुमने चीनी से मैल अलग कर दिया। अब जरा मिठास को अलग कर दो। बाई बोली - मिठास अलग नहीं की जा सकती; उसी प्रकार जिसमें थोड़ी बुद्धि है और अपना कल्याण करना चाहता है तो (1) डिब्बा, की तरह अपनी आत्मा के अलावा अनन्त आत्माएँ, अनन्तानन्त पुद्‌गल, धर्म-अधर्म आकाश एक-एक ओर लोकप्रमाण असंख्यात कालद्रव्य हैं-इनसे दृष्टि उठाओ।

(2) चीनी में मैल की तरह हिंसा, झूठ आदि पापभाव हैं और दया, दान पूजा, अणुव्रत, महाव्रत के भाव, पुण्यभाव हैं, इनसे भी दृष्टि उठाओ।

(3) जैसे-चीनी से मिठास अलग नहीं हो सकती; उसी प्रकार अनन्त गुणों का अभेद पिण्ड जो अपना आत्मा है, उस पर दृष्टि दे तो तुरन्त कल्याण होता है।

प्रश्न 97- मनुष्यभव के लिए ज्ञानी देवता भी तरसते हैं - यह बात कैसे है ?

उत्तर - एक राजा था। उसे अपनी दौलत का बहुत अभिमान था। वह चाहता था कि मैं सबकों अपनी सम्पत्ति दिखलाऊँ, किन्तु मौका नहीं मिलता था। एक बार भगवान का समवसरण आया। उसने समवसरण में जाने के लिए रणभेरी बजवादी। उसने सोचा- अब अपनी सम्पत्ति दिखलाने का अच्छा मौका है। उसने अपनी समस्त दौलत, फौज, हाथी आदि सजाकर लोगों को दिखाकर समवसरण में जाने का विचार किया। उसके विचार को इन्द्र ने जान लिया। इन्द्र ने राजा का मान गलाने के लिए बड़े-बड़े हाथी और हाथी की सूँड़ पर अप्सरा नृत्य करती हुई - ऐसा बड़ा भारी वैभव निकलवाया, इन्द्र के वैभव को देखकर राजा का मान गल गया।

इन्द्र और राजा भगवान के समवसरण में पहुँचे और राजा ने इन्द्र को ललकारा – हे इन्द्रदेव! तुमने दौलत सम्बन्धी मेरे मान को नीचा दिखाया, अब मैं भगवती जिनेश्वरी दीक्षा लेता हूँ; तुम्हारे में शक्ति हो तो आ जाओ। तब इन्द्र कहता है – तुम बड़े भाग्यशाली हो, जो भगवती जिनदीक्षा ले रहे हो। मेरे इन्द्रपद से भी मनुष्यभव विशेष दुर्लभ है क्योंकि मैं मनुष्यभव में ही दीक्षा अङ्गीकार करके मोक्ष प्राप्त कर सकता हूँ।

भाई विचारो! जो जीव, मनुष्यभव प्राप्त करके पाँचों इन्द्रियों में ही अपना जीवन खो देते हैं, उन्हें सौ-सौ बार धिक्कार है। वास्तव में बालकपन, सम्यग्दर्शन है; जवानी, मुनिपना है; बुढ़ापा, केवलज्ञान है। इसके बदले जो जीव 'बालकपने में ज्ञान न लह्यौ; तरुण समय तरणी रत रह्यो; अर्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो।' यदि मनुष्यभव होने पर, धर्म की प्राप्ति न की, तो त्रसपर्याय की स्थिति पूर्ण होनेवाली है, निगोद तैयार है। सावधान-सावधान!!

प्रश्न 98- श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक में मनुष्यभव के विषय में क्या लिखा है?

उत्तर – एक मनुष्य पर्याय में कोई अपना भला होने का उपाय करे तो हो सकता है। जैसे, काने गन्ने की जड़ व उसका ऊपरी फीका भाग तो चूसने योग्य ही नहीं है और बीच की पोरें कानी होने से वे भी नही चूसी जातीं; कोई स्वाद का लोभी उन्हें बिगाड़े तो बिगाड़ो, परन्तु यदि उन्हें बोदे, तो उनसे बहुत से गन्ने हों और उनका स्वाद मीठा आवे; उसी प्रकार मनुष्यपर्याय का बालक-वृद्धपना तो सुखयोग्य है नहीं और बीच की अवस्था, रोग क्लेशादि से युक्त है, वहाँ सुख हो नहीं सकता; कोई विषयसुख का लोभी उसे बिगाड़े तो बिगाड़ो, परन्तु यदि उसे धर्मसाधन में लगाये, तो बहुत उच्चपद को पाये; वहाँ

सुख बहुत निराकुल पाया जाता है। इसलिए यहाँ अपना हित साधना; सुख होने के भ्रम से मनुष्यभाव को वृथा न खोना।

प्रश्न 99- मिथ्यादृष्टि को सम्यग्दृष्टि से ज्यादा पुण्य का बन्ध होता है - क्या ऐसा शास्त्रों में आया है ? अथवा त्रसपर्याय की स्थिति तो बहुत थोड़ी है, उसे काकतालीय न्यायवत् क्यों कही जाती है ?

उत्तर - (1) मिथ्यादृष्टि को साता का उत्कृष्ट बन्ध पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम का बँधता है। सम्यग्दृष्टि को साता का उत्कृष्ट बन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम का बँधता है। अज्ञानी कहता है देखो! मिथ्यादृष्टि को पुण्य कितना लम्बा बँधा है। अज्ञानी को मालूम नहीं कि मिथ्यादृष्टि की स्थिति बढ़ी; संसार बढ़ा और सम्यग्दृष्टि की स्थिति घटी, अनुभाग बढ़ा। त्रस की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो हजार सागर है।

(2) मिथ्यादृष्टि के पुण्य की पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थिति बहुत ज्यादा है, इतना पुण्य भोगने का स्थान है नहीं; अतः मिथ्यादृष्टि, त्रसपर्याय की स्थिति पूर्ण होने से पहले-पहले शुभ का अभाव करके, अशुभ करके, एकेन्द्रिय में चला जाएगा-जिसका दृष्टान्त द्रव्यलिङ्गी मुनि है। वह भगवान के कहे हुए व्रतादि का अतिचाररहित पालन करता है और उससे शुभभाव द्वारा नववें ग्रैवेयक तक में चला जाता है परन्तु फिर निगोद चला जाता है। 'जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय। तहँ तै चय थावर तर धरै, यों परिवर्तन पूरे करै॥' [छहढाला, पहली ढाल] मिथ्यादृष्टि को इतना लम्बा पुण्य भोगने का स्थान नहीं है।

(3) सम्यग्दृष्टि को अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम का उत्कृष्ट पुण्य बँधता है। अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम से त्रस की स्थिति कम

है, इतना पुण्य भोगने का स्थान है नहीं। अतः सम्यग्दृष्टि पुण्य का अभाव करके अल्प काल में पूर्ण शुद्ध होकर, नियम से मोक्ष चला जाता है।

(4) अब, जिसको मनुष्यभव मिला; दिगम्बरधर्म मिला; सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का समागम मिला - ऐसे समय में जो जीव अपने स्वभाव का आश्रय नहीं लेता है परन्तु निमित्त से कार्य होता है या शुभभाव करते-करते धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता होती है - ऐसा मानता है; शुभभाव से भला होता है - ऐसा मानता है तथा आत्मा-आत्मा की बातें करता है परन्तु अपना आश्रय नहीं लेता, तो समझ लो उसकी त्रसपर्याय की स्थिति पूरी होने को आयी है।

हे भव्य! तू सावधान हो जा, सावधान हो जा, ऐसा अवसर मिलना कठिन है; और सावधान नहीं हुआ तो निगोद तैयार है। श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 32 में लिखा है 'परिभ्रमण करने का उत्कृष्ट काल, पृथ्वी आदि स्थावरों में असंख्यात कल्पमात्र है और दो इन्द्रियादि से पञ्चेन्द्रियपर्यन्त त्रसों में साधिक दो हजार सागर है।' इस प्रकार अधिकांश तो एकेन्द्रिय पर्यायों का ही धारण करना है; अन्य पर्यायों की प्राप्ति (त्रसपर्यायों की प्राप्ति) तो काकतालीय न्यायवत् जानना।

प्रश्न 100- क्या द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से ज्ञान की हानि-वृद्धि होती है?

उत्तर - नहीं होती है, क्योंकि द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से ज्ञान की हानि वृद्धि का सम्बन्ध नहीं है।

(1) नोकर्म - जैसे-एक आदमी का पैर कट गया, शरीर के अङ्ग में कमी हुई, परन्तु कट गया-ऐसा ज्ञान तो हुआ। किसी के पास 50 हजार रुपये थे, उसमें से 25 हजार रुपये घट गये परन्तु घट

गये-इतना ज्ञान तो बढ़ गया। इसलिए नोकर्म में कमी हो तो ज्ञान घट जावे, यह बात गलत है।

(2) **द्रव्यकर्म** - कोई कहे, ज्ञानवरणीय के उदय से ज्ञान रुकता है - तो विचारो! पहिले कर्म सत्ता में था, अब उदय में आया - इतना ज्ञान बढ़ा; इसलिए द्रव्यकर्म के कारण ज्ञान घटता है या बढ़ता है-ऐसा नहीं है।

(3) **भावकर्म** - चारित्रगुण का विभावरूप कार्य है। ज्ञान हुआ, वह ज्ञानगुण का कार्य है। राग हुआ और ज्ञान हुआ - दोनों का समय एक है। ज्ञानगुण की पर्याय ने राग को जाना - तो विचारो! इतना ज्ञान बढ़ा; इसलिए भावकर्म के कारण भी ज्ञान में रुकावट नहीं होती है।

इससे निश्चित होता है कि आत्मा को ज्ञान और सुख उत्पन्न करने में शरीर आदि नोकर्म, पाँचों इन्द्रियों के विषय, द्रव्यकर्म और भावकर्म किञ्चित् भी कार्यकारी नहीं हैं। एकमात्र नोकर्म, भावकर्म, द्रव्यकर्म से दृष्टि उठाकर अपने ज्ञायकस्वभाव ही दृष्टि देने से सम्यग्ज्ञान और अतीन्द्रियसुख उत्पन्न होता है।

प्रश्न 101- संसारपरिभ्रमण का अभाव कैसे हो?

उत्तर - (1) स्व में एकता, (2) पर से भिन्नता, (3) करो अपनी आत्मा में लीनता, (4) मिट जावेगी संसारपरिभ्रमण की एकता।

प्रश्न 102- भूत क्या और अभूत क्या है?

उत्तर - जिसमें जो हो, उसे उसका कहना, वह भूत है और जो जिसमें न हो, उसे उसका कहना, वह अभूत है।

प्रश्न 103- श्रीकुन्दकुन्दभगवान क्या कहते हैं?

उत्तर - मैं ऐसा नहीं कहता, परन्तु सर्वज्ञ भगवान ऐसा कहते हैं।

प्रश्न 104- सर्वज्ञभगवान क्या कहते हैं ?

उत्तर - जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा हमारे ज्ञान में आया है; इसलिए हम कहते है।

प्रश्न 105- आत्मा, मात्र शुद्ध या अशुद्धभाव ही कर सकता है तो फिर हम शरीर की क्रिया, दान देना, पूजा आदि की क्रिया करें या नहीं ?

उत्तर - जैसे - बढ़वाण में एक नदी बहती है, उसमें बहुत सूक्ष्म बालू होता है। अब हमें बालू से तेल निकलना है; उस तेल निकालने की मशीन का आर्डर अमेरिका को दे या रूस को दें ? अरे भाई ! जब बालू से तेल निकलता ही नहीं, तब आर्डर देने की बात कहाँ से आयी ? उसी प्रकार जब आत्मा, शरीर की क्रिया, रुपया-पैसा देने की क्रिया करता ही नहीं, तब हम करें या नहीं ? यह प्रश्न ही झूठा है। जीव तो मात्र भाव ही कर सकता है। मिथ्यादृष्टि की मर्यादा विकारीभावों तक है; ज्ञानी की मर्यादा शुद्धभावों तक है परन्तु द्रव्यकर्म-नोकर्म की क्रिया तो ज्ञानी-अज्ञानी कोई भी कर सकता ही नहीं है, तब मैं करूँ या न करूँ ? - यह प्रश्न मिथ्यात्व से भरा हुआ है।

प्रश्न 106- जो यह कहता है कि अभी तो जवान होकर गृहस्थी के मजे ले-लें, घर और बाल बच्चों का इन्तजाम कर दें, तब बाद में धर्म करेंगे - तो क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर - अरे भाई ! क्या तुझे निश्चय है कि मैं अगले समय रहूँगा या नहीं ? इसलिए जो कहता है - धर्म फिर करूँगा, वह कभी धर्म को प्राप्त न कर सकेगा और ऐसे विचारों में ही चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद चला जाएगा।

एक धोबी उड़द की दाल, लहसुन आदि खाकर निर्मल जल से

भरे हुए तालाब में कपड़े धोने लगा। उसे प्यास लगी, तो विचारता है - अभी तो दो ही वस्त्र धुले हैं, थोड़े और धुलने पर पानी पीऊँगा; फिर प्यास जोर से लगी 'ये धोने के बाद, ये धोने के बाद,... जल पीऊँगा।' इस प्रकार संकल्प-विकल्प करता रहा और मस्तिष्क में गरमी चढ़ गयी, इससे बेसुध होकर जल में गिर गया और वहीं मर गया।

उसी प्रकार निगोद में लगाकर द्रव्यलिङ्गी मिथ्यादृष्टि मुनि तक सब संसारी जीव सोचते हैं कि यह करने के बाद, गुरु के उपदेश द्वारा सम्यग्ज्ञानरूपी जल पीकर सुखी होऊँगा। यह करने के बाद, यह करने के बाद, ऐसा करता-करता मरकर, पता नहीं कहाँ चला जाता है ? इसलिए हे आत्मा ! तुरन्त चेत, देर मत कर। इसलिए पात्र जीव को एक समय की भी देरी न करके, अपना कल्याण तुरन्त कर ही लेना चाहिए।

यह जीव इसी प्रकार मनुष्यजन्म पाकर, विषयों के लोभ में पागल होकर, चारों गतियों में घूमकर, निगोद में चला जाता है। इसलिए हे भव्य ! अब सर्व प्रकार अवसर आया है, ऐसा अवसर मिलना कठिन है। तू अपने भगवान का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति कर, सावधान हो, देर मत कर।

प्रश्न 107- परिणामों की विचित्रता कैसी है ?

उत्तर - देखो, परिणामों की विचित्रता।

(1) कोई जीव तो ग्यारहवें गुणस्थान में औपशमिकचारित्र प्राप्त करके, पुन: मिथ्यादृष्टि होकर किञ्चित् न्यून अर्द्ध पुद्गलपरावर्तन कालपर्यन्त संसार में परिभ्रमण करता है।

(2) कोई जीव, नित्य निगोद से निकलकर, मनुष्य होकर, मिथ्यात्व छूटने के पश्चात्, अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त करता है।

(3) सीता को रावण हरण करके ले गया। रामचन्द्रजी वृक्षों से पूछते हैं, क्या मेरी सीता तुमने देखी है?

(4) वही सीता घर आने पर लोगों के कहने से कि रावण के पास से आयी हुई है, उन्होंने सीता को वनवास में भिजवा दिया।

(5) अग्नि परीक्षा पर वही रामचन्द्र, सीता से कहते हैं, घर चलो, तुम्हें पटरानी बनाकर रखूँगा। सीता, अर्जिका बन जाती है।

(6) सीता का जीव मरकर सोलहवें स्वर्ग में देव हो जाता है। रामचन्द्र जिनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करते हैं; सीता का जीव स्वर्ग से आकर सीता का रूप बनाकर रामचन्द्रजी को डिगाने का प्रयत्न करता है।

अरे भाई! देखों परिणामों की विचित्रता! ऐसा जानकर अपने परिणाम बिगड़ने का भय रखना और उनके सुधारने का उपाय करना। कहा भी है - जीवन के परिणामनि की यह, अति विचित्रता देखहु ज्ञानी।

प्रश्न 108- केवल श्रुतज्ञान में ही नय क्यों पड़ते हैं?

उत्तर - श्रुतज्ञान, विचारक ज्ञान है। श्रुतज्ञान में त्रिकाली स्वरूप क्या है; वर्तमान स्वरूप (पर्यायस्वरूप) क्या है? - दो बातें चलती हैं; इसलिए श्रुतज्ञान में नय पड़ते हैं। मतिज्ञान, सीधा जानता है। अवधि और मन:पर्ययज्ञान का विषय पर है और विकलप्रत्यक्ष है। केवलज्ञान, सकलप्रत्यक्ष है; इसलिए इन चार ज्ञानों में नय नहीं पड़ते हैं। मात्र भावश्रुतज्ञान में ही नय पड़ते हैं।

गाली क्या है?

प्रश्न 109- कोई हमें गाली दे, क्या हम उसे सुनते ही रहें, हम उसे थप्पड़ न मारे?

उत्तर - वस्तुस्वरूप समझे, तो शान्ति प्राप्त होगी।

(1) उसने मुझे गालियाँ दी। जिनको तू गाली कहता है, वह गाली ही नहीं है। विचारियेगा! गाली दी—इसमें पाँच बोल हैं। (अ) गाली क्या है? 'अ' से लेकर 'ह' तक स्वर-व्यञ्जन का परिणमन है। इसका कर्ता, भाषावर्गणा है; जीव नहीं। इसलिए मुझे गाली दी, यह बात झूठ है। (आ) यदि गाली सुनते ही गुस्सा आवे, तो सब जगह एक-सा सिद्धान्त होना चाहिए, परन्तु ससुराल में साली, गाली दे तो अच्छी लगती है। इसलिए गाली सुनने से किसी को भी दुःख-सुख नहीं होता, मात्र अपने राग-द्वेष के कारण ही दुःख-सुख होता है - ऐसा माने-जाने तो क्रोध नहीं आवेगा।

(2) उस जीव ने मुझे गालियाँ दी। विचारियेगा! क्या कोई जीव, शब्द का परिणमन करा सकता है? नहीं। गाली देनेवाले ने अपने ज्ञाता-दृष्टास्वभाव को भूलकर, गाली देने का भाव मात्र किया। वह द्वेषभाव है। वह द्वेषभाव से स्वयं दुःखी है। क्या दुःखी को दुःखी करना भले आदमी का कार्य है? नहीं, क्योंकि दुःखी जीव तो दया का पात्र है।

(3) उसने मुझे गालियाँ दी। विचारियेगा! क्या उसने तुम्हारे जीव को देखा है? नहीं। उसने नाम—शरीर को उद्देश्य करके गाली देने का द्वेषभाव किया। विचारो! नाम—शरीर तो तुम हो नहीं। नाम और शरीर, तुम्हारा न होने पर भी, उसको (शरीर, नाम को) अपना मानना भूल है। अज्ञानी जीव, शरीर और नाम को अपना मान बैठा है; इसलिए दुःखी होता है। ज्ञानी जानता है कि मैं आत्मा हूँ, शरीर और नाम मैं नहीं हूँ - ऐसा जाने-माने तो क्रोध नहीं आवेगा।

(4) एक साधु अपने चेलों के साथ चला जा रहा था। रास्ते में एक आदमी चलते-चलते साधु महाराज को गालियाँ दे रहा था। चेलों को बहुत गुस्सा आया। साधु ने चेलों को चुप रहने का आदेश

दिया। चलते-चलते साधु की कुटिया आ गयी। साधु चेलोंसहित अन्दर चला गया। गाली देनेवाला देखता ही रहा। बाद में साधु ने चेलों को बुलाया—देखो, कोई हमकों 10 रुपया देता है, हम न लें तो किसके पास रहे ? उसी के पास रहें; उसी प्रकार उसने गालियाँ दीं, हमने नहीं ली, वह उसी पर रह गयीं। ऐसा जाने तो शान्ति आ जावेगी।

(5) उसने मुझे गालियाँ दी — जब तेरे ज्ञान का उघाड़ गाली सुनने का हो तो सामने गाली ही होगी। विचारियेगा ! गाली का जीव के भाव के साथ कैसा सम्बन्ध है ? ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध है; कर्ता -कर्मसम्बन्ध नहीं है। तुम एक आत्मा हो और आत्मा में अनन्त गुण हैं। ज्ञानगुण में प्रत्येक समय पर्याय होती है। जब तेरी क्षयोपशमरूप ज्ञान की पर्याय अपनी योग्यता से गाली सम्बन्धी ज्ञान की होती है, उस समय गाली, मात्र ज्ञान का ज्ञेय है क्योंकि जब तेरे ज्ञान का उघाड़ जिस प्रकार का हो, उस समय ज्ञेय भी उसके अनुकूल ही होता है। सामने गाली आयी तो ज्ञान बढ़ा। पहले गाली सम्बन्धी ज्ञान नहीं था, अब गाली का ज्ञान हुआ। हमें गुरु ज्ञान देवे, उसका उपकार मानना चाहिए या उस पर गुस्सा करना चाहिए ?

(6) उसने मुझे गालियाँ दी—विचारियेगा ! अज्ञानी कहता है मुझे गाली नहीं चाहिए, अर्थात् मुझे उस सम्बन्धी अपनी ज्ञान की पर्याय नहीं चाहिए। ज्ञानपर्याय आती है, ज्ञानगुण से; और ज्ञानगुण है आत्मा का; अर्थात् मुझे आत्मा नहीं चाहिए। ऐसी मान्यतावाले को शास्त्रों में आत्मघाती महापापी कहा है।

प्रश्न 110- आत्माघाती, महापापी, मूढ़ कहाँ पर लिखा है ?

उत्तर - श्रीसमयसार, गाथा 373-374 एवं 382 में कहा है कि-

पुद्गल दरब बहुभाँति, निन्दा-स्तुति-वचनरूप परिणमे।
सुनकर उन्हें मुझको कहा गिन रोष तोष जु जीव करे॥

पुद्गल दरव शब्दत्व परिणत, उसका गुण जो अन्य है।
तो नहीं कहा, कुछ भी तुझे, हे अबुध! रोष तूँ क्यों करे॥
यह जानकर भी, मूढ़ जीव पावै नहीं, उपशम अरे।
शिवबुद्धि को पाय नहीं, वो पर ग्रहण करना चहे॥

प्रश्न 111- तीन प्रकार के ईश्वर कौन से हैं। उनके जानने से क्या लाभ है?

उत्तर - (1) जड़ेश्वर, (2) विभावेश्वर, (3) स्वभावेश्वर।

(1) जड़ेश्वर - प्रत्येक द्रव्य, गुणों का समूह है। पुद्गलद्रव्य भी गुणों का समूह है। भाषा, मन, वाणी, कर्म आदि का परिणमन, पुद्गल का स्वयं स्वतः कार्य है। प्रत्येक पुद्गल, जड़ेश्वर है। जड़ेश्वर का आत्मा से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, तब जड़ेश्वर जाना।

(2) विभावेश्वर - हिंसादिभाव, अहिंसादिभाव, विभावेश्वर कहलाते हैं। अज्ञानी को हजारों तीर्थङ्करादि भी ज्ञानी नहीं बना सकते, क्योंकि अज्ञानी, विभाव करने में भी ईश्वर है।

(3) स्वभावेश्वर - अनन्त गुणों का पिण्ड जो अपना आत्मा है, वह मेरा स्वभावेश्वर है। जीव, स्वभावरूप परिणमन करे, उसे अनन्त प्रतिकूलता रुकावट नहीं कर सकती हैं। ऐसा जानकर, अपने ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लेकर, धर्म की प्राप्ति हो, तब तीनों ईश्वरों का पता चलता है।

प्रश्न 112- धर्म प्राप्ति के तीन बोल कौन-कौन से ध्यान में रखना चाहिए?

उत्तर - (1) अनादि काल से आज तक अनन्त शरीर धारण किये परन्तु एक रजकण भी अपना नहीं बना। रजकण कहता है - मैं तेरा स्वामीपना स्वीकार नहीं करता हूँ लेकिन तू ज्ञानस्वभावी आत्मा

होने पर भी, अपनी मूर्खता से मेरा स्वामी बनता है। तू मेरा स्वामी बन तो नहीं सकता परन्तु मान्यता में स्वामी बनने से तुझे आकुलता हुए बिना नहीं रहेगी। जब तक तू मेरा स्वामीपना मानता रहेगा, तब तक चारों गतियों में घूम-घूम कर निगोद की सैर करता रहेगा।

(2) अनादि काल से आज तक असंख्यात लोकप्रमाण विकारभाव किया लेकिन वह का वह विकार नहीं रहा। जैसे—पाँच दिन पहले हमारी किसी से लड़ाई हुई, उस समय जो लाल-पीले हुए थे, अब आज विचार करने वैसा लाल-पीलापना दृष्टि में नहीं आता है, अर्थात् वह का वह विकार नहीं रहता। विकार, आकुलता का कारण है; शुभाशुभभाव दोनों आकुलतारूप हैं, दु:खरूप हैं; इसलिए पात्र जीवों को इनसे दृष्टि उठा लेनी चाहिए।

(3) अनादि काल से आज तक एकरूप रहनेवाला जो अपना त्रिकाली स्वभाव है, उसका लक्ष्य नहीं किया है। यदि उसका लक्ष्य करे तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति होती है। राग / विकार और परवस्तु अध्रुव है और अपना ज्ञायकस्वभाव ध्रुव है; वह ही प्राप्त करने योग्य है; अध्रुव शरीर-धन-विकार-लक्ष्मी आदि प्राप्त करने योग्य नहीं है।

प्रश्न 113- ज्ञानी का बन्ध क्यों नहीं होता है और अज्ञानी को क्यों होता है ?

उत्तर - जैसे—किसी की आँख पर पट्टी बाँध दो,

(1) वह परपदार्थ को नहीं देख सकता;

(2) पट्टी को भी नहीं देख सकता;

(3) शरीर को भी नहीं देख सकता है - यदि जरा पट्टी को दूर कर दो, तो वह -

(1) परपदार्थों को भी देख सकता है;

(2) पट्टी को भी देख सकता है;

(3) शरीर को भी देख सकता है; उसी प्रकार अज्ञानी के ऊपर अनादि काल से एक-एक समय करके मोह-राग-द्वेषरूप मिथ्यादर्शन ज्ञना-चारित्र की पट्टी बँधी हुई है, उसी पट्टी के नशे में

(1) न तो स्व को जानता है;

(2) न पर को ही जानता है;

(3) न ही विकार को जानता है। यदि अपने त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से पट्टी को दूर कर दे, तो

(1) स्व को जानता है;

(2) पर भी ज्ञात होात है; और

(3) विकार भी ज्ञात होता है।

मिथ्यादृष्टि को जैसा वस्तुस्वरूप है, वैसा दृष्टि में नहीं आता है; इसलिए बन्ध होता है और ज्ञानी को, जैसा वस्तुस्वरूप है, वैसा हो ज्ञान में आता है; इसलिए बन्ध नहीं होता है। श्री समयसार, 19 वीं गाथा में मिथ्यादृष्टि की पहिचान और 75 वीं गाथा में ज्ञानी की पहिचान बतलायी है।

प्रश्न 114- अज्ञानी के स्वभाव को, ज्ञानियों ने 'हरामजादीपना' आदि शब्दों से क्यों सम्बोधन किया है ?

उत्तर - जैसे - कोई पतली सी चादर ओढ़कर सो रहा हो, उस पर जरा धीरे से हाथ फेरे तो तुरन्त जाग जाता है; उसी प्रकार पात्र जीव को ज्ञानी कहते हैं - तेरा कार्य तो मात्र ज्ञाता-दृष्टा है; पर से, विकार से तेरा सम्बन्ध नहीं है - तो इतना कहते ही ज्ञानी हो जाता है और जैसे—जिसने अपने ऊपर मोटे-मोटे तीन गद्दे डाल रखे हों, उस पर कोई लाठियाँ भी बरसावे, तो वह जागता नहीं है; उसी प्रकार

अनादि के अप्रतिबुद्ध को ज्ञानी बारम्बार समझाते हैं परन्तु वह समझता नहीं है; इसलिए ज्ञानियों ने 'हरामजादीपना' आदि शब्दों द्वारा उसके भले के लिए सम्बोधन किया है। वह उनका बड़ा उपकार है।

प्रश्न 115- जब जीव, विकार करता है, तब उसी के अनुसार कर्म का बन्ध होता है, यह बात तो ठीक है परन्तु दूसरा पक्ष कहता है कि कार्माणवर्गणा में से जब कर्मबन्ध होने की योग्यता होती है, तब जीव को विकार करना ही पड़ेगा, यह आप क्यों नहीं कहते ?

उत्तर - (1) उस समय होगा जगत में ऐसा कोई अज्ञानी जो विकार करता होगा। तुझे ही विकार करना पड़ेगा - यह बात कहाँ से आयी।

(2) यह जीव स्वयं अपने अपराध से विकार करता है - ऐसा जाने तो स्वभाव के आश्रय से विकार को दूर भी कर सकता है।

(3) यदि कर्म का उदय, विकार कराये तो कभी मोह-राग -द्वेष का अभाव नहीं होगा, क्योंकि कर्म का उदय तो प्रति समय होता है।

(4) जयसेनाचार्य ने श्रीप्रवचनसार, गाथा 45 में कहा है 'द्रव्यमोह का उदय होने पर भी जीव, शुद्धात्मभावना के बल द्वरा विकार न करे तो बन्ध नहीं होता, परन्तु निर्जरा होती है।'

(5) यदि द्रव्यकर्म, विकार कराये तो जीव जहाँ पड़ा है, वहीं पड़ा रहेगा, कभी निगोद से भी न निकल सकेगा।

(6) जैसे - अपने घर पर कोई मेहमान आवे, आप उसका आदर न करें तो वह चला जाता है; उसी प्रकार कर्म का उदय आने पर, आप विकार करनेरूप उसका आदर न करें, तो वह भी चला

जाता है, अर्थात् उसकी निर्जरा हो जाती है लेकिन अज्ञानी जीव, मूर्खता करता है, तब कर्म आकर बँध जाता है।

प्रश्न 116– श्रीसमयसार, गाथा 50 से 55 तक को तीन बोलों में किस प्रकार बाँटा है और इनसे क्या-क्या लाभ हैं?

उत्तर – (1) रङ्ग (पुद्गल), (2) राग (विकार), (3) भेद (गुणभेद) – इन तीनों के आश्रय से अधर्म की प्राप्ति होती है; धर्म की प्राप्ति नहीं होती है। इनसे दृष्टि हटाकर, स्वभाव पर दृष्टि दे तो भला हो। अर्थात् (1) निरङ्ग, (2) निराग, (3) निभेद जो अपना त्रिकाली स्वभाव है, उसका आश्रय ले तो तुरन्त ही धर्म की शुरुआत, वृद्धि होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 117– पर का करूँ, विस्मरूँ और मरूँपना मानता है – उसका फल क्या है?

उत्तर – (1) मैं पर का करूँ–करूँ, (2) तो आत्मा को समय –समय विस्मरूँ, और (3) समय–समय भयंकर भावमरण से मरूँ। इसलिए जो जीव, पर के करने–धरने के भाव में लगा रहता है, उसका फल निगोद है और उसका मिथ्यात्व गुणस्थान है।

प्रश्न 118– मैं पर का कुछ न करूँ – ऐसे श्रद्धानादि का क्या फल है?

उत्तर – (1) मैं पर का कुछ न करूँ, किन्तु आत्मा को स्मरूँ (चौथा गुणस्थान)। (2) अपने स्वरूप में ठहरूँ (6–7 वाँ गुणस्थान)। (3) रागादि को सर्वथा परिहरूँ (बारहवाँ गुणस्थान)। (4) मोक्षलक्ष्मी को वरूँ (13–14 वाँ गुणस्थान और सिद्धदशा)।

प्रश्न 119– आत्मा में जोड़, बाकी, गुणा और भाग कैसे करना चाहिए?

उत्तर – **(1) जोड़** – अपनी आत्मा में शुद्धता का जोड़ करना।

(2) बाकी - अपनी आत्मा में से राग / विकार का बाकी रहना।

(3) गुणा - शुद्धि का गुणाकाररूप करना।

(4) भाग - भाग करते हुए जो एक ज्ञायकभाव बचा, वह 'मैं' यह आत्मा का जोड़, बाकी, गुणा और भाग है।

प्रश्न 120- सबसे सूक्ष्म कौन है और उसके जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर - (1) जब औदारिकशरीर को स्थूल कहें, तो वैक्रियिकशरीर सूक्ष्म है।

(2) जब वैक्रियिकशरीर को स्थूल कहें, तो आहारशरीर सूक्ष्म है।

(3) जब आहारिकशरीर को स्थूल कहें, तो तैजसशरीर सूक्ष्म है।

(4) जब तैजसशरीर को स्थूल कहें, तो कार्माणशरीर सूक्ष्म है।

(5) जब कार्माणशरीर को स्थूल कहें, तो पुण्य-पाप विकारीभाव सूक्ष्म है।

(6) जब विकारीभावों को स्थूल कहें, तो शुद्धपर्याय सूक्ष्म है।

(7) जब शुद्धपर्याय को स्थूल कहें, तो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव सूक्ष्म है; इसलिए एकमात्र अपना त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव अति सूक्ष्म है। उसका आश्रय लेने से ही धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है। त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की अपेक्षा सब स्थूल हैं। स्थूल का आश्रय लेने से चारों गतियों में परिभ्रमण करना पड़ता है।

प्रश्न 121- पात्र धीर पुरुष कौन है ?

उत्तर - जैसे - जब राक्षसों ने देवों को परेशान किया, तब वह भगवान के पास गये कि हमें राक्षस परेशान करते हैं। तब भगवान ने कहा – राक्षसों के बचने के लिए यदि समुद्र में से अमृत निकालकर

पी लिया जावे तो राक्षस नुकसान नहीं पहुँचा सकेंगे। तब देवों ने समुद्र को मथना शुरू किया तो उसमें से कीमती रत्न निकले, तो उन्होंने उसकी परवाह नहीं की, क्योंकि उनको तो अमृत की आवश्यकता थी; फिर मथते-मथते हलाहल जहर निकला, तब भी घबराये नहीं, क्योंकि उनको तो अमृत चाहिए था। फिर बाद में मथते-मथते अमृत की प्राप्ति हुई, तब राक्षसों से देवों की रक्षा हुई; (यह लौकिक दृष्टान्त है); उसी प्रकार यह जीव अनादि से एक -एक समय करके दु:खी हो रहा है, तब वह दु:खी जीव, भगवान के समवसरण में गया तो भगवान की दिव्यध्वनि में आया - यदि यह जीव, दु:खों से बचना चहता है तो अपना जो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव समुद्र है, उसका आश्रय ले तो, यह दु:खों से मुक्त हो सकेगा। तब पात्र जीव, स्वभाव का आश्रय लेने का प्रयत्न करता है तो बीच में शुभभाव आता है तो पात्र जीव उसकी ओर दृष्टि नहीं करता, क्योंकि उसे तो सम्यग्दर्शनादि की आवश्यकता है। कोशिश करते-करते, कभी अशुभभाव का उदय भी आ जाता है, तब भी पात्र जीव, घबराते नहीं क्योंकि उनको तो रत्नत्रय की आवश्यकता है। फिर विशेष पुरुषार्थ किया तो सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हुई, तब मोह राग-द्वेषरूप राक्षसों से बचा—ऐसे धीर पुरुष, सम्यग्दृष्टि आदि हैं।

प्रश्न 122- दिगम्बर नाम धरने पर भी क्या बौद्ध, सांख्य, चार्वाक और श्वेताम्बर हो सकता है?

उत्तर - (1) दिमग्बर जैन कहलाने पर भी, लड़का मरने से 'वह मर गया।' संसार के पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट परिवर्तन होने पर अपने में इष्ट-अनिष्टपना मानना, वह स्वयं क्षणिकवादी बौद्ध है।

(2) दिगम्बर जैन नाम धराकर, 'आत्मा तो सर्वथा त्रिकाल शुद्ध ही है, कर्म ही राग-द्वेष कराता है, कर्म ही संसार-मोक्ष कराता है' - ऐसी मान्यतावाला स्वयं सांख्यमतावलम्बी है।

(3) दिगम्बर जैन नाम धराकर, 'अरे भाई! शरीर की सम्हाल रखो। यदि शरीर को ठीक नहीं रखोगे, तो धर्म नहीं होगा' इत्यादि मान्यतावाला स्वयं चार्वाक है।

(4) दिगम्बर जैन नाम धराकर, 'शुभभाव करो तो तुम्हें धर्म का लाभ होगा' इत्यादि मान्यतावाला स्वयं श्वेताम्बर है।

प्रश्न 123- इन्द्रियों को क्यों जीतना चाहिए?

उत्तर - (1) ज्ञानी कहते हैं कि शास्त्रों में कथन आया है कि इन्द्रियों को जीतो। अज्ञानी कहता है - इन्द्रियाँ तो ज्ञान में निमित्त पड़ती हैं, उन्हें क्यों जीतना चाहिए?

(2) ज्ञानी कहते हैं - इन्द्रियाँ, ज्ञान में निमित्त है, तो भोग में भी निमित्त हैं; इसलिए इन्द्रियों को जीतना चाहिए। अज्ञानी कहता है -जितनी भोग में निमित्त हैं, उसे जीतो और जो ज्ञान में निमित्त है, उसे मत जीतो।

(3) ज्ञानी कहता है - इन्द्रियाँ, पुद्‌गलों के जानने में निमित्त हैं; अतीन्द्रिय ज्ञायकस्वभावी आत्मा को जानने में निमित्त नहीं हैं; इसलिए इन्द्रियों को जीतना चाहिए।

प्रश्न 124- नन्द, आनन्द, महानन्द, सहजानन्द और परमानन्द से क्या तात्पर्य है तथा इनमें गुणस्थान लगाकर बताओ?

उत्तर - [अ] **नन्द** - अपना त्रिकाली भगवान है। जो उसकी मर्यादा में रहता है, उसे **आनन्द** की प्राप्ति होती है। अपने **नन्द** की विशेष एकाग्रता करने से **महानन्द** की प्राप्ति होती है। **नन्द** में और विशेष एकाग्रता करने से **सहजानन्द** की प्राप्ति होती है और फिर पूर्ण एकाग्रता करने से **परमानन्द** की प्राप्ति होती है।

(1) नन्द = त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव।

(2) आनन्द = चौथा गुणस्थान।

(3) महानन्द = सातवाँ गुणस्थान।

(4) सहजानन्द = बारहवाँ गुणस्थान।

(5) परमानन्द = तेरहवाँ-चौदहवाँ गुणस्थान एवं सिद्धदशा।

[आ] जो अपने नन्द का आश्रय न ले, बल्कि पर-नन्द का आश्रय, शरीर का आश्रय, विकार का आश्रय, शुद्धपर्याय का आश्रय लेता है, वह चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद में चला जाता है।

प्रश्न 125- श्री अमृतचन्द्राचार्य ने सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय क्या बताया है?

उत्तर - (1) जीव को अनादि काल से अपने स्वरूप की भ्रमणा है; इसलिए प्रथम, आत्मज्ञानी पुरुष से आत्मा का स्वरूप सुनकर युक्ति द्वारा आत्मा, ज्ञानस्वभावी है - ऐसा निर्णय करना।

(2) फिर परपदार्थ की प्रसिद्धि के कारण जो इन्द्रिय तथा मन द्वारा प्रवर्तित बुद्धि को मर्यादा में लाकर, अर्थात् परपदार्थों की ओर से लक्ष्य हटाकर, स्वसन्मुख लक्ष्य करना।

(3) पश्चात् 'आत्मा का स्वरूप ऐसा ही है; अन्यथा नहीं' - ऐसा निर्णय हुआ।

(4) निर्णय किये हुए आत्मा के बोध को दृढ़तारूप से धारण करना, यह सम्यक् मतिज्ञान हुआ।

(5) तत्पश्चात् अनेक प्रकार के नयपक्षों का आलम्बन करनेवाले विकल्पों से आकुलता उत्पन्न करनेवाली श्रुतज्ञान की बुद्धि को भी गौणकर, उसे भी आत्माभिमुख करता हुआ, विकल्पों को पारकर स्वानुभवदशा प्राप्त करता है।

[श्रीसमयसार, गाथा 144 के आधार से]

प्रश्न 126- ज्ञानी के पास जाकर क्या करे, तो कल्याण का अवकाश है ?

उत्तर - जैसे - एक गरीब आदमी था, उसके चार लड़के थे। उस आदमी ने चार काँच के टुकड़े जमीन में दबा दिये और अपने लड़कों को बुलाकर कहा - बेटा ! मेरे मरने के बाद जब तुम भूखे मरने लगो, तब तुम ऐसा करना, मैंने चार हीरे जमीन में दबा दिये हैं, उनमें से एक हीरा निकालकर धन्नालाल सेठ के पास जाना। वह तुम्हें ठीक पैसे दे देगा, उससे अपनी आजीविका चलाना।

पिता तो मर गया, घर में खाने को रहा नहीं। तब उन्होंने जमीन खोदकर हीरों को निकाला और एक हीरे को लेकर धन्नालाल सेठ के पास गये। धन्नालाल समझ गया। उसने कहा, यह हीरा बहुत कीमती है, इसका ग्राहक इस समय नहीं है। तुम इस हीरे को इस अलमारी में रख दो और जितना रुपया खर्च के लिये चाहिए ले जाओ और आज से यहीं काम सीखना शुरु कर दो। उन्होंने ऐसा ही किया। काम करते-करते दो साल हो गये, तब धन्नालाल सेठ ने कहा - तुम आज अपने हीरे को निकालकर लाओ, आज उसका खरीददार आया है। जब उसने अलमारी में से हीरा निकाला और देखकर फेंक दिया और सेठ से आकर कहा, सेठजी वह तो काँच का टुकड़ा था, आपने उसे कीमती कैसे बताया था ? सेठ ने कहा - भाई ! जिस दिन तुम उसे लेकर आये थे, यदि मैं काँच का टुकड़ा कहता तो तुम विश्वास नहीं करते और यह कहते कि यह सेठ हमें ठगना चाहता है, इसलिए मैंने ऐसा कहा था; उसी प्रकार अज्ञानी ने अनादि काल से दिगम्बरधर्म धारण करने पर भी, शुभभाव करते-करते धर्म हो जावेगा, ऐसी मान्यता पक्की कर ली है। इसलिए जब हम ज्ञानी के पास जावें तो अपनी मान्यता को तिजोरी से बन्द करके, उनकी बात सुने और विचारे तो कल्याण का अवकाश है। अत: प्रथम सच्चे

देव–गुरु का निर्णय करके, जैसा गुरु ने कहा, देव ने कहा और जैसा उपदेश दिया, वैसा ही निर्णय करके, अपने अन्तरङ्ग में जब तक भावभासन न हो, तब तक पात्र जीव को बराबर उद्यम करना चाहिए परन्तु जो गुरु की बात झूठी माने, उसके कल्याण का अवकाश नहीं है।

प्रश्न 127– 'जे विनयवन्त सुभव्य उर, अम्बुज प्रकाशन भान है; जे एक मुख चारित्र भासित, त्रिजग माहीं प्रधान है' - इसका क्या अर्थ है?

उत्तर – जिनेन्द्रभगवान की वाणी में आया है कि 'तीन काल और तीन लोक में चारित्र ही प्रधान है' (यहाँ 'मुख' का अर्थ मुख्य है), इसलिए विनयवन्त सुभव्य (अति आसन्न) जीवों को चारित्र ग्रहण करना चाहिए। यदि चारित्र धारण न कर सके तो श्रावकपना ग्रहण करना चाहिए और यदि श्रावकपने को भी प्राप्त न कर सके तो सम्यग्दर्शन को तो प्राप्त कर ही लेना योग्य है।

प्रश्न 128– यह कहाँ आया है कि पहले चारित्र (मुनिधर्म) का उपदेश और जो चारित्र ग्रहण कर न सके तो फिर श्रावक, सम्यक्त्व का उपदेश देना चाहिए?

उत्तर – श्रीपुरुषार्थसिद्ध्युपाय, गाथा 17 में लिखा है कि जो जीव, सम्पूर्ण निवृत्तिरूप मुनिदशा को कदाचित् ग्रहण न कर सके, तो उसे गृहस्थाचार का कथन करे तथा 18 वें श्लोक में 'जो उपदेशक (प्रथम) मुनिधर्म का उपदेश न देकर, श्रावकधर्म का उपदेश देता है, उस उपदेशक को सिद्धान्त में दण्ड पाने का स्थान कहा है।'

प्रश्न 129– शान्तिपाठ में समागत –

दिव्य विटप बहुपन की वर्षा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुम प्रातिहार्य मनहारी॥

– इस छन्द का क्या अर्थ है?

उत्तर - इस शान्तिपाठ में भगवान के आगे जो आठ प्रातिहार्य होते हैं, उनके नाम हैं - (1) दिव्य विपट (अशोकवृक्ष), (2) पहुपन की वर्षा (पुष्पों की वर्षा का होना), (3) दुन्दुभि (बाजों का बजना), (4) आसन (सिंहासन), (5) वाणी सरसा (दिव्यध्वनि), (6) छत्र, (7) चमर, (8) भामण्डल।

प्रश्न 130- साम्यवाद कितने प्रकार का है ?

उत्तर - तीन प्रकार का है — (1) भोगभूमि का साम्यवाद = पुण्य का लगभग साम्यपना।

(2) निगोद का साम्यवाद = अनन्त दु:ख

(3) सिद्धदशा का साम्यवाद = अनन्त अव्यावाध सुख।

प्रश्न 131- चार प्रकार की मुक्ति को कार्माणशरीर की अपेक्षा विभाजित करो ?

उत्तर - (1) दृष्टिमुक्ति में = साढ़े सात कर्म का सम्बन्ध है।

(2) मोहमुक्त मुक्ति में = सात कर्म का सम्बन्ध है।

(3) जीवनमुक्त मुक्ति में = चार अघातिकर्म का सम्बन्ध है।

(4) विदेहमुक्ति में = किसी भी कर्म का सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न 132- जगत में एक समय में पूरे होनेवाले अद्‌भुत कार्य क्या-क्या हैं ?

उत्तर - (1) सिद्ध भगवान एक समय में मध्यलोक से लोक के अग्रभाव में चले जाते हैं।

(2) जाने में एक समय में धर्मास्तिकाय का निमित्त होता है।

(3) केवली भगवान जबकि केवलिसमुद्‌घात करते हैं, तब सम्पूर्ण कालाणु एक समय में एक साथ निमित्त होते हैं।

(4) एक परमाणु एक समय में चौदह राजू गमन कर सकता है।

(5) जीव की पर्याय में रागादि विकार एक समय का है और भगवान आत्मा के लक्ष्य से एक समय में नाश को प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न 133- क्या आत्मज्ञान होने पर ही आगमज्ञान का उपचार आता है ?

उत्तर - (1) जिसे आगमज्ञान ना हो, उसे कभी भी आत्मज्ञान नहीं होगा।

(2) परन्तु जिसे आगमज्ञान हो, उसे आत्मज्ञान होवे ही होवे - ऐसा नियम नहीं है।

(3) लेकिन जिसे आत्मज्ञान होता है, उसे आगमज्ञान होता ही है, किन्तु आगमज्ञान में अटक नहीं रहती है।

(4) आत्मज्ञान होने पर ही आगमज्ञान कहा जाता है, क्योंकि उपादान के बिना निमित्त नहीं होता है।

प्रश्न 134- शास्त्रज्ञान कब कार्यकारी कहा जाता है और कब कार्यकारी नहीं कहा जाता है ?

उत्तर - (1) भिन्न वस्तुभूत आत्मा का भान न हो, तो शास्त्रज्ञान कार्यकारी नहीं, परन्तु अनर्थकारी बन जाता है।

(2) भिन्न वस्तुभूत आत्मा का भान होने पर ही शास्त्रज्ञान, कार्यकारी कहा जाता है।

प्रश्न 135- किसके आश्रय से शुद्धपर्याय नियम से प्रगट होती है ?

उत्तर - अपने त्रिकालीकारण भगवान परमात्मा की ओर दृष्टि करे तो नियम से शुद्धपर्याय प्रगट होती है और परद्रव्यों तथा विकार के आश्रय से शुद्धपर्यायें कभी भी प्राप्त नहीं होती है। जो अपने त्रिकाली कारणपरमात्मा भगवान के पास जावे, उसे भगवान की प्राप्ति नियम से होती है।

प्रश्न 136- सिद्धान्त (नियम) किसे कहते है ?

उत्तर - जिसमें कोई अपवाद न हो, वह सिद्धान्त (नियम) है। जैसे, दो और दो चार होते हैं। चाहे अमेरिका में जावे या रूस में जावे; उसी प्रकार सिद्धान्त हमेशा एक-सा होता है, जिसमें कहीं भी अन्तर नहीं आता है।

प्रश्न 137- निगोद किसका फल है ?

उत्तर - एक ज्ञानी की विराधना का फल, निगोद है, अर्थात् अपने ज्ञायकस्वभाव की विराधना का फल, निगोद है। जहाँ एक ज्ञानी की विराधना है, वहाँ अनन्त ज्ञानियों की विराधना है।

प्रश्न 138- मोक्ष किसका फल है ?

उत्तर - एक ज्ञानी की आज्ञा की आराधना का फल, मोक्ष है, अर्थात् अपने ज्ञायकस्वभाव की आराधना, वह मोक्ष है। जहाँ एक ज्ञानी की आराधना है, वहाँ अनन्त ज्ञानियों की आराधना है।

प्रश्न 139- निश्चय गति कितनी हैं ?

उत्तर - निगोद और मोक्ष दो हैं। बाकी चार तो मात्र हवा खाने की हैं। जैसे आप बम्बई में समुद्र पर सैर करने गये, वहाँ पर आपने चार घण्टे सैर की, फिर वापस घर को आ गये; उसी प्रकार यह जीव ने निगोद से निकलकर मनुष्य आदि पर्याय पायी और अपनी ओर नहीं झुका तो फिर निगोद है और अपनी ओर झुका तो मोक्ष है।

प्रश्न 140- मनुष्यगति मिलने पर भी अपनी आराधना नहीं की तो क्या फल होगा ?

उत्तर - त्रस की स्थिति का उत्कृष्ट काल दो हजार सागर से कुछ अधिक है। यदि दो हजार सागर के अन्दर आत्मा को यथार्थतया समझ ले तो मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। यदि नहीं समझे तो त्रसपर्याय की स्थिति पूर्ण होने पर निगोद में चला जावेगा, जिसका

दृष्टान्त द्रव्यलिङ्गी मुनि, मिथ्यात्व के कारण अल्प काल में निगोद चला जाता है।

सम्यग्दृष्टि को शुभभाव हेयबुद्धि से आता है, वह उसका अभाव करके शुद्धरूप परिणत होकर, अल्प काल में मोक्ष में चला जाता है।

प्रश्न 141– भिखारी कौन है और राजा कौन है ?

उत्तर – (1) अत्यन्त भिन्न परपदार्थों का, (2) औदारिक आदि शरीरों का, (3) विकारीभावों का, (4) अपूर्ण–पूर्ण शुद्ध पर्यायों का माहात्म्य माननेवाला, भिखारी है और अपने स्वभाव का आश्रय लेनेवाला, भगवान / राजा है।

प्रश्न 142– अपराध क्या है और राध क्या है ?

उत्तर – (1) परपदार्थों का, (2) विकारीभावों का, (3) अपूर्ण –पूर्ण पर्यायों का आश्रय मानना, अपराध है। अपने स्वभाव का आश्रय लेना, वह राध है, प्रसन्नता है, सुखीपना है।

प्रश्न 143– गुरु के कहे अनुसार आज्ञा का पालन करनेवाला शिष्य कैसा होता है ?

उत्तर – अमावस्या की अर्ध रात्रि में 12 बजे गुरु ने शिष्य को जगाया और कहा देख! 'मध्याह्न का सूर्य कैसा प्रकाशित हो रहा है ?' शिष्य ने कहा, हाँ भगवान, ठीक है। अगले दिन शिष्य ने गुरु से पूछा – हे भगवान! जो आपने कहा था 'देखो! मध्याह्न का सूर्य कैसा प्रकाशित हो रहा है' – यह मेरी समझ में नहीं आया, कृपा करके समझाइये। गुरु ने कहा – हमारा तात्पर्य यह था कि तुझे सम्यग्दर्शन तो हो गया है और अब शीघ्र ही केवलज्ञानरूप मध्याह्न का उदय होनेवाला है।

प्रश्न 144– मरण के भय का अभाव कैसे हो ?

उत्तर – जिसे मरण का भय लगता है, उसे आयु के बन्ध का

भय लगना चाहिए। आयु का बन्ध, शुभाशुभभावों के कारण होता है; इसलिए जिसे आयु का बन्ध न करना हो, उसे शुभाशुभभावों से रहित अपनी आत्मा का आश्रय लेना चाहिए, फिर शुभाशुभभावों की उत्पत्ति नहीं होगी। जब शुभाशुभभावों की उत्पत्ति नहीं होगी, तब आयु का बन्ध नहीं होगा, फिर मरण का भय रहेगा ही नहीं।

प्रश्न 145– वस, खस, रस, कस, बस, से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – स्व में वस; पर से खस; आयेगा आत्मा में अतिन्द्रिय रस; वही है अध्यात्म का कस; इतना करो तो बस।

प्रश्न 146– ज्ञानी, प्रतिकूलता के समय क्या विचारते हैं ?

उत्तर – (1) कोई गाली दे (तो विचारो) – उसने मुझे पीटा तो नहीं;

(2) यदि पीटे तो (विचारो) – उसने जान से तो नहीं मारा;

(3) यदि जान से मारे (तो विचारो) – उसे तड़फाकर तो नहीं मारा;

(4) यदि तड़फाकर मारे (तो विचारो) – उसने मेरी आत्मा का नाश नहीं किया और मैं तो आत्मा हूँ, उसका कोई नाश कर सकता ही नहीं; अतः उनको दुःख नहीं होता।

प्रश्न 147– लोग कहते हैं 'पहिला सुख निरोगी काया; दूसरा सुख लड़का चार; तीसरा सुख सुकुल की नारी; चौथा सुख कोठी में जार' – क्या यह ठीक है ?

उत्तर – (1) अज्ञानी लोग, पहला सुख–निरोगी काया कहते हैं; ज्ञानी कहते हैं – अपने ज्ञायकस्वभाव का लक्ष्य करे तो मिथ्यात्वरूपी महारोग का अभाव होता है, वह आत्मा की निरोगदशा है, यह पहला सुख है।

(2) अज्ञानी लोग, दूसरा सुख–चार लड़का कहते हैं; ज्ञानी

कहते हैं—अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति, वह दूसरा सुख चार लड़का है।

(3) अज्ञानी लोग, तीसरा सुख-सुकुल नारी कहते हैं; ज्ञानी कहते हैं कि शुद्धपरिणति, वह सुकुल की नारी है।

(4) अज्ञानी लोग, चौथा सुख-कोठी में जार, अर्थात् अनाज भरने को कहते हैं; ज्ञानी कहते हैं - मेरी कोठी में असंख्यात प्रदेश और उनमें अनन्त गुण भरे हुए है। उसमें मग्न रहना, यह कोठी में जार चौथा सुख है।

प्रश्न 148- शास्त्र श्रवण में नींद आवे तो क्या नुकसान होगा ?

उत्तर - (1) जैसे - एक सेठ स्नान करके सो गया और नल खुला रह गया, पूरे कमरे में पानी ही पानी भर गया, घर का सब कीमती सामान खराब हो गया; उसी प्रकार जो शास्त्र में, जहाँ जन्म -मरण के अभाव की बात चलती हो, वहाँ सोवे तो कितना नुकसान होगा ? जरा विचारो।

(2) जैसे - नयी दुल्हन घर में आयी। उसने दूध चूल्हे पर रखा और उसे नींद आ गयी, पूरा दूध निकल गया; उसी प्रकार जो जीव शास्त्र में सोता है, अवसर चला जावेगा, चारों गतियों में भटकेगा।

(3) एक बाई ने घी कढ़ाई में डालकर उसमें पूरी डाली और उसे नींद आ गयी तो पूरा घी जल गया, पूरी भी काली हो गयी; उसी प्रकार जो जीव, जहाँ जन्म-मरण की अभाव करने की बात चलती है, वहाँ सोता है या उस बात को सुनकर अपने अन्दर नहीं डालता, वह चारों गतियों में घूमकर निगोद में चला जाता है।

इसलिए पात्र जीव को शास्त्र में कभी नहीं सोना चाहिए, बल्कि उस बात को सुनकर अपना कल्याण तुरन्त कर लेना चाहिए। ऐसा अवसर आना कठिन है।

प्रश्न 149- निश्चय के बिना व्यवहार पर आरोप क्यों नहीं आता ?

उत्तर - एक आदमी बढ़िया बादाम 400 रुपये का एक सेर लाया और घर पर आकर उनको फोड़ा, तो उसमें आधा सेर गिरी निकली, बाकी रह गया छिलका, वह भी आधा सेर रहा। क्या कोई उस छिलके के 200 रुपये देगा? एक पैसा भी नहीं देगा क्योंकि बादाम की गिरी होने के कारण, छिलके की कीमत कही जाती है, है नहीं। उसी प्रकार निश्चय हो तो व्यवहार नाम पाता है; अकेला व्यवहार हो तो वह व्यवहार नाम भी नहीं पाता है; इसलिए निश्चय के बिना, व्यवहार का आरोप भी नहीं किया जा सकता है।

प्रश्न 150- संवर क्या है ?

उत्तर - शुभाशुभभावों का रुकना, शुद्धि का प्रगट होना, वह संवर है।

प्रश्न 151- संवर में क्या-क्या होता है ?

उत्तर - त्रिकाली स्वभाव, शुद्धपर्याय का प्रगट होना, अशुद्धि का उत्पन्न न होना और द्रव्यकर्म का नहीं आना, यह चार बातें होती हैं।

प्रश्न 152- इन चार बातों से क्या लाभ रहा ?

उत्तर - प्रत्येक कार्य में एक ही समय में चार बातें नियम से होती हैं, चाहे वह परिणमन शुद्ध हो या अशुद्ध।

प्रश्न 153- प्रत्येक कार्य में चार बातें एक ही समय में नियम से हैं, इसका स्पष्टीकरण कीजिए ?

उत्तर - जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म, आकाश एक-एक और लोकप्रमाण असंख्यात कालद्रव्य हैं; इन द्रव्यों में,

प्रत्येक-प्रत्येक में अनन्त-अनन्त गुण हैं; एक-एक गुण के कार्य में एक ही समय में चारो बातें घटित होती हैं। जैसे औपशमिकसम्यक्त्व का उत्पाद, मिथ्यात्व का व्यय, आत्मा का श्रद्धागुण ध्रौव्य और दर्शनमोहनीय का उपशम।

प्रश्न 154- चार बातें कौन-कौन सी हैं ?

उत्तर - उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य और निमित्त।

प्रश्न 155- संवर में चार बातों के जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर - जब प्रत्येक कार्य में चारों बातें एक साथ होती हैं तो फिर करना क्या ? एकमात्र अपने स्वभाव पर दृष्टि दे, तो एक ही समय में अशुद्धि का अभाव, शुद्धि की उत्पत्ति, द्रव्यकर्म का न आना स्वयंमेव हो जाता है।

प्रश्न 156- तत्त्व-अभ्यास का क्या फल है ?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं; एक-एक गुण में, एक समय में चारों बातें (उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य और निमित्त) होती रही है, हो रही हैं और होती रहेगी - यह पारमेश्वरी व्यवस्था है। जब सब में ऐसा होता ही है, तब करना क्या रहा ? मात्र जानना -देखना रहा, यह तत्त्व-अभ्यास का फल है।

प्रश्न 157- तत्त्व के अभ्यास का दूसरा फल क्या है ?

उत्तर - तत्त्व के अभ्यास से संसार का कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट प्रतिभासित न हो, तब स्वयमेव धर्म उत्पन्न होकर, वृद्धि होकर, पूर्णता की प्राप्ति होती है। जब एक-एक गुण में चार बातें अनादि -अनन्त होती हैं, होती रहेंगी, और होती रही हैं - ऐसा मानसिकज्ञान लेकर सूक्ष्म रीति से गहराई में उतरे तो तुरन्त सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 158- कैसा शुभभाव करे तो कल्याण का अवकाश है और कैसे-कैसे भाव का कैसा-कैसा फल है ?

उत्तर - विचारिये ! [(1)कोई जीव दान देता है, इसलिए कि यह लोग बार-बार तङ्ग करते हैं-लो ले जावो। क्या वह दान है ? उसका क्या फल होता और क्या फल नहीं होगा ?

यह तो तीव्र कषाय का भाव है। रुपया गया, रुपयों के कारण; वह तो जड़ की क्रिया है, उसमें जीव का कुछ कार्य नहीं, वह तो क्रियावतीशक्ति का कार्य है परन्तु मेरे को विशेष परेशान न करे, इसलिए क्रोधपूर्वक दान दिया, इससे तो पाप का ही बन्ध है। इससे अगले भव में तिर्यञ्चादि का संयोग मिलेगा, वहाँ तुझे भी लोग परेशान करने पर रोटी का टुकड़ा डाल देंगे; बस इसका फल यह है, इससे धर्म की प्राप्ति नहीं होगी।

(2) मेरा नाम हो, अगले भव में मुझे विशेष सम्पत्ति मिले - ऐसा विचार कर जो जीव कपड़ा, आहार, औषधादिक देने का भाव करता है, उसमें यदि मन्दकषाय हो तो पापानुबन्धी पुण्य होगा। कपड़ा, आहार, औषधादिक तो पुद्‌गल का कार्य है; उसमें जीव का कुछ कार्य नहीं। उस भाव में एकत्वबुद्धि करे तो मिथ्यात्वसहित का पुण्यबन्ध होता है। इससे अगले भव में शरीर की अनुकूलता, रुपया-पैसे-महल आदि का संयोग मिलेगा; धर्म की प्राप्ति नहीं होगी।

(3) यात्रा करूँ, पूजा करूँ, शास्त्र पढ़ूँ, आदि का भाव, मन्दकषायरूप पुण्य का बन्ध है। शरीर के चलने, पाठ आदि बोलने, हाथ जोड़ने आदि की क्रिया तो पुद्‌गल की है; मात्र जो भाव किया है, उससे अनुकूल संयोग मिलेगा; धर्म की प्राप्ति नहीं होगी। (जो यात्रा करके आया और आते ही मुनीम पर गुस्सा हो जावे, तुमने हमारा खाने का इन्तजाम नहीं किया, पैर दबानेवाले का इन्तजाम

नहीं किया, ऐसे जीव की बात यहाँ पर नहीं है, क्योंकि इससे तो पाप का ही बन्ध होता है।)

(4) अध्यात्मशास्त्रों का अभ्यास करके वस्तुस्वरूप समझकर अपनी आत्मा का हित कर लूँ - ऐसे भावपूर्वक जो अभ्यास करता है, यदि उसका विशेष पुरुषार्थ बढ़ जावे तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो जाती है। यदि तत्त्व का अभ्यास करते-करते आयु पूरी हो जावे, तो बाद में सच्चे देव-गुरु का ऐसा संयोग मिलेगा कि जिनके निमित्त से सम्यक्त्व आदि की प्राप्ति हो जाएगी। (जो जीव, अध्यात्मशास्त्र का अभ्यास इसलिए करता है कि लोग मेरा आदर करें, मैं बड़ा कहलाऊँ, सब शास्त्र कण्ठस्थ हो जावे, मुझे रुपया-पैसा, आदर-मान आदि की प्राप्ति हो, उस जीव की बात यहाँ पर नहीं है।)

इसलिए तत्त्व का अभ्यास विशेष रुचिपूर्वक करनेवाले को ही धर्म की प्राप्ति का अवकाश है। किसी भी प्रकार के शुभभाव से कल्याण सम्भव नहीं है।

प्रश्न 159- जीव का कल्याण क्यों नहीं होता?

उत्तर - संसारपरिभ्रमण में स्वयं का दोष है परन्तु पर का दोष देखता है; इसलिए इसका कल्याण नहीं होता है। संसारपरिभ्रमण में मेरा ही दोष है - ऐसा जानकर, निर्दोष स्वभाव का आश्रय ले, तो तुरन्त कल्याण हो जाता है। इस बात को 12 दृष्टान्तों से समझाते हैं।

(1) जैसे, दस वर्ष का बच्चा, आठ वर्ष के बालक को पीट रहा हो तो लौकिक सज्जन हैरान करनेवाले 10 वर्ष के बच्चे को ही डाँटते हैं। उसी प्रकार यदि कर्म, आत्मा को हैरान करते हो तो लौकोत्तर भगवान सर्वज्ञ हैं, उन्हें हैरान करनेवाले कर्म को उपदेश देना चाहिए, परन्तु भगवान कहते हैं, यह जीव अपनी भूल से ही स्वयं हैरान हो रहा है। यदि यह अपनी भूल को जाने और दोषरहित

स्वभाव का आश्रय ले तो कल्याण हो जावे और यदि पर का दोष निकालता रहेगा तो कभी भी कल्याण नहीं होगा।

(2) जैसे, मुँह पर दाग है, दर्पण में वह दिखायी देता है। उसे दूर करने के लिए दर्पण को रगड़ें तो क्या दाग साफ हो जाएगा? कभी नहीं; उसी प्रकार अपनी गलती के लिए कर्म से प्रार्थना करे तो क्या वह हट जावेगा? कभी नहीं। यदि मुँह के दाग को कपड़े से साफ कर दें तो दर्पण में भी साफ दिखायी देगा; उसी प्रकार हम अपनी ओर दृष्टि करे तो कर्म स्वयं भाग जाएँगे।

(3) जैसे, एक डाकू को पचास पुलिस के पहरे में रखा जाता है, ताकि वह भाग न जावे। अज्ञानी लोग, पुलिस का जोर देखते हैं, जबकि वास्तव में जोर डाकू का है, क्योंकि एक डाकू के लिए पचास पुलिस रखनी पड़ती है; उसी प्रकार एक आत्मा को बन्धन में रखने के लिए निमित्तकारण अनन्त रजकण हैं। देखो! अज्ञानी लोग, कर्म का जोर देखते हैं; वास्तव में जोर आत्मा का ही है; इसलिए हे भव्य! तेरा स्वभाव अनादि-अनन्त है, उसका आश्रय ले तो कल्याण हो जाएगा और कर्म का दोष देखेगा तो कल्याण नहीं होगा।

(4) तत्त्वनिर्णय न करने में कर्म का दोष नहीं है; तेरा ही दोष है। जो कर्म का दोष निकालते हैं, यह अनीति है। यदि मोक्ष की सच्ची अभिलाषा हो तो कर्म का दोष न निकाले। अपना दोष देखकर निर्दोष स्वभाव का आश्रय ले तो कल्याण हो जावे।

(5) जैसे, मुँह टेढ़ा करके दर्पण से कहे; सीधा हो जा तो क्या कभी सीधा होगा? कभी नहीं। उसी प्रकार गलती हम करें और कर्म से कहें - गलती दूर करो। क्या कभी दूर होगी? कभी नहीं। जैसे, हम मुँह को सीधा कर लें, तो दर्पण में भी सीधा दिखायी देगा; उसी प्रकार हम सीधे हो जावें, अर्थात् स्वभाव का आश्रय ले-लें तो कर्म स्वयं ही सीधा है।

(6) गिरनार बहुत ऊँचा पहाड़ है। उस पर 80 वर्ष की बुढ़िया चढ़े तो गिरनारपर्वत समाप्त हो जावेगा, परन्तु बुढ़िया समाप्त नहीं होगी; उसी प्रकार कर्म की स्थिति प्रवाहरूप से है, वह समाप्त हो जाएगी, परन्तु तू अनादि-अनन्त रहनेवाला समाप्त नहीं होगा; इसलिए हे भव्य! तू स्वयं अनादि-अनन्त है, उसका आश्रय ले तो संसार समाप्त हो सकता है; पर का आश्रय ले तो संसार समाप्त नहीं होगा।

(7) दर्शनमोहनीय की स्थिति 70 कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। लोग उसे बलवान कहते हैं। देखो! सबसे पहिले दर्शनमोहनीय कर्म ही भागता है; इसलिए हे आत्मा! तू स्वयं बलवान है, उसका आश्रय लेते ही प्रथम दर्शनमोहनीय भागता है और मोह के जाते ही ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय भी भाग जाते हैं। अत: अनन्त चतुष्टयमयी अपनी आत्मा का आश्रय ले तो कल्याण हो जाता है।

(8) दोष तो जीव का है; कर्म का देखता है, यह तेरा हरामजादीपना है – ऐसा आत्मावलोकन में आया है। मेरी पर्याय में दोष अपने अपराध से है – ऐसा जानकर, निर्दोष स्वभाव का आश्रय ले तो कल्याण का अवकाश है।

(9) एक बाई जल भरने गयी। कलशा नीचे गिर गया और उसमें खड्डा पड़ गया। खड्डे को दूर करने के लिए ऊपर से चोट मारे तो क्या खड्डा ठीक होगा? कभी नहीं; उसी प्रकार अपने कल्याण के लिए पर से, कर्मों से, विकारीभावों से लाभ माने तो क्या कल्याण होगा? कभी नहीं। जैसे – कलशे के ऊपर पत्थर रखकर अन्दर से चोट मारे, तो ठीक हो जाता है; उसी प्रकार जीवस्वभाव का आश्रय ले, तो पर्याय में से दोष चला जाता है, कल्याण हो जाता है।

(10) जैसे, बन्दर की उलझन इतनी ही है कि वह मुट्ठी नहीं खोलता; उसी प्रकार यह जीव, मात्र अपने स्वभाव का आश्रय नहीं

लेता। जैसे, बन्दर मुट्ठी खोल दे तो छूटा ही है; उसी प्रकार जीव अपना आश्रय ले-ले तो संसार अलग पड़ा है।

(11) तोते की उलझन इतनी सी है कि वह नलिनी को नहीं छोड़ता, यदि छोड़ दे तो छूटा ही पड़ा है; उसी प्रकार जीव की उलझन इतनी सी है, कि स्वभाव का आश्रय नहीं लेता, यदि ले-ले तुरन्त कल्याण हो जाए।

(12) जैसे – मृग, मरीचिका में जल मानकर दौड़ता है, इसी से वह दु:खी है; इसी प्रकार यह जीव, पर को अपना मानता है; इसलिए दु:खी है; न माने और स्वभाव का आश्रय ले तो तुरन्त कल्याण हो जाए।

प्रश्न 160- जैन किसे कहते हैं ?

उत्तर - अपनी आत्मा के आश्रय से मोह-राग-द्वेष को जीत लिया हो, वह जैन है।

प्रश्न 161- जैन कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर - जैन सात प्रकार के हैं। तीन सच्चे जैन हैं और चार झूठे जैन हैं।

प्रश्न 162- तीन सच्चे जैन कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - (1) उत्तम जैन = अरहन्त और सिद्ध,

(2) मध्यम जैन = सातवें गुणस्थान से बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव।

(3) जघन्य जैन = चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थानवर्ती जीव।

प्रश्न 163- चार झूठे जैन कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - (1) सधैया = जो रोज मन्दिर जाते हैं, शास्त्र पढ़ते हैं,

लेकिन शास्त्र का मतलब क्या है? इसका पता नहीं। यह तो जैसे अन्य मतावलम्बी है, वैसे यह रहे।

(2) भदैय्या = जो मन्दिर में मात्र भादवे के दस दिनों में ही आते हैं।

(3) लड़ैय्या = जो मात्र अनन्त चौदस के दिन या कभी-कभी मन्दिर में लड़ाई करने आते हैं।

(4) मरैय्या = जो चौधरी बनकर, मात्र जब कोई लौकिक प्रसङ्ग हो तो यहाँ आते हैं।

हे भाई! एकबार अपनी आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्रगट करके देख, फिर अपूर्व आनन्द आवेगा और सच्चा जैनत्व प्रगट हो जाएगा।

प्रश्न 164- क्या मोक्षार्थी को जरा भी राग नहीं करना चाहिए?

उत्तर - (1) श्रीपञ्चास्तिकाय, गाथा 172 में लिखा है कि 'मोक्षार्थी को सर्वत्र, किञ्चित भी राग नहीं करना चाहिए।'

(2) राग कैसा ही हो, वह अनर्थ सन्तति का क्लेशरूप विलास ही है।

(3) ज्ञानी का अस्थिरता सम्बन्धी राग भी, मोक्ष का घातक, दुष्ट, अनिष्ट है, बन्ध का कारण है।

(4) मिथ्यादृष्टि, राग को उपादेय मानता है; इसलिए उसका राग, अनर्थ परम्परा, अर्थात् निगोद का कारण है।

(5) श्री परमात्मप्रकाश, अध्याय प्रथम, गाथा 98 में ज्ञानी का राग (शुभभाव), पुण्यबन्ध का कारण और मिथ्यादृष्टि का शुभराग, पापबन्ध का कारण है, ऐसा लिखा है।

प्रश्न 165- पद्मनन्दिपञ्चविंशति के एकत्व अधिकार में (1) सर्व, (2) सर्वदा, (3) सर्वत्र, और (4) सर्वथा की बात क्यों ली है ?

उत्तर - [अ] हे भव्य! (1) सर्व द्रव्यों को, (2) सर्वत्र, अर्थात् सर्व क्षेत्रों को, (3) सर्वदा, अर्थात् सर्व पर्यायों को - भूत-भविष्य-वर्तमान कालों को, (4) सर्वथा, अर्थात् सबके सर्व गुणों को जानना, तेरा स्वभाव है - ऐसा तू जान। ऐसा जानने से तुझे मोक्ष की प्राप्ति होगी।

[आ] (1) सर्व परद्रव्यों में, (2) सर्वत्र, अर्थात् सब द्रव्यों के क्षेत्रों में, (3) सर्वदा, अर्थात् सर्व द्रव्यों की भूत, भविष्य, वर्तमान पर्यायों में, (4) सर्वथा, अर्थात् सब द्रव्यों के गुणों में कर्ता-भोक्ता की बुद्धि, निगोद का कारण है।

- ऐसा बताकर ज्ञाता-दृष्टा रहने के लिए एकत्व अधिकार में सर्व, सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा की बात की है।

प्रश्न 166- धर्म क्या है ?

उत्तर - (1) वस्तु का स्वभाव, वह धर्म है।

(2) चारों गतियों से छुड़ाकर उत्तम मोक्ष सुख में पहुँचावे, वह धर्म है।

(3) स्वद्रव्य में रहना सुगति, अर्थात् धर्म है और अट्ठाईस मूलगुण पालने का भाव, बारह अणुव्रतों का भाव, भगवान के दर्शन का भाव, जिस भाव से तीर्थङ्करनामकर्म का बन्ध होता है - ऐसा सोलहकारण का भाव आदि सब संसार है; धर्म नहीं है।

(4) निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्र की एकता, धर्म है; व्यवहाररत्नत्रय, धर्म नहीं है।

(5) वस्तुस्वभावरूप धर्म; उत्तम क्षमादि दशविध धर्म; सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म; जीवरक्षारूप धर्म - इन सब में सम्यग्दर्शन की प्रधानता है। सम्यग्दर्शनपूर्वक ही धर्म होता है; सम्यग्दर्शन के बिना चारों में से एक प्रकार भी धर्म नहीं होता है। निश्चय से साधने में चारों में एक ही प्रकार धर्म है।

प्रश्न 167- प्रमाण का व्युत्पत्ति अर्थ क्या है ?

उत्तर - प्र=विशेष करके जैसा वस्तु स्वरूप है, वैसा ही; माण=ज्ञान में आना।

प्रश्न 168- प्रमाण-प्रमेय-प्रमाता का क्या अर्थ है ?

उत्तर - प्रमाण=जैसा वस्तुस्वरूप है, वैसा ही ज्ञान में आना; प्रमेय=ज्ञेय; प्रमाता=जाननेवाला।

प्रश्न 169- भावदीपिका में सम्यग्दृष्टि को आप्त क्यों कहा है, जबकि आप्त का लक्षण वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी है ?

उत्तर - (1) जैसे—खजाञ्ची, लाखों रुपया का लेन-देन करता है परन्तु उसे अपना नहीं मानता; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को राग के स्वामीपने के अभाव के कारण, **वीतराग** कहा है।

(2) सम्यग्दृष्टि को जितना ज्ञान का उघाड़ है और जितने पदार्थों को जानता है, उन्हें जानता ही है और जानने का कार्य मेरा है; मैं परपदार्थों का करूँ या भोगूँ - ऐसी एकत्वबुद्धि का अभाव होने से, मात्र उनको जानने के कारण, **सर्वज्ञ** कहा है।

(3) तुम अपने आश्रय से ही शुद्धता प्रगट करो; दया-दान -पूजा आदि भाव, आस्रव-बन्ध का कारण हैं; निमित्त से उपादान में कार्य नहीं होता है; कार्य उस समय की पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादानकारण से ही होता है - ऐसा हित का उपदेश ही सम्यग्दृष्टि

को वाणी में आने से, उसे हितोपदेशी कहा है; इसलिए भावदीपिका में सम्यग्दृष्टि को आप्त कहा है। आप्त के तीन भेद हैं

(1) अरहन्त भगवान, उत्तम आप्त हैं;

(2) पाँचवें गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक, मध्यम आप्त हैं;

(3) चौथे गुणस्थानवाला, जघन्य आप्त है।

प्रश्न 170- श्रीपञ्चास्तिकाय, गाथा 3 में 'समवाओ' शब्द आया है, उसमें अमृतचन्द्रार्य ने कौन-कौन से अर्थ निकाले हैं ?

उत्तर - तीन अर्थ निकाले हैं - (1) समवाद, (2) समवाय, (3) समअवाय।

प्रश्न 171- समवाद (शब्दसमय) किसे कहते हैं ?

उत्तर - राग-द्वेषरहित शब्द को, अर्थात् समदर्शिता को उत्पन्न करनेवाला कथन, (भगवान की वाणी को) शास्त्रारूढ़ निरूपण, वह समवाद है। समवाद कहो, शब्दसमय कहो, एक ही बात है। ज्ञान द्वारा जाने हुए पदार्थ का प्रतिपादन, शब्द द्वारा होता है; इसलिए उस शब्द को शब्दनय कहते हैं।

प्रश्न 172- समवाय (अर्थसमय) किसे कहते हैं ?

उत्तर - समवाय, अर्थात् समूह। पञ्चास्तिकाय के समूह को, अर्थात् सर्व पदार्थ समूह को समवाय कहते हैं। समवाय कहो, अर्थ समय कहो, एक ही बात है। ज्ञान का विषय, पदार्थ है; इसलिए शब्दनय से प्रतिपादित किये जानेवाले पदार्थों को भी नय कहते हैं, वह अर्थसमय शब्द से उस पदार्थ का ज्ञान होना, यह अर्थसमय है।

प्रश्न 173- सम्अवाय (ज्ञानसमय) किसे कहते हैं ?

उत्तर - सम्, अर्थात् सम्यक् प्रकार से (मिथ्यादर्शन के नाशपूर्वक) अवाय, अर्थात् ज्ञान का निर्णय (सम्यग्ज्ञान) वह सम्

अवाय है। सम् अवाय कहो, ज्ञानसमय कहो, एक ही बात है। वास्तविक प्रमाणज्ञान है, वह (प्रमाणज्ञान) जब एकदेशग्राही होता है, तब उसे नय कहते हैं; इसलिए उसे ज्ञाननय कहा है।

प्रश्न 174- समवाद (शब्दसमय), समवाय (अर्थसमय), सम्अवाय (ज्ञानसमय) दृष्टान्त देकर समझाओ ?

उत्तर - (1) जैसे, हमारे रजिस्टर में सौ रुपया लिखा है, वह शब्दसमय है।

(2) तिजोरी में सौ रुपया है, वह अर्थसमय है।

(3) हमारे ज्ञान में भी सौ रुपये आये, वह ज्ञानसमय है।

उसी प्रकार गुरुदेव ने कहा, आत्मा! तो आत्मा, शब्दसमय है। (2) आत्मा पदार्थ मैं हूँ, यह अर्थसमय है। (3) शब्द का अनुभव होना, वह ज्ञानसमय है। जैसे - मिसरी शब्द, शब्दनय; मिसरी पदार्थ, अर्थसमय; और मिसरी का अनुभवरूप ज्ञान, ज्ञानसमय है।

1	शब्दनय	खाते में 100 रु०	आत्मा शब्द	पाँच अस्तिकाय कथन
2	अर्थनय	तिजोरी में 100 रु०	आत्मा पदार्थ	पाँच अस्तिकाय पदार्थ
3	ज्ञानमय	ज्ञान में 100 रु०	आत्मानुभव	पाँच अस्तिकाय का ज्ञान

प्रश्न 175- (1) शब्दसमय, (2) अर्थसमय, और (3) ज्ञानसमय को आगम के शब्दों में समझाओ ?

उत्तर - (1) भगवान की वाणी में पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, निश्चय-व्यवहार, उपादान-उपादेय, निमित्त -नैमित्तिकसम्बन्ध, छह कारक, त्याग करने योग्य मिथ्यादर्शनादि; ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादि और आश्रय करने योग्य एकमात्र

अपना त्रिकाली भगवान है - ऐसा जो कथन आया है, या शास्त्रों में है, यह तो शब्दसमय है।

(2) पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य, सात तत्व, नौ पदार्थ, निश्चय-व्यवहार, उपादान-उपादेय, निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध, छह कारक, त्यागने योग्य मिथ्यादर्शनादि और ग्रहण करने योग्य समयग्दर्शनादि और आश्रय करने योग्य एकमात्र अपना त्रिकाली भगवान है - ऐसा पदार्थ, वह अर्थसमय है।

(3) जैसा है, वैसा ही सब ज्ञान में आना, वह ज्ञानसमय है।

प्रश्न 176- तीनों समय कब माने कहा जाए?

उत्तर - (1) जैसा कथन हो, (2) वैसा ही पदार्थ हो, (3) वैसा ही ज्ञान हो, तो तीनों समय को माना।

प्रश्न 177- शास्त्रों में जैसा कथन आता है और जैसा देव-गुरु कहते हैं, वैसा ही हम जानते हैं - फिर हमारे अन्दर क्यों नहीं उतरता है?

उत्तर - (1) जैसा घर कुटुम्ब, बेटा-बेटी से प्रीति-प्रेम है; वैसा ही स्व सम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा से तन्मय अचल प्रीति-प्रेम हो जाए तो सहज में, अर्थात् परिश्रम किये बिना अन्दर बात उतर जावे, परन्तु ऐसा प्रेम न होने के कारण, अन्दर की बात नहीं उतरती हैं।

(2) जैसे - लड़की 18-20 वर्ष तक माँ-बाप के यहाँ रहती है। उसका पति के साथ सम्बन्ध होते ही सारा प्रेम वहीं आ जाता है; उसी प्रकार देव-शास्त्र-गुरु के कथन के प्रति प्रेम आ जाए तो अन्दर उतर जाए परन्तु ऊपर-ऊपर से कहता है कि देव-गुरु-शास्त्र ऐसा कहते हैं, मानता नहीं; इसलिए अन्दर नहीं उतरता है।

(3) एक मालदार आदमी था। उसका रिश्तेदार बहुत गरीब था

और बाजार में बोरियाँ ढोने का काम करता था। मालदार आदमी ने रिश्तेदार को बुलाकर कहा – देखो! तुम बाजार में बोरी ढोते हो, हमें बुरा लगता है। अब तुम इस काम को छोड़ दो और इस मकान में आराम से रहा करो। खूब खाओ, पीयो, रेडियो सुना करो और खर्च के लिए जो चाहे, मुनीमजी से ले लिया करो। उसने कहा, बहुत अच्छा। परन्तु वहाँ पड़े-पड़े उसका मन नहीं लगता और घरवालों की नजर बचाकर बाहर निकल जाता और बाजार में जाकर बोरी ढोने का काम शुरू कर देता। बोरी उठाकर कहता, अरे जीव! तुझे सब मना करते हैं, बोरी मत उठा, तू आराम कर। इस प्रकार रोज करता और कहता; उसी प्रकार अनादि से तीर्थङ्कर, गणधर, आचार्य, ज्ञानी श्रावक, सम्यग्दृष्टि और शास्त्र कहते हैं कि हे आत्मा! तेरा अत्यन्त भिन्न परपदार्थों से, शरीर आँख, नाक, काम, मन, वाणी से, आठ कर्मों से तो किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है और जो तू दु:खी हो रहा है, एकमात्र मोह-राग-द्वेष के साथ एकत्वबुद्धि से ही हो रहा है और एकमात्र अपने स्वभाव का आश्रय ले तो तेरा कल्याण हो। यह अज्ञानी रोज ऐसा कहता है, परन्तु अपनी खोटी एकत्वबुद्धि को छोड़ता नहीं है। इसलिए देव-गुरु-शास्त्र के अनुसार कहने पर भी, अन्दर नहीं उतरता है। जैसा देव-गुरु-शास्त्र कहते हैं, वैसा ही निर्णय करके अन्तर्मुख होकर सावधान हो जावे तो तुरन्त अनादि के मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो जाए। योगसार में कहा है –

ज्यों मन विषयों में रमें, त्यो हो आतम लीन।
शीघ्र मिले निर्वाण पद, धरै न देह नवीन॥50॥

व्यवहारिक धन्धे फँसा, करे न आतम ज्ञान।
यही कारण जगजीव ये, पावे नहिं निर्वाण॥52॥

प्रश्न 178- अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का क्या स्वरूप है ?

उत्तर - (1) क्रोध - अपने स्वरूप की अरुचि; परद्रव्य -परभाव की रुचि।

(2) मान - परवस्तु से, शुभाशुभभावों से अपने को बड़ा मानना तथा परद्रव्य की क्रिया मैं कर सकता हूँ - ऐसी मान्यता।

(3) माया - अपने स्वरूप की आड़ मारना, अर्थात् पञ्चम काल है, इस समय किसी को मोक्ष की प्राप्ति तो होती नहीं; इसलिए वर्तमान में शुभभाव करो और शुभभाव करते-करते धर्म की प्राप्ति हो जाएगी, यह मायाचारी है।

(4) लोभ - पुण्य की संग्रहबुद्धि या क्षयोपशमज्ञान के उघाड़ की रुचि।

मिथ्यादृष्टि को एक ही समय में चारों कषाय एक साथ होती है, चाहे वह द्रव्यलिंगी मुनि क्यों ना हो। सम्यग्दृष्टि, लड़ाई में खड़ा हो, तीर पर तीर चला रहा हो, छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में बैठा हो, उसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं है।

प्रश्न 179- अनन्तानुबन्धी में 'अनन्त' से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - (1) अनन्त संसार का बन्ध जिस भाव से होता है, वह अनन्तानुबन्धी है।

(2) मिथ्यात्व के साथ जिसका बन्ध होता है, उसे अनन्तानुबन्धी कहते हैं।

प्रश्न 180- सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव होने पर भी, भव बढ़ता और बिगड़ता क्यों नहीं है ?

उत्तर - अनादि संसार अवस्था में इन चारों ही का निरन्तर उदय

पाया जाता है। परमकृष्ण लेश्यारूप तीव्र कषाय हो—वहाँ भी और शुक्ललेश्यारूप मन्दकषाय हो—वहाँ भी, निरन्तर चारों का ही उदय रहता है; क्योंकि तीव्र-मन्द की अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद नहीं हैं; सम्यक्त्वादि का घात करने की अपेक्षा यह भेद हैं। मोक्षमार्ग होने पर, इन चारों में से तीन, दो या एक का उदय रहता है, फिर चारों का अभाव हो जाता है। सम्यग्दृष्टि का भव बढ़ता भी नहीं, भव बिगड़ता भी नहीं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि के पास सदैव ज्ञायकस्वभावी अमृत की संजीवनी बूटी है। याद रखो—बाह्य संयोग के अनुसार राग-द्वेष का माप नहीं है और बाह्य राग-द्वेष के अनुसार अज्ञानी -ज्ञानी का माप नहीं है।

प्रश्न 181- मोह-राग-द्वेष क्या है?

उत्तर - (1) मोह - अपने स्वरूप की असावधानी और पर की सावधानी।

(2) राग - अपनी आत्मा के अलावा परपदार्थों में तथा शुभभावों में, यह मेरे लिए लाभकारक हैं - ऐसी मान्यतापूर्वक प्रीति, वह राग है।

(3) द्वेष - अपनी आत्मा के अलावा परपदार्थों में तथा अशुभभावों में यह मेरे लिए नुकसानकारक हैं - ऐसी मान्यतापूर्वक अप्रीति, वह द्वेष है।

प्रश्न 182- क्या मोह-राग-द्वेष के अभाव के बिना जैन नहीं हो सकता?

उत्तर - नहीं हो सकता, क्योंकि निज शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय से मिथ्यात्व-राग-द्वेषादि को जीतनेवाली निर्मलपरिणति जिसने प्रगट की है, वही जैन है। वास्तव में जैनत्व का प्रारम्भ निश्चयसम्यग्दर्शन से ही होता है; इसलिए पात्र जीव को प्रथम, अपने स्वभाव का

आश्रय लेकर, मोह-राग-द्वेषरहित मेरा स्वरूप है - ऐसा निर्णय कर, सम्यग्दर्शनसहित स्वरूपाचरणचारित्र प्रगट करना चाहिए - यही अपना परम कर्तव्य है।

प्रश्न 183- आराधना किसे कहते हैं और कितनी हैं ?

उत्तर - अपनी आत्मा की आराधना, अर्थात् आधि-व्याधि और उपाधि से रहित आत्मा की स्वस्थता, वह आराधना है और आराधना चार हैं — दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप।

प्रश्न 184- शङ्कित कौन होता है और कौन नहीं होता ?

उत्तर - जो चोरी आदि के अपराध करता है, वह लोक में 'मुझे कोई चोर समझकर पकड़ न ले', इस प्रकार शङ्कित होता हुआ घूमता है; और जो अपराध नहीं करता, वह लोक में निःशङ्क घूमता है; उसे कभी बँधने की चिन्ता उत्पन्न नहीं होती है; उसी प्रकार अज्ञानी, परवस्तुओं से, शरीर-इन्द्रियों से, कर्मों से, शुभाशुभभावों से लाभ-नुकसान मानने के कारण निरन्तर शङ्कित रहता है और ज्ञानी की दृष्टि अपने सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य पर होने से, कभी शङ्कित नहीं होता है।

प्रश्न 185- ज्ञानी, परद्रव्यों के ग्रहण का भाव क्यों नहीं करता ?

उत्तर - श्रीसमयसार, गाथा 207 में लिखा है कि -

परद्रव्य, यह मुझ द्रव्य, यों तो कौन ज्ञानीजन कहै।
निज आत्मा को निज का परिग्रह, जानता जो नियम से॥

ज्ञानी अपने अनन्त गुणों के अभेद पिण्ड को ही अपना परिग्रह जानता है। क्या सम्यग्दृष्टि लक्ष्मी, सोना, चाँदी, मकान, शरीर, इन्द्रियाँ, मन, वाणी, आठ कर्मों, शुभाशुभविकारीभाव, गुणभेद और

अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय के पक्ष को अपना कहेगा? कभी नहीं कहेगा। क्योंकि एक तरफ राम (अपनी आत्मा) और दूसरी तरफ गाम (पर, शरीर, इन्द्रियाँ, कर्म, विकार, शुद्धपर्याय) के भेदविज्ञान की सच्ची दृष्टि प्रगट होने से, ज्ञानी को परद्रव्यों के ग्रहण का भाव नहीं होता है।

श्रीसमयसार, गाथा 208 में लिखा है कि -

परिग्रह कभी मेरा बने, तो मैं अजीव बनूँ अरे।
मैं नियम से ज्ञाता हि, इससे नहिं परिग्रह मुझ बने॥

यदि परद्रव्य मेरा परिग्रह बने तो... जैसे - अज्ञानी, ज्ञानी से कहे, आप 50 करोड़ रुपये के स्वामी हैं। ज्ञानी कहते हैं — भाई! मुझे ऐसी गाली मत दो। क्या मुझे जड़ बना देना चाहते हो, क्योंकि जड़ का स्वामी जड़ होता है।

अज्ञानी कहे - आप बहुत पुण्यशाली हो, जहाँ आते हैं, वहाँ सम्मान होता है।

ज्ञानी कहते हैं - अरे भाई! हमें गाली मत दो क्योंकि मैं पुण्यशाली, अर्थात् विकारशाली नहीं हूँ; मैं तो अनन्त ज्ञायक चैतन्यस्वभावी भगवान हूँ। परद्रव्य को अपना नहीं माननेवाला ज्ञानी कहता है कि श्रीसमयसार, गाथा 209 में कहा है कि —

छेदाय ता भेदाय, को ले जाय, नष्ट बनो भले।
या अन्य को रीत जाय, परिग्रह न मेरा है अरे॥

छिद जावे, भिद जावे, कोई ले जावे, नष्ट हो जावे, तथा चाहे जिस प्रकार से चला जावे, वास्तव में यह परपदार्थ, मेरा परिग्रह नहीं है - ऐसा जानता हुआ ज्ञानी, परद्रव्यों के ग्रहण का भाव नहीं करता है।

प्रश्न 186- ज्ञानी अपनी आत्मा का किस-किस से प्रदेशभेद जानता है?

उत्तर - (1) अत्यन्त भिन्न परपदार्थों से, (2) शरीर, इन्द्रियाँ,

मन, वाणी से, (3) आठ कर्मों से, (4) शुभाशुभविकारीभावों से, (5) गुणभेदों से, (6) एक समय की शुद्धपर्याय जितना भी मेरा स्वरूप नहीं; इसलिए ज्ञानी इन सबसे अपना प्रदेशभेद जानता है।

प्रश्न 187- ज्ञानी अपना निवास कहाँ रखता है?

उत्तर -

जहाँ दुःख कभी न प्रवेशी सकता, तहाँ निवास ही राखिए।
सुख स्वरूपी निज आत्म में ज्ञाता होके राचिए॥1॥

जैसे- (1) क्या नारकी नरक में पड़ा - ऐसा मानता है कि मैं स्वर्ग में पड़ा हूँ? नहीं मानता है।

(2) स्वर्ग का देव स्वर्ग में पड़ा हुआ क्या ऐसा मानता है - कि मैं नरक में पड़ा हूँ? नहीं मानता है; उसी प्रकार ज्ञानी, अनन्त प्रकाशयुक्त असंख्यात प्रदेशी मेरा क्षेत्र है, वह सुखधाम स्वरूप है, उसमें रहता हुआ, ज्ञानी कभी मैं परद्रव्यों में, शरीर, इन्द्रियों में, कर्मों में, विकारीभावों में पड़ा हूँ - ऐसा मानेगा? कभी भी नहीं।

जहाँ राग कभी न प्रवेशी सकता, तहाँ निवास ही राखिए।
वीतरागस्वरूपी निज आत्म में वस ज्ञाता होके राचिए॥2॥

जहाँ भेद कभी नहीं प्रवेशी सकता, तहाँ निवास ही राखिए।
अभेद स्वरूपी निज आत्म में वस ज्ञाता होके राचिए॥3॥
जहाँ चार* कभी न प्रवेशी सकता, तहाँ निवास ही राखिए।
पारिणामिक स्वभावी निज आत्म में वस ज्ञाता होके राचिए॥4॥

*(* चार - औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और औदयिकभाव)*

श्रीसमयसार के कलश 69 में लिखा है जो नयों के पक्षपात को छोड़कर सदा अपने स्वरूप में गुप्त होकर निवास करते हैं, वे ही विकल्पजाल से रहित, साक्षात् अमृतपान करते हैं। और जो पर,

विकार, भेदकर्म, अभेदकर्म, नय के पक्ष में पड़े रहते हैं, उनका विकल्प कभी मिटेगा नहीं और उन्हें वीतरागता की प्राप्ति भी नहीं होगी; इसलिए ज्ञानी तो एकमात्र अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभावी अखण्ड एक आत्मा में ही निवास करता है; पर में नहीं करता।

प्रश्न 188- किस-किस गति में किस-किस कषाय की मुख्यता है ?

उत्तर - (1) क्रोध की मुख्यता नरकगति में है।

(2) मान की मुख्यता मनुष्यगति में है।

(3) माया की मुख्यता तिर्यञ्चगति में है।

(4) लोभ की मुख्यता देवगति में है।

प्रश्न 189- यदि व्यवहार बढ़े तो निश्चय बढ़े - क्या यह मान्यता ठीक है ?

उत्तर - बिल्कुल गलत है, क्योंकि (1) द्रव्यलिङ्गी को व्यवहार (व्यवहाराभासरूप) जिनागम के अनुसार है, उसे निश्चय होता ही नहीं है।

(2) आठवें-नौवें-दसवें गुणस्थान में निश्चय है, वहाँ देव, गुरु, शास्त्र, अणुव्रत, महाव्रतादि का विकल्परूप व्यवहार है ही नहीं; इसलिए व्यवहार बढ़े तो निश्चय बढ़े, यह बात मिथ्यादृष्टियों की है।

प्रश्न 190- नैगमादि सात नयों का आध्यात्मिक रहस्य क्या है ?

उत्तर - (1) मैं सिद्धसमान शुद्ध हूँ - ऐसा सङ्कल्प, वह सङ्कल्पग्राही नैगमनय है।

(2) मैं अनन्त गुणों का पिण्ड हूँ, यह अभेदग्राही संग्रहनय है।

(3) मैं दर्शन-ज्ञान-चारित्रवाला हूँ - ऐसा भेदग्राही व्यवहारनय है।

(4) पूर्णता के लक्ष्य से शुरुआत करता हूँ, यह ऋजुसूत्रनय का विषय है।

(5) जैसा विकल्प उठा है, वैसा परिणमन होना, शब्दनय का विषय है।

(6) उसमें कचास ना रह जावे, आठवें से बारहवें गुणस्थान तक समभिरूढ़नय का विषय है।

(7) शुद्धि आगे बढ़ती रहे - ऐसा तेरहवाँ-चौदहवाँ गुणस्थान, यह एवंभूतनय का विषय है।

प्रश्न 191- इन सातों नयों में और क्या विशेषता है ?

उत्तर - सातों नय एक दूसरे की अपेक्षा सूक्ष्म है। नैगमनय की अपेक्षा सूक्ष्म है संग्रहनय; और संग्रहनय की अपेक्षा सूक्ष्म है व्यवहारनय; इसी अपेक्षा से एवंभूतनय सबसे सूक्ष्म है, अर्थात् एवंभूतनय का विषय अति सूक्ष्म है।

प्रश्न 192- नैगमनय का पेट बड़ा भारी है - ऐसा क्यों कहा जाता है ?

उत्तर - नैगमनय — वर्तमान में जो जीव, मिथ्यादृष्टि हो, उसे समयग्दृष्टि कह देता है। जैसे - भरत महाराज का पुत्र तथा आदिनाथ भगवान का पौत्र मारीच, जो कि उस समय गृहीतमिथ्यादृष्टि था, उसे महावीर कह दिया। जब कि मारीच के बड़े-बड़े भव शेष थे, जिसमें निगोद भी शामिल है, तब भी नैगमनय की अपेक्षा महावीर कह दिया। निर्विकल्प अवस्था होने पर सिद्ध कह देना तथा राजा श्रेणिक, जो कि वर्तमान में पहिले नरक में है, उन्हें तीर्थङ्कर कह देना; इसी अपेक्षा कहा जाता है कि नैगमनय का पेट बड़ा भारी है।

प्रश्न 193- सातों नय कौन-कौन से गुणस्थान में होते हैं ?

उत्तर - (1) नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय, पहले और चौथे गुणस्थान में होता है।

(2) ऋजुसूत्रनय - चौथा, पाँचवा, छठा गुणस्थानवाले अविरत, श्रावक और मुनिपने को स्वीकार करता है।

(3) शब्दनय - चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान स्थिति उपदेशकरूप भूमिका है, वैसा भाव परिणमित होता है।

(4) समभिरूढ़नय - आठवें, नौवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थानवर्ती श्रेणी माँडनेवाले जीवों पर ही लागू होता है क्योंकि वे श्रेणी में आरूढ़ हो गये हैं। श्रेणी चढ़ गया, वह समभिरूढ़नय में गिना जाता है।

(5) एवंभूतनय - जैसा द्रव्य है, वैसी ही पर्याय में हो जाता है। तेरहवाँ-चौदहवाँ गुणस्थान का ग्रहण एवंभूतनय में होता है।

प्रश्न 194- आठ, नौ, दस, बारह, तेरह और चौदहवें गुणस्थानवालों को तो उस समय ऐसा विकल्प नहीं आता कि हम श्रेणी माँड रहे हैं - फिर ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर - जो जीव सम्यग्दृष्टि है और चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में हैं, वे जीव विचारते हैं कि ऐसी-ऐसी अवस्था कौन-कौन से गुणस्थान में होती है; तथा तेरहवाँ-चौदहवाँ गुणस्थान नयों से अतिक्रान्त होने पर भी, साधक जीव उसका विचार करते हैं।

प्रश्न 195- अध्यात्म में नय किसे कहते हैं ?

उत्तर - 'तद् गुण संविज्ञान, सो नया।'

अर्थात्, जो गुण जैसा है, उसका वैसा ही ज्ञान करना, वह नय है। इससे यह साबित हुआ, जो पर के साथ किसी भी प्रकार का

सम्बन्ध हो, अध्यात्म उसे नय ही नहीं कहता। पञ्चाध्यायीकार ने पर के साथ सम्बन्ध को नयाभास कहा है।

प्रश्न 196- नय किसको लागू होते हैं और किसको नहीं होते हैं ?

उत्तर - मिथ्यादृष्टि और केवली को नय नहीं होते हैं क्योंकि नय तो भावश्रुतज्ञान का अंश हैं। सम्यग्दर्शन होने पर ही नय लागू होते हैं और केवली, नय से रहित हैं। चौथे गुणस्थान से बारहवें तक नय का विषय है।

प्रश्न 197- मिथ्यादृष्टि के अबुद्धिपूर्वक राग को, बुद्धिपूर्वक एवं सम्यग्दृष्टि के बुद्धिपूर्वक राग को, अबुद्धिपूर्वक क्यों कहते हैं ?

उत्तर - श्रद्धा की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि की रागसहित अवस्था भी अबुद्धिपूर्वक में गिनी जाती है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि को राग का स्वामीपना नहीं है और मिथ्यादृष्टि का राग, चाहे वह अबुद्धिपूर्वक हो, वह सब बुद्धिपूर्वक ही गिना जाता है क्योंकि उसके राग का स्वामीपना है।

प्रश्न 198- अनुमान किसे कहते हैं ?

उत्तर - साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं। जैसे—

(1) बम्बई के समुद्र का एक किनारा देखने से, दूसरे किनारे का निर्णय होना।

(2) समवसरण से तीर्थङ्कर भगवान का निर्णय करना।

(3) प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यसहित सच्चे देव, गुरु, शास्त्र की यथार्थ श्रद्धा देखकर, सम्यग्दृष्टि का निर्णय करना।

(4) सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक बारह अणुव्रतादि को देखकर, श्रावकपने का निर्णय करना।

(5) शुद्धोपयोगपूर्वक अट्ठाईस मूलगुण देखकर, भावलिङ्गी मुनि का निर्णय करना।

(6) स्पर्श देखने से पुद्‌गल का निर्णय करना।

(7) गतिहेतुत्व से धर्मद्रव्य का निर्णय करना - यह सच्चा अनुमानज्ञान है।

प्रश्न 199- निक्षेप किसे कहते हैं और निक्षेप से क्या तात्पर्य है?

उत्तर - प्रमाण और नय के अनुसार प्रचलित लोकव्यवहार को निक्षेप कहते हैं। (1) नामनिक्षेप=ज्ञेय का नाम, (2) स्थापना-निक्षेप=ज्ञेय का आकार, (3) द्रव्यनिक्षेप=ज्ञेय की लायकात, (4) भावनिक्षेप=ज्ञेय प्रगटता।

प्रश्न 200- रत्नत्रय को प्रगट करने की क्या विधि है?

उत्तर - आत्मा को प्रथम, द्रव्यार्थिक और पर्यायर्थिकनय द्वारा यथार्थता जानकर, पर्याय से लक्ष्य हटाकर, अपने त्रिकाली सामान्य चैतन्यस्वभाव, जो शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषय है — उसकी ओर दृष्टि करने से और उपयोग को उसमें लीन करने से निश्चयरत्नत्रय प्रगट होता है।

प्रश्न 201- सम्यग्दर्शन होने पर केवलज्ञान कैसे प्रगट होता है?

उत्तर - साधक जीव, प्रारम्भ से अन्त तक निश्चय की मुख्यता रखकर, व्यवहार को गौण ही करता जाता है; इसलिए साधक को साधकदशा में निश्चय की मुख्यता के बल से शुद्धता की वृद्धि ही होती जाती है और अशुद्धता हटती जाती है। इस तरह निश्चय की मुख्यता के बल से ही पूर्ण केवलज्ञान प्रगट होता है।

प्रश्न 202- श्रीसमयसार, गाथा 413 में व्यवहार विमूढ़ किसे बताया है ?

उत्तर - व्यवहार करते-करते या उसके अवलम्बन से निश्चय प्रगट हो जाएगा - ऐसी जिसकी मान्यता है, उसके व्यवहार विमूढ़ कहा है।

प्रश्न 203- जीव, संसार में परिभ्रमण क्यों करता है ? - ऐसा कही ब्रह्म-विलास में बताया है ?

उत्तर - हाँ, बताया है-

जैसे - कोऊ स्वान पर्‍यो काँच के महल बीच,
ठौर ठौर स्वान देख भूंस भूस मर्‍यो है।
बानर ज्यों मूठी बाँध पर्‍यो है पराये वश,
कुए में निहार सिंह आप कूद पर्‍यो है॥
फटिक की शीला में विलोक गज जाय अर्‍यो,
नलिनी के सुवटा को कौने धों पकर्‍यो है॥
तैसे ही अनादि को अज्ञान भाव मान हंस,
अपनो स्वभाव भूलि जगत में फिर्‍यो है॥
द्वै द्वै लोचन सब धरै मणि नहिं मोल कराहिं,
सम्यक्‌दृष्टि जौहरी विरले इहि जग माहिं॥

प्रश्न 204- जिनशासन क्या है ?

उत्तर - (1) जो यह अबद्धस्पष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त - ऐसे पाँच भावस्वरूप, अर्थात् एकस्वरूप आत्मा की अनुभूति है, यह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति है।

[श्रीसमयसार, गाथा 15]

(2) पदार्थों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव भलीभाँति पहिचान ले तो भेदज्ञान होकर स्वद्रव्य के ही आश्रय से निर्मलपर्याय का

उत्पाद और मलिनता का व्यय, उसका नाम जैनशासन है।
[श्रीतत्त्वार्थसूत्र, पाँचवाँ अध्याय, सूत्र 29, 30 का मर्म]

(3) मोक्ष की प्राप्ति करानेवाला जिनधर्म ही है, वह ही जिन-शासन है। *[श्रीभावपाहुड़, गाथा 82]*

(4) (अ)जो प्राणियों को पञ्च परावर्तनरूप संसार के दुखतैं निकाल, उत्तम सुख में पहुँचावें, यह जिनशासन है। वह जिनशासन आत्मा का धर्म है। (आ) धर्म के ईश्वर भगवान तीर्थङ्कर परमदेव ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को जिनशासन कहा है।

(5) आत्मा, रागादिक समस्त दोषों से रहित होकर, आत्मा ही में रत हो जावे, वह जिनशासन है। *[श्रीभावपाहुड़, गाथा 85 से]*

(6) मोह-क्षोभरहित जो आत्मा का परिणाम, वह जैनशासन है। *[श्रीप्रवचनसार, गाथा 7 से]*

वास्तव में अपनी आत्मा का अनुभव होने पर जैनशासन की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्रश्न 205- अप्रतिबुद्धता (अज्ञानता) क्या है ?

उत्तर - (1) द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म में एकत्वबुद्धि, वह अज्ञानता है। *[श्रीसमयसार, गाथा 19]*

(2) सर्वज्ञदेव ने अज्ञानी के व्रत-तपादि को बालतप तथा बालव्रत को अज्ञान कहा है। *[श्रीसमयसार, गाथा 152]*

(3) परमपदार्थरूप ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव नहीं है और व्रतादि में रत है, वह अज्ञानी है। *[श्रीसमयसार, गाथा 153]*

(4) शुभभावों से धर्म माननेवाले जीव को नपुसंक जिनशासन से बाहर कहा है। *[श्रीसमयसार, गाथा 154]*

(5) त्रिकाली आत्मा को छोड़कर, व्रत-नियमादि में प्रवर्तते हैं, उनको कभी जिनशासन की प्राप्ति नहीं है। *[श्रीसमयसार, गाथा 156]*

(6) आत्मा, रागादि के साथ जो ऐक्य को प्राप्त होता है, वह जिनशासन से बाहर है। *[श्रीसमयसार, कलश 164]*

(7) जो पर को मारने-जिलाने का, सुखी-दुःखी करने का अभिप्राय रखते हैं, वे अपने स्वरूप से च्युत होते हुए मोही-रागी -द्वेषी होकर अपना घात करते हैं, वे जिनशासन से बाहर हैं।

[श्रीसमयसार, कलश 169]

(8) मिथ्यादृष्टि जीव, जिनेन्द्रदेवकथित व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तप करता हुआ भी जिनशासन से बाहर है।

[श्रीसमयसार, गाथा 273]

(9) जो जीव, शास्त्र पढ़ता है परन्तु आत्मा ज्ञानस्वभावी करने-धरने की खोटी मान्यता से रहित है - ऐसा अनुभव नहीं करता, वह जिन नहीं है। *[श्रीसमयसार, गाथा 274]*

तात्पर्य यह है कि जो जीव, जड़ के रूपीकार्यों में, विकारीभावों में अपनेपने की बुद्धि रखते हैं, वे जिनशासन से बाहर होने से चारों गतियों के पात्र हैं।

प्रश्न 206- ज्ञानियों के वचनामृत क्या हैं ?

उत्तर - (1) रे जीव! तीन लोक में सबसे उत्तम महिमावन्त अपना आत्मा है, उसको तू उपादेय जान। वही महासुन्दर, सुखरूप है, जगत् में सर्वोत्कृष्ट ऐसे आत्मा को तू स्वानुभवगम्य कर। तेरा आत्मा ही तुझे आनन्दरूप है; अन्य कोई वस्तु तुझे आनन्दरूप नहीं है। आत्मा के आनन्द का अनुभव जिसने किया है - ऐसे धर्मात्मा का चित्त अन्य कहीं भी नहीं लगता; बार-बार आत्मा की ओर ही झुकता है। आत्मा का अस्तित्व जिसमें नहीं - ऐसे परद्रव्यों में धर्मी का चित्त कैसे लगे ? आनन्द का समुद्र जहाँ देखा है, वहाँ ही उनका चित्त लगा है।

(2) स्वानुभव, यह मूलचीज है। वस्तुस्वरूप का यथार्थ निर्णय

करके, मति-श्रुतज्ञान को अन्तर्मुख करके, स्वद्रव्य में परिणाम को एकग्र करने पर सम्यग्दर्शन व स्वानुभव होता है। जब ऐसा अनुभव करे, तब ही मोह की गाँठ टूटती है और तब ही जीव, भगवान के मार्ग में आता है।

(3) भाई! यह तो सर्वज्ञ का निर्गन्थमार्ग है। यदि तूने स्वानुभव के द्वारा मिथ्यात्व की ग्रन्थि नहीं तोड़ी तो निर्ग्रन्थ के मार्ग में जन्म लेकर के तूने क्या किया? भाई! ऐसा सुअवसर तुझे मिला तो अब ऐसा उद्यम कर, जिससे यह जन्म-मरण की गाँठ टूटे और अल्प काल में मुक्ति हो जाये।

(4) एक जीव बहुत शास्त्र पढ़ा हो और बड़ा त्यागी होकर हजारों जीवों में पूजा जाता हो परन्तु यदि शुद्धात्मा के श्रद्धानरूप निश्चयसम्यक्त्व उसे न हो तो सभी जानपना मिथ्या है। दूसरा जीव छोटा सा मेंढक, मछली, सर्प, सिंह या बालकदशा में हो, शास्त्र का शब्द पढ़ने को भी नहीं आता हो किन्तु यदि शुद्धात्मा के श्रद्धानरूप निश्चयसम्यक्त्व से सहित है, उसका सभी ज्ञान, सम्यक् है और वह मोक्ष के पन्थ में है।

(5) एक क्षण का स्वानुभव हजारों वर्षों के शास्त्र पठन से अधिक है। जिसको भवसमुद्र से तिरना हो, उसे स्वानुभव की विद्या सीखने योग्य है।

(6) एक क्षणभर के स्वानुभव से ज्ञानी के जो कर्म टूटते हैं; अज्ञानी के लाख उपाय करने पर भी, इतने कर्म नहीं टूटते। सम्यक्त्व की व स्वानुभव की ऐसी कोई अचिन्त्य महिमा है, यह समझकर हे जीव! इसकी आराधना में तू तत्पर हो।

(7) अहो! यह आत्महित के लिए अत्यन्त प्रयोजनभूत स्वानुभव की उत्तम बात है। स्वानुभव की इतनी सरस वार्ता भी

महान भाग्य से सुनने को मिलती है, तब उस अनुभवदशा की तो क्या बात?

(8) मोक्षमार्ग का उद्घाटन निर्विकल्प स्वानुभव से होता है। स्वानुभूतिपूर्वक होनेवाला समयग्दर्शन हो मोक्ष का दरवाजा है। इसके द्वारा ही मोक्षमार्ग में प्रवेश होता है; इसके लिए उद्यम करना प्रत्येक मुमुक्षु का पहला काम है और प्रत्येक मुमुक्षु यह कर सकता है। हे जीव! एक बार आत्मा में स्वानुभूति की लगन लगा दे।

(9) स्वसत्ता के अवलम्बन से ज्ञानी, निजात्मा को अनुभवते हैं। अहो! ऐसे स्वानुभवज्ञान से मोक्षमार्ग के साधनेवाले ज्ञानियों की महिमा की क्या बात! इनकी दशा को पहिचाननेवाले जीव भी निहाल ही हो गये हैं।

(10) पर को साधने से सम्यग्दर्शन नहीं मिल सकता।

(11) देहादि की क्रिया में या शुभराग में भी सम्यग्दर्शन नहीं मिल सकता।

परोक्षज्ञान के पाँच भेदों का वर्णन

प्रश्न 207– स्मृति, प्रत्याभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम – ये पाँच भेद किसके हैं?

उत्तर – परोक्षज्ञान के हैं। ये पाँचों ज्ञान, प्रत्यक्ष या परोक्ष वे सब – अपने ही से होते हैं; पर से ज्ञान नहीं होता है।

प्रश्न 208– परोक्षज्ञान तो पर से होता है?

उत्तर – बिल्कुल नहीं होता है। परोक्षज्ञान भी कहीं इन्द्रिय या मन से नहीं होता है; जाननस्वभावी आत्मा अपने स्वभाव से ही ऐसी अवस्थारूप परिणमता है।

प्रश्न 209– स्मृति आदि परोक्षज्ञान पर से नहीं होते हैं, जरा स्पष्ट समझाइये?

उत्तर - जैसे, मिठास स्वभाववाला गुड़, कभी मिठास के बिना नहीं होता और न इसकी मिठास पर में से आती है; वैसे ही ज्ञानस्वभावी आत्मा, कभी ज्ञान के बिना नहीं होता, और न इसका ज्ञान, पर में से आता है। याद रखना—ज्ञान से, परवस्तु ज्ञात होती है परन्तु ज्ञान कहीं पर में जा करके नहीं जानता, और पर में से ज्ञान नहीं आता है।

प्रश्न 210- स्मृति आदि पाँच भेद किस ज्ञान के हैं ?

उत्तर - स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान - ये चार भेद मतिज्ञान के है और आगम, यह श्रुतज्ञान है।

प्रश्न 211- स्मृति किसे कहते हैं ?

उत्तर - पूर्व में देखी हुई वस्तु को स्मरणपूर्वक वर्तमान में जानना; जैसे—सीमन्धरभगवान ऐसे थे...उनकी वाणी ऐसी थी... समवसरण ऐसा था - इत्यादि पूर्व में देखी हुई वस्तु को वर्तमान में याद करके जाने—ऐसी मतिज्ञान की ताकत है।

प्रश्न 212- प्रत्यभिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर - पूर्व में देखी हुई वस्तु के साथ वर्तमान वस्तु का मिलान करना; जैसे—पूर्व में जिन सीमन्धरभगवान को देखा था, उनके जैसी ही इस प्रतिमा की मुद्रा है, अथवा पूर्व में भगवान के पास मैंने जिस आत्मा को देखा था, वह यही आत्मा है - ऐसा मतिज्ञान जान सकता है। जैसे, श्रेयांस राजा ने आदिनाथ भगवान को देखते ही, पूर्वभव में मैं इनकी पत्नी था, ये मेरे पति थे - हमने मुनिराज को आहारदान दिया था; इस प्रकार आहर की विधि याद आ गयी। देहादि सभी संयोग अत्यन्त पलट गये होने पर भी, मतिज्ञान की निर्मलता की कोई ऐसी ताकत है कि 'पूर्व में देखा हुआ आत्मा यही है' - ऐसा वह नि:शंक जान लेता है। जगत को ज्ञानी के ज्ञान की ताकत की पहिचान होना कठिन है।

प्रश्न 213- तर्क किसे कहते हैं ?

उत्तर - ज्ञान में साधन-साध्य का सम्बन्ध जान लेना; जैसे जहाँ धूम हो, वहाँ अग्नि होती है; जहाँ अग्नि न हो, वहाँ धूम नहीं होता। जहाँ समवसरण हो, वहाँ तीर्थङ्कर भगवान होते हैं; जहाँ तीर्थङ्कर भगवान न हो, वहाँ समवसरण नहीं होता। अथवा जिस जीव को वस्त्र ग्रहण है, उसे छठवाँ गुणस्थान नहीं होता; छठवाँ गुणस्थान जिसके हो, उसे वस्त्रग्रहण नहीं होता; इस प्रकार हेतु के विचार से ज्ञान करना, यह तर्क है।

प्रश्न 214- अनुमान किसे कहते हैं ?

उत्तर - हेतु से जो जाना, इसके अनुसार साध्य वस्तु का ज्ञान करना, अर्थात् साध्य-साधन का तर्क लगा करके साध्यवस्तु को पहिचान लेना, इसको अनुमान कहते हैं। जैसे—यहाँ अग्नि है क्योंकि धूम दिखता है; यहाँ तीर्थङ्कर भगवान विराज रहे हैं क्योंकि समवसरण दिखता है; इस जीव को छठवाँ गुणस्थान नहीं है क्योंकि इसके वस्त्र ग्रहण है; इस प्रकार मतिज्ञान से अनुमान हो जाता है।

प्रश्न 215- आगम किसे कहते हैं ?

उत्तर - इसके उपरान्त आगम अनुसार जो ज्ञान हो, उसे आगमज्ञान कहते हैं, यह श्रुतज्ञान का प्रकार है।

द्रव्यानुयोग में दोषकल्पना का निराकरण

प्रश्न 216- कोई जीव कहता है कि द्रव्यानुयोग में व्रत, संयमादिक व्यवहारधर्म की हीनता प्रगट की है; सम्यग्दृष्टि के विषय-भोगादि को निर्जरा का कारण कहा है - इत्यादि कथन सुनकर जीव स्वच्छन्दी बनकर पुण्य छोड़ देगा और पाप में प्रवर्तन करेगा; इसलिए उसे पढ़ना-सुनना योग्य नहीं है ?

उत्तर - जैसे, मिसरी खाने से गधा मर जाये तो उससे कहीं मनुष्य तो मिसरी खाना नहीं छोड़ देंगे; उसी प्रकार कोई विपरीत

बुद्धि जीव, अध्यात्म ग्रन्थ सुनकर स्वच्छन्दी हो जाता हो उससे कही विवेकी जीव तो अध्यात्म ग्रन्थों का अभ्यास नहीं छोड देंगे? हाँ, इतना करेंगे की जिसे स्वच्छन्दी होता देखें, उसको वैसा उपदेश देंगे जिससे वह स्वच्छन्दी न हो और अध्यात्म ग्रन्थों में भी स्वच्छन्दी होने का जगह-जगह निषेण किया जाता है; इसलिए जो उन्हें बराबर सुनता है, वह तो स्वच्छन्दी नहीं होता; तथापि कोई एकाध बात सुनकर अपने अभिप्राय से स्वच्छन्दी हो जाये तो वहाँ ग्रन्थ का दोष नहीं है किन्तु उस जीव का ही दोष है। पुनश्च, यदि झूठी दोष -कल्पना द्वारा अध्यात्म शास्त्रों के पठन-श्रवण का निषेध किया जाये तो मोक्षमार्ग का मूल उपदेश तो वही है! इसलिए उसका निषेध करने से मोक्षमार्ग निषेध होता है। जैसे—मेघवृष्टि होने से अनेक जीवों का कल्याण होता है, तथापि किसी को उल्टी हानि हो जावे तो उसकी मुख्यता करके मेघ का निषेध तो नहीं किया जा सकता; उसी प्रकार सभा में अध्यात्मोपदेश होने से अनेक जीवों को मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है; तथापि कोई उल्टा पाप में प्रवर्तमान करे, तो उसकी मुख्यता करके अध्यात्म शास्त्रों का निषेध नहीं किया जा सकता।

दूसरे, अध्यात्म ग्रन्थों से कोई स्वच्छन्दी हो जाये तो वह पहले भी मिथ्यादृष्टि था और आज भी मिथ्यादृष्टि ही रहा। हाँ, हानि इतनी ही है कि उसकी सुगति न होकर, कुगति होती है।

और अध्यात्मोपदेश न होने से अनेक जीवों को मोक्षमार्ग प्राप्ति का अभाव होता है; इसलिए उससे तो अनेक जीवों का महान अहित होता है, इसलिए अध्यात्म-उपदेश का निषेध करना योग्य नहीं है।

प्रश्न 217- द्रव्यानुयोगरूप अध्यात्म-उपदेश, उत्कृष्ट है और जो उच्चदशा को प्राप्त हो, उसी को कार्यकारी है, किन्तु निचलीदशावालों को तो व्रत; संयमादि का ही उपदेश देना योग्य है?

उत्तर – जिनमत में तो ऐसी परिपाटी है कि पहले सम्यक्त्व हो और फिर व्रत होते हैं; अब, सम्यक्त्व तो स्व-पर का श्रद्धान होने पर होता है, तथा वह श्रद्धान, द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है। इसलिए प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि हो और तत्पश्चात् चरणानुयोग के अनुसार व्रतादिक करके व्रती हो। इस प्रकार मुख्यरूप से तो निचलीदशा में ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है; तथा गौणरूप से जिसे मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती दिखायी न दे, उसे प्रथम तो व्रतादिक का उपदेश दिया जाता है; इसलिए उच्चदशावाले को अध्यात्मोपदेश अभ्यास करने योग्य है – ऐसा जानकर निचली दशावालों को वहाँ से पराङ्मुख होना योग्य नहीं है।

प्रश्न 218– उच्च उपदेश का स्वरूप, निचलीदशावालों को भासित नहीं होता ?

उत्तर – अन्य (अन्यत्र) तो अनेक प्रकार की चतुराई जानता है और यहाँ मूर्खता प्रगट करता है, वह योग्य नहीं है। अभ्यास करने से स्वरूप बराबर भासित होता है तथा अपनी बुद्धि-अनुसार थोड़ा -बहुत भासित होता है, किन्तु सर्वथा निरुद्यमी होने का पोषण करे, वह तो जिनमार्ग का द्वेषी होने जैसा है।

प्रश्न 219– यह काल निकृष्ट (हल्का) है; इसलिए उत्कृष्ट अध्यात्म के उपदेश की मुख्यता करना योग्य नहीं है ?

उत्तर – यह काल, साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा से निकृष्ट है, किन्तु आत्मानुभवादि द्वारा सम्यक्त्वादि होने का इस काल में निषिद्ध नहीं है; इसलिए आत्मानुभवादि के हेतु द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना चाहिए। श्री कुन्दकुन्दाचार्य रचित 'मोक्षपाहुड़' में कहा है कि –

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जति॥7॥

अर्थात्, आज भी त्रिरत्न द्वारा शुद्ध आत्मा को ध्यानकर इन्द्रपना प्राप्त करते हैं; लौकान्तिक (स्वर्ग) में देवत्व प्राप्त करते हैं और वहाँ ये चयकर (मनुष्य होकर) मोक्ष जाते हैं।

इसलिए इस काल में भी द्रव्यानुयोग का उपदेश मुख्य आवश्यक है। प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान कर सम्यग्दृष्टि होना... ऐसे मुख्यता से तो नीचे की दशा में ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है।

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 292 से 294]

प्रश्न 220– चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन भगवान महावीर जयन्ती और दीपावली के दिन निर्वाणोत्सव से क्या-क्या सिद्धान्त निकलते हैं ?

उत्तर – (1) निमित्तरूप भगवान के मानने से सम्पूर्ण दु:ख का अभाव;

(2) क्रमबद्ध-क्रयनियमितपर्याय की सिद्धि;

(3) सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना जीवन व्यर्थ है;

(4) उपादान-निमित्त की स्वतन्त्रता का पता चल जाता है;

(5) जितने भी निमित्त हैं, सब धर्मद्रव्य के समान ही हैं;

(6) तत्त्वविचार से ही धर्म की प्राप्ति;

(7) एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता;

(8) तेरा सुख, तेरे पास ही है; बाहर नहीं है;

(9) प्रत्येक जीव, मात्र अपनी भूल से ही दु:खी होता है और स्वयं भूलरहित स्वभाव का आश्रय लेकर, भूल का अभाव कर सकता है; और

(10) रागादि की उत्पत्ति हिंसा है।

जय महावीर-जय महावीर

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, देहरादून के प्रकाशन

1. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–1	40 रुपये
2. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–2	40 रुपये
3. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–3	40 रुपये
4. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–4	40 रुपये
5. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–5	40 रुपये
6. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–6	40 रुपये
7. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–7	40 रुपये
8. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–8 (छहढाला प्रश्नोत्तरी)	प्रकाशनाधिन
9. जिनागमसार	अनुपलब्ध

नोट : कृपया उक्त सभी ग्रन्थ प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

— **SHRI KUNDKUND KAHAN DIG. JAIN SWADHYAY MANDIR**
29, Gandhi Road, Dehradun-248001 (Uttarakhand)
Ph. : 0135 - 2654661 / 2623131

— **TEERTHDHAM MANGALAYATAN,**
Aligarh-Agra Road, Sasni-204216, Hathras (U.P.)
www.mangalayatan.com; info@mangalayatan.com

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

जन्म : सन् 1913
देह परिवर्तन : 19 दिसम्बर 2012
जन्मस्थान : ग्राम टिकरी, जिला मेरठ, उत्तरप्रदेश
पिता – श्री मिट्ठनलाल जैन
माता – श्रीमती भरतोदेवी जैन

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा, मथुरा-चौरासी एवं तत्पश्चात् जम्बू-विद्यालय, सहारनपुर में हुई। लघुवय में लाहौर में स्वतन्त्र व्यवसाय किया। देश के स्वाधीन होने के पश्चात्, स्वदेश वापिसी और बुलन्दशहर (उ०प्र०) में आजाद ट्रेडिंग कम्पनी के नाम से, पुस्तकों एवं स्टेशनरी का व्यवसाय किया। अपनी सहधर्मिणी श्रीमती विमलादेवी, चार पुत्रियों तथा एक पुत्र के साथ, पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए, धर्ममार्ग पर गतिशील रहे।

सिद्धक्षेत्र श्री गिरनारजी की यात्रा के समय, सोनगढ़ में विराजित दिव्यविभूति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल साक्षात्कार के उपरान्त, आपके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हुआ। फलस्वरूप, निरन्तर तत्त्वराधना एवं तत्त्वप्रचार ही आपके जीवन के अभिन्न अंग बन गये और सम्पूर्ण देश में तत्त्वज्ञान की पताका फहराने के लिये, आप एकाकी निकल पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री के मंगल प्रवचनों एवं माननीय श्री रामजीभाई दोशी एवं खेमचन्दभाई सेठ की कक्षाओं में जो कुछ सीखा, उसे 'जैन-सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला' के, आठ भाग के रूप में संकलन का कार्य कर, जन-जन को जिनधर्म के गूढ़ रहस्य को साधारण भाषा में प्रस्तुत करने का अपूर्व कार्य किया।

आपकी तत्त्वज्ञान की प्रचार-प्रसार की उत्कृष्ट भावनाओं के फलस्वरूप, उन्हें क्रियान्वित करने हेतु, **तीर्थधाम मङ्गलायतन** के रूप में आपके स्वप्न को आपके परिवार व समग्र मुमुक्षु-समाज ने साकार किया। यहाँ से प्रकाशित मासिक-पत्रिका, **मङ्गलायतन** के आप आजीवन प्रधान सम्पादक रहे।

स्वाभिमानीवृत्ति के साथ ही, निर्भीकता, निस्पृहता, सिद्धान्तों पर अडिगता आदि आपके व्यक्तित्व की उल्लेखनीय विशेषताएँ रही हैं।

आपके उपकारों के प्रति नतमस्तक होते हुए, आपके श्रीचरणों में वन्दन समर्पित करते हैं, और आपकी इस अनुपम कृति को समाज के लाभार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला (भाग-5)